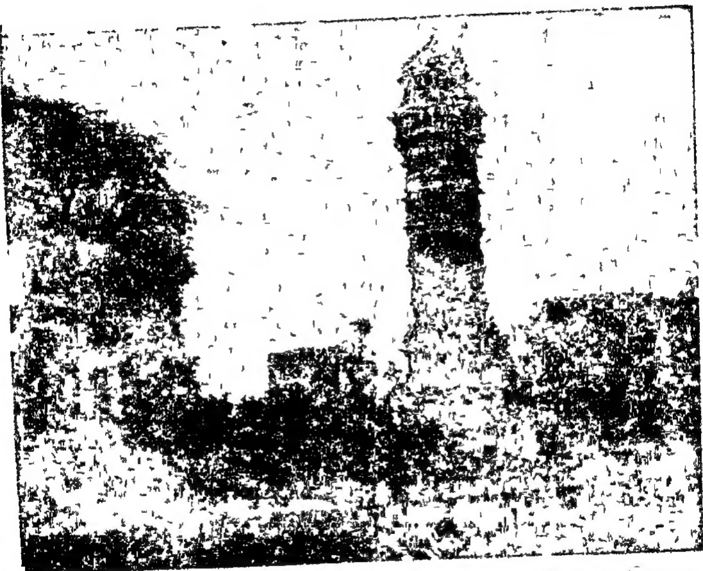
शोध-पत्रिका

राजस्थान शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकृत



३ अङ्क १

आश्विन वि० सं० २००८
सितम्बर सन् १९५१

सम्पादक-मण्डल

[illegible]

[illegible]

प्रबन्ध सम्पादक — [illegible]

इस अंक में:—

"सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते"

शोध-पत्रिका

[साहित्य संस्थान, राजस्थान विश्व विद्यापीठ
की प्रमुख त्रैमासिक पत्रिका]

भाग ३	उदयपुर, आश्विन सं० २००८	अंक १

राजस्थान का एक प्राचीन नगर

श्रीमाल नगर

(लेखक — अगरचन्द नाहटा)

भारत के राजवंशों के सम्बन्ध में जितना अन्वेशण हुआ है उसके शतांश में भी प्राचीन व प्रसिद्ध स्थानों के सम्बन्ध में शोध नहीं हुई है। फलतः शासकों के तो अनेक इतिहास ग्रन्थ मिलते हैं, पर उस से अधिक महत्त्व की वस्तु जहाँ उन्होंने शासन किया, उन स्थानों के उत्थान व पतन की कहानी की ओर हमारा ध्यान बहुत ही कम गया है। स्वतन्त्र भारत में यहाँ का इतिहास नए दृष्टिकोण से व नये सिरे से लिखने की परमावश्यकता है और उसमें हमारे प्राचीन स्थानों के सम्बन्ध में स्वतन्त्र ग्रन्थों का प्रकाशन विशेष रूप से अपेक्षित है।

आर्यावर्त धर्म प्रधान देश है। यहाँ महापुरुषों के जीवन से सम्बन्धित सभी स्थान बड़े पवित्र एवं तीर्थभूत माने जाते हैं। अत जिन २ स्थानों के साथ जनता का धार्मिक सम्बन्ध जुड़ गया है उनके सम्बन्ध में तो प्राचीन समय से माहात्म्य ग्रन्थ लिखे जाते रहे हैं। जैनेतर स्कन्ध पुराण के अन्तर्गत ऐसे अनेक स्थानों के माहात्म्य प्रकरण समय-समय पर जोड़े जाते रहे हैं। जैन-साहित्य में शत्रुंजय तीर्थ माहात्म्य, शत्रुञ्जय गिरनार, आदि के कल्प पाये जाते हैं और १४ वीं सदी के सुप्रसिद्ध महम्मद तुगलक से सन्मानित जैनाचार्य जिन प्रभासूरिजी ने विविध स्थानों के कल्पों का निर्माण कर उनका संग्रह ग्रन्थ ही 'विविध तीर्थ कल्प' के नाम से गुंथित किया है। यद्यपि इन ग्रन्थों में धार्मिक महात्म्य को ही विशेष रूप से स्थान दिया है फिर भी उन स्थानों के इतिहास सम्बन्धी अनेक सूत्र उनमें पाये जाते हैं।

श्रीमाल महात्म्य का निष्कर्ष

श्रीमाल नगर भी किसी समय बहुत बड़ा व समृद्ध नगर रहा है। ब्राह्मणों का यहाँ बहुत प्रभाव रहा है अतः उन्होंने स्कन्द पुराण के रूप में "श्रीमाल महात्म्य" को बनाकर सम्मिलित कर दिया जिसे श्रीमाल पुराण भी कहा जाता है। यह ग्रन्थ ७५ अध्यायों में अनुवाद सहित अहमदाबाद के पं० जटाशंकर लीलाधर ने प्रकाशित किया है। उनके कथनानुसार कहीं इसकी १०३ अध्यायों वाली ⊕ प्रति भी प्राप्त है। प्रस्तुत ग्रन्थ पौराणिक पद्धति से लिखा होने से इसमें से ऐतिहासिक तथ्य निकालना कठिन अवश्य है पर महात्म्य शैली को छोड़ दें तो यही निष्कर्ष निकलता है कि यहाँ पहले गौतम ऋषि का आश्रम था, ब्राह्मणों एवं वैश्यों की बहुत बड़ी बस्ती थी, यहाँ के निवासियों पर लक्ष्मी देवी की पूर्ण कृपा थी। एक समय गौतम ऋषि को अन्य ब्राह्मणों ने अप्रसन्न कर दिया। फलतः वे पन्जाब (काश्मीर) गये और वहाँ (गौरी के पुत्र) महावीर के शिष्य हो कर पुनः यहाँ आये और जैन धर्म का जोरों से प्रचार किया। जब से यहाँ जैन धर्म बढ़ा, लक्ष्मी की कमी होने लगी और अन्त में लोग यहाँ से गुजरातादि में चले गए। श्रीमाली ब्राह्मण, श्रीमाली सोनी, पोरवाड़, धनोत्कटाव श्रीमाली जैनो का मूल स्थान यही है। श्रीमाल नगर की पूर्व ओर रहने वाले पोरवाड़ कहलाये, दक्षिण की ओर रहने वाले धनोत्कटा कहलाए व उत्तर पश्चिम दिशा मे रहने वाले श्रीमाली वणिया के नाम से प्रसिद्ध हुए।

श्रीमाल महात्म्य में यहाँ के ५० के लगभग स्थानो का महात्म्य वर्णित है। इससे यहाँ के अनेक प्राचीन स्थानों का पता चलता है जिनमें से अब बहुत से नाम शेष हो चुके हैं।

श्रीमाल महात्म्य का रचना समय—

उक्त ग्रन्थ मे जैन धर्म प्रचार के सिलसिले में तपागच्छ का दो बार उल्लेख आता है एवं जैनों का उस प्रधान गच्छ बतलाया है, जैसे ८४ गच्छ होने का निर्देश है, इससे ग्रन्थ के रचना काल पर भी अच्छा प्रकाश पड़ता है। मेरे नम्र मतानुसार इसकी रचना १४ वीं १५ वीं शताब्दी से पहले की नहीं, क्योंकि सं०१२८५ में तपा गच्छ की उत्पत्ति हुई और १४ वीं शती में इसका प्रभाव बहुत अधिक विस्तार पाया। उधर इस नगर के श्री हीन होने व यहाँ के लोगों के

⊕ बीकानेर की अनूप संस्कृत लाइब्रेरी मे एवं भांडार कर इन्स्टीट्यूट पूना की प्रतियों को मैंने देखा है। इनमें तो अध्याय और भी कम हैं। अ० सं० ला० वाली प्रति में ६६ वें अध्याय तक का पाठ है।

गुजरात की ओर जाने के निर्देश से भी इसकी पुष्टि होती है। यद्यपि ६ वीं शताब्दी से गुजरात की राजधानी पाव्य हो जाने से व वहाँ की श्री वृद्धि होने से हजारों कुटुम्ब यहाँ से उधर जाने प्रारम्भ हो गये और गुजरात के इतिहास में श्रीमाल व पोरवाड़ जैनों का प्रभुत्व बढ़ता चला गया पर १४ वीं शती तक श्रीमाल नगर के अच्छी अवस्था में विद्यमान होने का यहाँ के प्राप्त शिला लेखों व खण्ड हरों से पता चलता है अत: श्रीमाल पुराण के निर्माण की यह पूर्व सीमा समझनी चाहिये। श्रीमाल महात्म्य के उद्धरण १६ वीं सदी के विमल चरित्रादि में मिलते हैं, इसमे उसके पूर्व का निश्चित हैं यह उसके निर्माण की उत्तर सीमा है। पर वास्तविक समय निर्णय करने के लिये इसकी प्राचीन प्रतियों की खोज पर मावश्यक है। मैंने भण्डार कर इन्सटिट्यूट पूने से मैंने दो प्रतियें मगवाई, वे तो १६ वीं शती की है, पाठ भिन्नता भी काफी है। सम्भव है पीछे से और भी इसमें अध्याय जोडे जाते रहे है और पाठ प्रक्षेप होता रहा है। श्रीमाल पुराण के के प्रकाशक ने बड़े ही खेद के साथ कहा है कि अनेक व्यक्तियों के पास प्रतिये हैं। पर अनुरोध करने पर भी व प्राप्त नहीं कर सके वास्तव में हमारे हजारों ग्रन्थ इसी सकुचित वृत्ति के कारण लोप हो गये हैं। जिनके पास ग्रन्थ हैं वे स्वय उनको पठन पाठनादि द्वारा उपयोग में लाते नहीं और अन्य कोई उपयोग में लेना चाहे तो देने की बात तो दूर दिखाने दिखाने तक की उदारता नहीं करते यह बहुत ही बुरी बात है।

अन्य ऐतिहासिक उल्लेखों पर विचार—

पौराणिक दृष्टि से श्रीमाल नगर को लक्ष्मीदेवी ने बसाया व उसके निवास स्थान के कारण इस नगर का यह नाम करण हुआ, और सम्वत् १२०३ के वैशाख शु० ८ को श्रीदेवी के गुजरात के पाटण नगर में चले जाने पर श्रीमाल नगर के श्री सून्य हो जाने से भिन्न माल नाम पड़ा। यह श्रीमाल पुराण में लिखा है पर यह कथन ठीक नहीं है जैसा कि आगे सिद्ध किया जायगा। यही जैन धर्म का प्रचार गौतम से हुआ लिखा गया है। इससे यह ढाई हजार वर्ष पुराना स्थान विदित होता है।

उपर्युक्त पौराणिक कथन (२॥ हजार वर्ष पूर्व श्रीमाल नगर में जैन धर्म के प्रचार) की पुष्टि वि० स० १३३३ के लेख से भी होती है जिसमें म० महावीर स्वय यहाँ आये थे लिखा है। इसी प्रकार अन्य एक जैन ग्रन्थ से भी इसका समर्थन किया जा सकता है जिसका निर्देश करते हुए ऐतिहासिक परीक्षण किया जायगा।

जैन साहित्य में उपकेश गच्छ प्रबन्ध ही एक ऐसा ग्रन्थ है जिसमें श्रीमाली

ष ओसवाल जाति की स्थापना का सब से पहले विवरण पाया जाता है। इसकी रचना उपकेश गच्छीय वक्क सूरिजी ने सं० १३६३ में की है। उक्त ग्रन्थानुसार प्रभु पार्श्वनाथ के शिष्य शुभदत्त के शिष्य केशी के शिष्य स्वयं प्रभसूरि यहाँ पधारे थे। तब मणिरत्न नामक राजा ने ५०० विद्याधरों के साथ दीक्षा ग्रहण की। यहाँ के राजा श्री पुंज के पुत्र सुर सुन्दर ने ओकेश नगर बसाया, जहाँ से ओसवाल कहलाये। मेरे नम्र मतानुसार उपकेश गच्छ प्रबन्ध का उपर्युक्त कथन भी पौराणिक कोटि का है। जिसमें किसी भी बात को अधिक से अधिक प्राचीन सिद्ध करने की मनोवृत्ति काम कर रही प्रतीत होती है अब ऐतिहासिक दृष्टि से विचार किया जाता है।

प्राप्त ऐतिहासिक साधनो में श्रीमाल नगर का सबसे प्राचीन उल्लेख ७ वीं शताब्दी का प्राप्त होता है। उस समय यह गुजरात की राजधानी थी। वि० सं० ६६७ के करीब प्रसिद्ध चीनीयात्री. हुयन्यांग गुजरात की तरफ से यहाँ आया था उसने लिखा है कि "यहाँ विधर्मियों की सख्या अधिक है और बौद्धों की थोड़ी है यहाँ एक ही संघाश्रम (बौद्ध मठ) है, जिसमें ही नयान संप्रदाय के १०० सौ श्रमण रहते हैं जो सर्वास्तिवादी है" इससे यहाँ बौद्ध धर्म का प्रचार कम ही हुआ सिद्ध होता है।

वि० सं० ६८५ में प्रसिद्ध ज्योतिषी ब्रह्म स्फुट सिद्धांत ग्रन्थ की रचना की और शिशुपाल वध महा काव्य-रचियता माघ कवि यहीं का रहने वाला था। इससे यह नगर विद्या का अच्छा केन्द्र रहा प्रतीत होता है।

श्रीमाल नगर में जैन धर्म प्रचार का वास्तविक समय

वि० सं० ८३५ में उद्योतन सूरिजी ने कुवलय माला कथा जालौर में बनाई। उसकी प्रशस्ति मे अपनी गुरु परम्परा बतलाते हुए वे लिखते हैं कि उनके पूर्वज शिवचन्द्र गणी महत्तर पन्जाब के पव्वइया नगर सं जिन वन्दिन की तीर्थ यात्रा के प्रसंग से भिल्ल माल नगर पधारे और वहीं रहने लगे।

"सिद्ध चन्द गणि अह महपरोति सो सत्थ आगओ देस।
सो जिण वंदन हेउ कहवि भमन्तोक्कमेण संपत्तो:
सिरि भिल्ल माल णयरम्मि, संठिओ कप्प रुक्खोला॥

इनके शिष्य यक्षदत्त एवं उनके शिष्यों ने गुजर भूमि को जैन मन्दिरों से से मंडित की।

इस महत्त्व पूर्ण उल्लेख से कई बातों पर नवीन प्रकाश पड़ता है। श्रीमाल

महात्म में जहाँ गौतम ऋषि के द्वारा यहाँ जैन धर्म प्रचार का उल्लेख है, उक्त उल्लेख से यह कार्य शिवचन्द्र गणि व उनके शिष्य-संतति द्वारा सम्पन्न हुआ प्रतीत होता है। महात्म्य में गौतम के काश्मीर से यहाँ आकर जैन धर्म प्रचार का का उल्लेख है। प्रशस्ति में भी शिवचन्द्र गणि के पंजाब से आने का निर्देश है। अतः दोनों की संगति बैठ जाती है।

भिन्न माल के निवासी श्रेष्ठि तोड़ा की १६ वीं सदी की वंशावलि के अनुसार उस वंश का पूर्वज सं० ७७५ में जैन धर्म का प्रतिबोध पाया था। उक्त वंशावलि का आवश्यक अंश यहाँ उद्धृत किया जाता है—

"अथ भारद्वाज गोत्रे संवत् ७९५ वर्षे प्रतिबोधित श्रीमाली ज्ञातीय श्री शांतिनाथ गोष्ठिक श्री भिन्नमाल नगरे भारद्वाज गोत्रे श्रेष्ठी तोडा तेहनो वास पूर्विली पोली भट्ट नई पाडि कोडीनो नीदय हारियो तेहनी गोत्रजा अंबाई नगरनि पर सरि गोपी सरोवरि देव्या ना ठाम, नेऊ सहिस, तेह मांहि ईशाण कुण दिशि चम्पकवाडी; तेह माहि चैत्य, तिहु पामर आवो ना वृक्ष तिहाना स्थान कि चतुर्भुज स्वरूप, रूप मइ हाथरि न हुइ तु काकुनी लीटी पाटलिह की गई, नैवेद्य, लापसी, पूडला, खीचडु, ज्वारिउ, चौंत्री, आमोईए, पुत्रजन्मइ, पारणे भिमु डर्ण जमणी नु कापडु, पइ नइ सहर्षी, १ पुत्र जन्मइ, पुरीइ, अर्द्ध कर की जई।

संवत् ११११ वर्ष श्री भिन्न माल भठग मनुष्य नी कोडि मरण गई, तेहि पछ्या, श्रेष्ठ नाठा चेलाहरा माहि पायभिन्ना में १

वंशावलि यद्यपि घटना के बहुत बाद की है फिर भी इसमें कतिपय ऐतिहासिक तथ्यों का पता चलता है। सं० ११०० के आस पास यहाँ कोई शत्रु का आक्रमण हुआ होगा। सं० १०८१ में महमूद गजनवी ने सोमनाथ पर आक्रमण किया था। और वहाँ से श्रीमाल नगर दूर नहीं है। वह नगर उस समय समृद्धि शाली नगर था। अतः विशेष सम्भव है उसने यहाँ भी उपद्रव किया होगा, जिसमें बहुत मनुष्य मारे गये हों।

१० वीं शती के सुप्रसिद्ध ग्रन्थकार सिद्धर्षि यहीं के निवासी थे। प्रभावक चरित्र के अनुसार इनके पिता श्रीमाल के श्रेष्ठियों में अग्रणी शुभकर थे व इनकी माता का नाम लक्ष्मी था। योग्य वय में सिद्धर्षि का विवाह हो गया पर वे

१—देखें जैन साहित्य-संशोधक खं० ३० अं० ३ पृ० २०६

जुआरियों की बुरी संगत में पड़ गये थे। अतः दिन रात उन्हीं के साथ बीताते व आधीरात को घर आते इससे इनकी स्त्री बहुत दुःखी रहती थी। एक दिन इनकी माताने दरवाजे बन्द कर दिये। आपने इसके बाद देरी से आकर द्वार खोलने की आवाज दी। माता ने शिक्षा देने के लिये कहा कि द्वार नहीं खोलूंगी। इस समय जिसके द्वार खुले हों उसी के पास चले जाओ। इससे खिन्न होकर सिद्धर्षि वहाँ से लौटकर जैनाचार्य गर्गर्षि के उपाश्रय के द्वार खुले देख उसी मे आ घुसे और आपने तिरस्कृत दुखित होकर आचार्य श्री के समक्ष शिष्य बनने की इच्छा प्रगट की। आचार्य श्री ने घरवालो की अनुमति प्राप्त होने पर दीक्षा देने का कहा। तब आप वहीं बैठे रहे। प्रातःकाल खोज करते हुए शुभंकर श्रेष्ठि आये और घर चलने को बहुत समझाया पर उन्होंने नहीं माना। तब निराश होकर दीक्षा लेने की अनुमति देदी। दीक्षा ले लेने के बाद इन्हें बौद्ध तर्क शास्त्र के अभ्यास की उत्कंठा हुई। गुरु श्री के पूछने पर उन्होंने बौद्ध विद्यालय में जाने की अनुमति नहीं दी। पर उत्कट इच्छा को वे रोक नहीं सके और बौद्ध विद्यालय में अभ्यास करने चले गये। वहाँ अध्ययन करते हुए बौद्ध धर्म से प्रभावित होकर आपने बौद्ध दीक्षा ग्रहण कर लेने का निश्चय कर लिया, पर वचन बद्ध होने से अपने गुरु श्री के पास आये। गुरु श्री ने सु प्रसिद्ध आचार्य हरिभद्र सूरिजी की ललित विस्तरा नामक चैत्यवंदन वृत्ति को पढ़ने को दी जिसे पढ़ने पर सिद्धर्षि का मन जैन दर्शन में स्थिर होगया। आपकी असाधारण प्रतिभा व वैराग्य का परिचय 'उपमिति भवप्रपंचा' कथा की रचना द्वारा मिलता है। प्रस्तुत महान रूपक ग्रन्थ की रचना सं ९६२ में यहीं हुई थी। यह अपने ढग का विश्व साहित्य में एक ही अनुपम ग्रन्थ है। इसके अतिरिक्त आपके रचित न्याय वतार वृत्ति आपके दार्शनिक विद्वत्ता की परिचायक है। उपदेश माला वृत्ति भी आपको विशिष्ट टीकाकार के रूप में उपस्थित करती हैं।

प्रभावक चरित्र के अनुसार आप सुप्रसिद्ध माघ कवि के चचेरे भाइयों पर माघ कवि का समय ७। ८ वीं शताब्दी होने से मुनि कल्याण विजयजी ने इन्हें माघ का वंशज होना संभव बतलाया है।

प्रभावक चरित्र के अन्तर्गत १९ वें प्रभावक वीरगणि का जीवन चरित्र दिया गया है। वे भी भीनमाल के निवासी प्रागहर शिवनाग नामक कोटिध्वज सेठ के पुत्र थे। इनकी माता का नाम पूर्णलता था। योग्य वय मे ७ कलाओ के साथ इनका विवाह कर दिया गया। धर्म संस्कार वाले होने से ये पर्व दिनों मे

१—दे० प्रभावक-चरित्र पर्यालोचन पृ० ७८.

साचोर की यात्रा करने जाया करते थे। माता के काल धर्म प्राप्त हो जाने पर इनको संसार से विरक्ति हो गई। अत धन दौलत स्त्रियों में बाँट कर व धर्मकार्यों में लगा कर त्यागी बन गये। साचोर में जाकर आप भी महावीर की आराधना करने लगे। ये आठ २ उपवास से पारना करते व स्मशान में जाकर कायोत्सर्ग ध्यान में खड़े रहते थे।

वीर गणि को मथुरा के विमल गणि ने अग विद्या की आम्नाय दी थी। इन्होंने थिरा गाँव के कतरों से जीवहिंसा का त्याग करवाया व पाटन के राजा चामुण्डराज से जीव रक्षा का फरमान प्राप्त किया था उनके प्रदत्तावासक्षेप के प्रभाव से चामुण्ड राजा को पुत्र प्राप्ति हुई थी। उनका जन्म स० ९३८ में दीक्षा ९८० व स्वर्गवास ९९१ में होने का कहा गया है। मुनि कल्याण विजयजी के मतानुसार ये ११ वीं शती के पूर्वार्द्ध के हैं।

१८ वीं शती के न्याय सागरजी यहीं के ओसवाल मोटा शाह की पत्नी रूपा के पुत्र थे। इन्होंने उत्तम सागरजी के पास दीक्षा भी यहीं पर ली थी। शाह मोटा के घर जैन चैत्य होने का भी उल्लेख प्राप्त है। इन न्याय सागरजी का विशेष परिचय जानने के लिये मुनि जिनविजयजी का संपादित जे. ए. गुर्जर काव्य सचय से चार में प्रकाशित प० न्याय सागर निर्वाण रास देखना चाहिये।

१७ वीं शताब्दी के मुक्ति सागरजी के यहाँ पधारने का उल्लेख भी उपर्युक्त ग्रन्थ में प्रकाशित राजसागर सूरि निर्वाण रास में मिलता है।

श्रीमाल नगर में लिखित प्रति।

स० १३८४ के आश्विन सुदि १३ सोम को श्रीमाल नगर में लिखित शांतिनाथ चरित्र की पुष्पिका पाटन भण्डार सूची पृ० २४१ में प्रकाशित है।

कतिपय अन्य जैन लेख

जैन साहित्य के संक्षिप्त इतिहास के अनुसार जिनप्रभु सूरि के सत्यपुर कल्प में वल्लभी नगर के भग हो जाने पर वहाँ की जैन मूर्तियें श्रीममालादि आ गई थी लिखा है। वहाँ के लोग भी दुष्काल व नगर भंग के कारण यहाँ आ के बस गये थे। (पृ० १७३) स० १०७४ में श्रीमाल नगर में दुष्काल पड़ा तब यहाँ की बहुत बस्ती गुजरात में आ गई। (पृ० ३०८) यद्यपि इससे पूर्व भी अनेक श्रीमाल कुटुम्ब गुजरात में समय २ पर आकर बसते रहे। सिद्धराज के समय श्रीमाली ज्ञातीय सज्जन मन्त्री था, तब उधर भी श्रीमालियों के बसने की अनुकूलता होना सम्भव है। स० ११०० के आसपास लाट देश गुजरात के साथ

जोड़ा गया, वहाँ भी श्रीमाली जाति के दण्डनायकादि थे। वहाँ के श्रीमाली लाडवा श्रीमाली कहलाये। विजय प्रशस्ति काव्य की टीका के अंश गुण विजयने यहाँ बनाया था। (पृ० ५८१) सं० १६५२ में देव विजय गणि ने जैन रामायण की यहीं पर रचना की (पृ० ५६१) सं० १२६२ के माघ सुदि को श्रीमाल नगर में जिन पर लेखाध्ययन पट् स्थानक विवरण की रचना की।

उपकेश गच्छ पट्टावली के अनुसार सं० ११०८ में देवगुप्त सूरि का पट्टोत्सव इसी नगर के श्रेष्ठि भैंसाशाह ने ८ लाख खर्च करके किया था। उपकेश गच्छ प्रबन्ध के अनुसार १४ वीं शताब्दी में इस गच्छ के यहाँ दो जैन मन्दिर थे।

भीनमाल नाम—

श्रीमाल महात्म्य में श्रीमाल का नाम भीनमाल १२ वीं शती में श्री हीन होने से पड़ा कहा गया है व प्रभावक चरित्र व प्रबन्ध संग्रह के अनुसार श्रीमाल का भिन्न नाम करण माघ कवि की निर्धन अवस्था में देकर भोजराजा ने किया था। पर वि० स० ७३३ में रचित निशीथ चूर्णि@, स० ८३५ की कुवलय माला ※ व सं० ९६२ के उपमिति भाव प्रपञ्चा कथा ♡ में इसका नाम भिन्न माल ही मिलने से उपर्युक्त दोनो कारण प्रमाणित नहीं ज्ञात होते।

मेरे नम्र मतानुसार भिल्लों की बस्ती होने से इसका नाम भिन्न माल प्राचीन व प्रसिद्ध रहा होगा। भिन्न माल ही भिन्न पाल-भीनमाल हो गया है।

श्रीमाल नगर का एक सूर्य मन्दिर

ओझाजी के निर्देशानुसार यहाँ पर जगत स्वामी (जय स्वामी) नामक सूर्य का मन्दिर है जो राजपुताने के प्राचीन सूर्य के मन्दिरों में से एक है। इसको लोग जगराम डेरा कहते हैं। इस मन्दिर के स्तम्भो पर भेंट, जीर्णोद्धार आदि के कई लेख खुदे हैं जिनमे से नव तो इसी मन्दिर के भग्नावशेष के पास के स्तम्भो पर है, शेष में से पांच चोराडजी की धर्मशाला मे खड़े किये गये है, और एक नगर के दक्षिण ओर के महालक्ष्मी मन्दिर में लगा है।

सूर्य मन्दिर का जीर्णोद्धार वि० सं० १११७ माघ शुक्ला ६ रविवार को

@ उल्लेख- रूप्पमयं जहा भिल्ल माले वम्भ लातो

※ उद्धरणं पहले दिया जा चुका है (निशीथ चूर्णि १०- २५५)

♡ तत्रेयं तेन कथा कविना निःशेष गुण गणाधारे) श्री भिल्लमाल नगरे गदिताग्रि मंडपस्थेन।

राजा कृष्णराज के समय में हुआ था। इसी के समय का एक दूसरा लेख वि० सं० ११२३ का एक दूसरे स्तम्भ पर खुदा है। परमारों के अतिरिक्त यहाँ पर महाराज पुत्र जयतसिंह देव (चौहान) के समय का वि० १२३९ आश्विन कृष्णा १० बुधवार का जालोर के चौहान उदयसिंह के राज्य समय के वि०सं०१२६२, १२७४ और १३०५ क तथा चाचिग देव का वि० सं० १३३४ एवं सामन्तसिंह के राज्य काल के वि० सं० १३४२ और १३४५ के भी लेख हैं।

"यह सूर्य का मन्दिर टूटी फूटी दशा में है। जिस समय पर जेम्स कैम्पबेल यहाँ गया, उस समय इस जीर्ण शीर्ण मन्दिर की उत्तरी दीवार विद्यमान थी, परन्तु खेद का विषय है कि प्राचीन वस्तुओं का महत्व न जानने वाले यहाँ के तत्कालीन पुलिस सुपरिंटेंडेन्ट ने उसे तुड़वाकर यहाँ के बहुत से पत्थर अपने बंगले में चुनवा दिए।

यह तो ओझाजी के अवलोकन के समय की बात है, अभी तो इस प्राचीन स्मारक का नाम शेष ही रह गया है। सं० १३४२ वाला लेख महालक्ष्मी के मन्दिर में मेरे अवलोकन में अवश्य आया।

श्रीमाल नगर के जैन मन्दिर

सोलहवीं शताब्दी के श्रेष्ठि तोडा की वंशावली में उसे शान्तिनाथ गोष्ठिक बतलाया गया है। इससे यहाँ भ० शान्तिनाथ के प्राचीन मन्दिर का पता चलता है। दूसरे यहाँ का प्राचीन व प्रसिद्ध मन्दिर महावीर स्वामी का था, जिसे सं० १३३३ में [illegible] प्रदीप पूर्णचन्द्र के उपदेश से श्रीमाल प्रांत के [illegible] नैगम जाति के [illegible] सुभट चेटक धर्मसिंह ने अपने कल्याण के लिये आश्विन मास की यात्रा के महोत्सव व आसोज शुक्ल १४ को महावीर देव की पूजा के लिये [illegible] ५ (द्रम) और अधिकारी से मांडवी की लकाव में से प्रतिवर्ष १३ द्रम्म और ७ विंशोपक दानका ठहराव किया था जिसका लेख प्राचीन जैन लेख संग्रह लेखांक ४०७ में प्रकाशित है। जिन प्रभ सूरिजी ने भी श्रीमाल पत्तन के वीर तीर्थ को स्मरण किया है। ११ वीं शती के सुप्रसिद्ध कवि धनपाल ने सत्य पुरीय महावीर [illegible] में श्रीमाल नगर की मूर्ति का सूचन किया है यह मेरे ख्याल [illegible] जिनालय को लक्ष्य कर के ही कहा गया है। [illegible] महावीर मन्दिर [illegible] प्राचीन [illegible] है।

[illegible] मन्दिर के [illegible] (य [illegible]) तालाब के तटपर अब भी पड़े हैं। ओझाजी के निर्देशानुसार उसके सुन्दर नक्काशी वाले [illegible] जैन मूर्ति सहित एक तोरण का [illegible] तालाब का नैऋत्य कोण में नहर की नींव में

लगा हुआ है।

सं० १३०५ में जिन पालोध्याय रचित खरतर युग प्रधान गुर्वावलि से सं० १२७८ से सं० १२७८ में जिनेश्वर सूरि के सा० यशोधवल के साथ यहाँ पधारने का उल्लेख है ज्येष्ठ शुक्ल १२ को यहाँ श्री विजय, हेमप्रभ, श्री तिलक प्रभ, विवेक प्रभ, चरित्र माला, ज्ञानमाला और सत्य माला की दीक्षा दी गई थी आषाढ़ शु०१० को सा० जगद्धरके सभवद्धर्म की प्रतिष्ठा व श्री शांतिनाथ की स्थापना का भी उसमें उल्लेख है। इस गुर्वारलिकी पंक्ति में लिखा है कि सं० १३०६ के ज्येष्ठ शुक्ला को यहाँ कुंथुनाथ, अरनाथ की प्रतिमा की प्रतिष्ठा की गई। द्वितीय वेला में सा० धीधा ने ध्वजा रोपण करवाया।

१६ वीं शती के कवि मेह रचित तीर्थ माला में लिखा है—

श्रीजालउरि नयरि भीनवालि, एक बिप्र बहुनद विचारि।
निउ-सहस वाणिज नाघणां, पंचि तालीस सहस विप्रांतणां ॥ ६४ ॥
सालां तालां नर देहरां, प्रासादे जिण पूजा करों।
मुनिवर-सहस एक पोसाल, आदि नगर पहवड भीन माला ॥ ६५ ॥

इससे श्रीमाल की समृद्धि का अच्छा परिचय मिलता है—
पं० महिमा रचित चैत्य परिपाटी मे' लिखा है—

भीनमालनि छ देहरि रे, छासी निपंच तालरे चतुर नर।
मोदिरा (मोहिरां) माहि जाण ज्योरे, लाल प्रतिमा च्यार
विशालरे। च० प्र०

श्री गया सूरि रचित प्राचीन तीर्थ माला में लिखा है।

श्रीवल्लभी पुर निर्गत रथ मधि रूढ़ो जितो महावीर।
अश्व युग पूर्णिमास्यां श्रीमाल पुरः स्थितो भवति। १।

सौभाग्य विजय रचित तीर्थ माला में केवल पार्श्वनाथ का ही उल्लेख है।

नडुलाई में आदवों वाली समोरे, भिन्नमाले प्रभुभाता २२ शिव विजयकृत तीर्थ माला में—

भिन्नमाल भय भंजणनाथ, पालणपुर श्री पारसनाथ ज्ञान विमल सूरि रचित तीर्थ माला में—

तिहां थी भिन्नमाले, आवियारे भेरण श्री पास।
च्यार प्रासाद तणा सु बिंब निरख्या उल्लास ॥

वर्तमान में यहाँ सात ७ जैन मन्दिर है। महावीर (वधुवास में पहले यहाँ आदिनाथ की मूर्ति थी) दो-तीन गाँधी भूता के वास में शान्तिनाथ

(१६३४ प्रतिष्ठित) ३ गृह मन्दिर में सपरिकर पार्श्व मूर्ति (१८८३ प्रतिष्ठित) ४ सेठों के वास में पार्श्वनाथ मन्दिर ५ शान्तिनाथ मन्दिर बाजार में (पहले आदि नाथ मूर्ति होने का कहा जाता है । ६ शहर के एक कोस दूर गोड़ी पार्श्व चरण ७ शंखेश्वर पार्श्व चरण । इनके विषय में यतीन्द्र विहार दिग्दर्शन भा १ में प्रकाश डाला गया है

वर्तमान मन्दिर अधिक प्राचीन नहीं प्रतीत होते । पर उनमें कई परिकर हैं वे प्राचीन अवश्य है। एक मन्दिर शिखर बद्ध नया बना है। उसमें प्रवेश करते ही एक भोयरा है । उसमें कुछ खंडित मूर्तियें बतलाते हैं एवं पार्श्वनाथ मन्दिर मे भी एक भूमि गृह है, इनमें जो भी भग्नावशेष रखे हुए हों उनको बाहर निकलवा के देखने की परमावश्यकता है । वर्तमान मन्दिरों में पार्श्वनाथ मन्दिर ही मुझे सर्वाधिक उल्लेखनीय प्रतीत होता है । यहाँ के एक काले पाषाण वाले परिकर पर स० १०११ चैत्र कृष्णा ८ मी का लेख खुदा है । इस मन्दिर की मूल नायक प्रतिमा काफी प्राचीन एवं चमत्कारी है। इसके चमत्कार के वृत्तान्त के सम्बन्ध में विशेष जानने के लिये स० १६६२ में पुण्य कमल रचित पार्श्वस्तवन देखना चाहिये जो कि जैन सत्य प्रकाश के व १२ पृ० १४४ व १३ पृ० ७० में प्रकाशित है । यहाँ उसका संक्षिप्त सार मात्र दिया जा रहा है।

मुसलमानी साम्राज्य में हमले के समय इस परिकर धातु मूर्ति को भूमि में भण्डारस्थ कर दीगई थी जो सं० १६५१ में आठ प्रतिमाओं सहित निकली। संघ ने इसे प्राचीन शांतिनाथ जिनालय में स्थापित कर दी । उस समय भिन्नमाल जाघाल के गजनी खान के अधिकार में था। जब उसने धातु प्रतिमा के निकलने का वृत्तान्त सुना तो उसने वे प्रतिमाएँ अपने यहाँ मगवाली और इनको गला कर हाथियों के घण्टे बनवाने की आज्ञा देदी । संघ ने हाथियों के घण्टों के लिये ४ हजार पीरोजी देने को कहा, पर इससे उसका लोभ बढ़ गया और लाख पिरोजी की माग की तब जैन संघ निराश हो गया व वरजांग सेठ ने जहाँ तक प्रतिमा मन्दिर में न आवे अन्न खाने का त्याग कर दिया ।

इधर अधिष्टायक देव ने खान को समझाया पर वह न माना । देव ने उसकी सेना में मरकी का उपद्रव प्रारम्भ कर दिया। उससे हाथी घोडे साबत बीवियें व बेटे मरने लगे, इधर दुष्काल पड़ जाने से जालोर परगने में चारों और त्राहि २ मच गई । प्रजा व सूबेदार ने कहा कि प्रतिमा को यथा स्थान पहुँचा दी, जिस पर खान न माना। अन्त में खान स्वय बीमार पड़ा, उसे निद्रा व भोजन हराम हो गया । दिनो दिन अवस्था बिगड़ने लगी । अब खान का होश ठिकाने आया । उसने प्रभु प्रतिमा से क्षमा मांगी एवं जीवन दान चाहा । रात को

शांति रही। दूसरे प्रभावित हो प्रातः काल ही प्रतिमा जालोर जैन संघ को सुपुर्द कर दी गई। संघ के हर्ष का पार न रहा। पर जांग सेठ ने १३ महीने में पारणा किया। १४ दिन प्रतिमा निरन्ता जाग में रही और पीछे भिन्न माल पहुँचा दी गई। संघ ने शांतिनाथ मन्दिर के पास ही नया मन्दिर बनवा के प्रतिमा वहाँ मूल नायक के रूप में स्थापित की जो अब भी विराजमान है, मूर्ति के एक कान का हिस्सा टूटा हुआ है। कहा जाता है कि म्लान ने उसे गंडा दरंग दिया था। उसी का यह स्मारक है।

थोड़े वर्ष हुए श्रीमाल नगर के आस पास खोदते हुए एक विशाल परिकर वाली सुन्दर महावीर प्रतिमा प्राप्त हुई, जिसे भी इसी मन्दिर के (प्रवेश करते हुए) एक अलग कमरे में स्थापित की गई है। प्रतिमा व परिकर बहुत ही विशाल व मनोहर है। प्रतिमा पर लेख इस प्रकार है—

१ संवत १२३८ वर्षे माह सुदि १ श्रीमालथारा गच्छे

श्री नागड सुत श्री निन्दाणांग श्रेयोर्थं व शा०

श्री अभय कुमारेण श्रेये श्री महावीर प्रतिमा कारिता।

कहा जाता है कि इस प्रतिमा के साथ ही पीतल के दो विशाल घण्टे भी निकले थे जो उपाश्रम में रखे हुए हैं। मैंने घण्टो को जा के देखा, काफी वजनदार है। लेख भी उन पर उसी समय के खुदे हुए हैं। अँधेरा व जल्दी होने से लेखों की नकल न ले सका।

सं०१५४६ की कल्प सूत्र की प्रशस्ति में १३ वीं शती के कुलधर शाह के श्रीमाल नगर में मन्दिर बनवाने का उल्लेख है, पता नहीं वह मन्दिर कौनसा है?

श्री जावालपुरे भिन्नमाले श्री बाग्भटे तथा।
प्रासादाः कारिता स्तेन निजवित्तव्ययाद्भागः॥ १४॥

(प्रशस्ति संग्रह पृ० ४३)

अन्त मे प्रसंगवश कुछ अन्य बातों का निर्देश कर देना आवश्यक समझता हूँ। गत मार्गशीर्ष मास मे बड़गांव स्थित पूज्यवर मुनि ज्ञानसुन्दरजी के दर्शनार्थ जाने पर उनके ही पास एक मुनिराज मिले, जिनसे श्रीमाल नगर के सम्बन्ध मे बातचीत होने पर आपने सेठ फूलचन्दजी के नाम से रुक्का लिख दिया। जिनसे वहाँ के दर्शनीय स्थानों का हमे परिचय पाने में सुविधा हो। फूलचन्दजी हमे जगाम डेरा के खण्डहरों की ओर ले गये। और वहाँ से शिव मन्दिर जिसमे

एक प्राचीन बावड़ी व अवशेष पड़े हैं, उनको दिखलाया। आप से बात चीत कर रहे थे वहीं आपके भाई गेनमलजी से ज्ञात हुआ कि उनके पास एक ताम्र पत्र है। मैंने उसे मंगा कर देखा। वास्तव में वह एक प्राचीन (११ वीं शती-का) ताम्र पत्र है। कहीं २ कुछ अक्षर अस्पष्ट रहने से पूरा आशय निकाला नहीं जा सका। पर किसी श्रीमाली ब्राह्मण को महाराजाधिराज देव पाल के दान देने का उसमें उल्लेख है। इस अवकाश में पढ़ने के लिये छाप या फोटो लेना आवश्यक था पर वहाँ यह सुभीता नहीं की जा सकी। अतः बीकानेर आने पर यह ताम्रपत्र मंगवाया गया सम्भव है खोज करने पर अन्य भी ताम्र पत्रादि वहां प्राप्त हों जिनसे यहां के सम्बन्ध में कुछ नवीन ज्ञातव्य मिल सके।

सेठ गिरेमलजी बड़े भद्र प्रवृत्ति के सेवा भावी व्यक्ति हैं। उन्होंने शाम को हमें महालक्ष्मी आदि के मन्दिर दिखलाये। व दूसरे दिन प्रातः काल तीन घण्टे के लग भग उन्होंने जाकर तालाबादि स्थानों को दिखाने लग गये। आपके साथ हमने घूम फिर देखा तो हमें स्थान स्थान पर प्राचीन भग्नावशेष बिखरे हुए मिले। तालाब पर एक दीवार में जैन परिकर का टुकड़ा देखा व महावीर मन्दिर का खण्डहर भी देखा। कुबेर की आधी गड़ी हुई विशाल मूर्ति भी देखी जिसे ओझाजी ने ११ वीं शती की बतलाई है। कई बावड़िया भी देखी और कोठी के नीचे रास्ते पर गड़ा हुआ एक मकराने पत्थर का शिलाखंड देखा जिसमें विशाल लेख खुदा हुआ है। शिलालेख वर्षों से खुले स्थान व मार्ग में पड़े रहने के कारण उसके कुछ अक्षर, घिस गये हैं। बहुत सा अंश तो अब पृथ्वी में गड़ा हुआ होने से पढ़ा नहीं जा सकता। इस प्रकार श्रीमाल नगर के प्राचीन अवशेष स्थान २ पर पड़े नष्ट हो रहे हैं। कई टीबे पड़े हैं जहां भील आदि खुदाई कर पुरानी ईंटे आदि निकालते हैं। एक ईंट मैंने भी गिरेमलजी से प्राप्त की पर रास्ते में टूट जाने से भग्नावस्था में हमारे कला भवन में रखी है। बहुत से मन्दिर व स्मारकों के पत्थर लोगों ने घरों में लगा रखे हैं। श्रीमालनगर मारवाड़ का प्राचीनतम और गौरवशाली नगर है। इसके उत्थान और पतन के साथ इतिहास की अनेक कड़ियां गुथी हुई हैं। प्राचीन समय में यह गुजरात की राजधानी रहा है। और पीछे से मारवाड़ का प्राचीन स्थान। यहां के हजारों ब्राह्मण व वैश्यों के वंशज आज भारत के कोने २ में निवास करते हैं। श्रीमाली ब्राह्मण श्रीमाल जैन व पोरवाड़ आदि जातियों का मूल-स्थान यहीं होने से भी इसका महत्व बहुत अधिक है। जैसा कि ओझाजी ने लिखा है "अवशेषों की सार सम्भाल के प्रति सरकार और जनता के सचेष्ट न रहने के कारण यहां के अनेको ऐतिहासिक साधन ताम्रपत्र, शिलालेख, हस्तलिखित ग्रन्थ एवं शिलास्थापत्य के उत्कृष्ट अवशेष नष्ट हो गये व अब भी हो रहे हैं। यह देख कर हृदय को बड़ी ठेस

सकती है। केवल यहाँ की बात नहीं-जहाँ कहीं भी जाता हूँ-यो यह हाल देखता हूं।

राजस्थान प्रान्त इतने दिनों तक अनेक छोटे, बड़े राज्यों में विभक्त था-अब एक बन गया है। अतः उसके कर्णधारों का व नागरिकों का उत्तरदायित्व बहुत बढ़ जाता है। जिस प्रकार राजस्थान ने शताब्दियों तक भारत में अपना विशिष्ट स्थान वीरता के कारण बना रखा था। इसे भी दूसरे प्रान्तों की टक्कर में अपने को उन्नत बनाये रखना है तो उसकी सर्वांगीणी उन्नति के लिए सारी शक्ति लगा देनी होगी। अन्यथा शीघ्र ही पिछड़ कर अपना पूर्ण गौरव खो बैठेंगे। हमारे नरेशों ने विद्वानों, व कलाकारों को प्रश्रय देकर कितना बड़ा साहित्य व कलाकृतियों का निर्माण करवाया। पर हम तो उस देन को सम्भाल रखने और प्रकाशन में लाने को भी समर्थ नहीं हो रहे हैं। हमने प्रान्त के साहित्यकार और कलाकारों के विकास की ओर कभी ध्यान भी नहीं दिया। मातृभाषा को हमने ठुकरा दी। सिन्धी आदि साधारण बोलियों का राष्ट्रीय विधान में नाम है पर हमारे इतने बड़े प्रान्त की-भाषा राजस्थानी का उसमें नाम निर्देश तक नहीं। फिर भी हम कानों में तेल डाल बैठे हैं। कोई जागृति नहीं नजर आती। किसी ने आन्दोलन उठाने की नहीं सोची। और सोची हो तो उसे जनता का सहयोग नहीं मिला। अतः वह करे भी क्या? अब राजस्थान प्रान्त का एक-म्यूजियम संग्रहालय शीघ्र ही स्थापित होना चाहिये। जिससे राजस्थानी साहित्य, चित्र, शिल्प-स्थापत्य, कला, कारीगरी का पूर्ण परिचय प्राप्त हो सके। हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज व उनका संग्रह होना चाहिये। मौखिक लोक-साहित्य को भी। विशेष रूप से संग्रह करवाना आवश्यक है। प्रान्त का इतिहास तैयार होना चाहिये। पुरातत्व की रक्षा का पूर्ण प्रबन्ध होना चाहिये। श्रीमाल नगर आदि पुराने स्थानों की खुदाई होना प्रान्त के गौरव की अभिवृद्धि करने के लिए बहुत आवश्यक है, बिहार सरकार की भाँति पुरातत्व की सुरक्षा का कानून बन जाना चाहिये। जिससे जो उन्हें नष्ट करें उन्हें उचित दण्ड दिया जाय।

आशा है मेरे उपयोगी सुझावों को सरकार शीघ्र ही कार्य रूप से परिणित करेगी।



महाराजा सुजाणसिंहजी के जिन सुख सूरि को दिए दो विशिष्ट पत्रः—

[ले० भँवरलाल नाहटा]

जैनाचार्यों का राजा महाराजादि से बहुत अच्छा सम्बन्ध रहा है फलतः जैन धर्म के प्रचार में बहुत अनुकूलता रही। खोज करने पर इस सम्बन्ध की घनिष्टता के प्रमाण मिलते हैं जिनमें में से महाराजा अनूपसिंहजी का जिनचन्द्र सूरिजी का हुआ पत्र व्यवहार जैन सिद्धान्तभास्कर में प्रकाशित हो चुका है महाराजा अनूपसिंहजी के समान महान महाराजा सुजाणसिंहजी का जिनचन्द्रसूरि के पट्टधर आचार्य जिन सुख सूरिजी के साथ पत्र व्यवहार चालू रहा। हमारे संग्रह में सूरिजी के दिये हुए महाराजा के दो सुन्दराक्षर में लिखे हुए पत्र हैं व सूरिजी के महाराज को दिए हुए एक पत्र की नकल है, जिसकी नकल इस लेख में प्रकाशित की जा रही है।

महाराजा अनूपसिंहजी के पत्रों से इनका महत्त्व कई दृष्टियों से अधिक है। प्रथम तो ये पत्र बड़े सुन्दर अक्षरों में व लेखन के चारों ओर बोर्डर, एक पत्र के बीच में पुष्प लतिकाएँ चित्रित आदि सुशोभनों से अलङ्कृत हैं। दूसरा दोनों पत्रों में सम्वत् दिए हुए हैं। सं० १७७६ के मार्गशीर्ष शुक्ला ५ व माघ शुक्ला को ये लिखे गए हैं। तीसरी विशेषता प्रथम पत्र १२ संस्कृत पद्यों में है, दूसरे पत्र का प्रारम्भिक अंश संस्कृत पद्यों में फिर [illegible] दोहे, बाद परवाना राजस्थानी भाषा में सम्वत् सूचित करते हुए सम्वत् मिति आदि संस्कृत में लिखकर पूर्ण किया गया है। चौथा महत्त्व इस पत्र में सूरिजी के पास उपस्थित यतियों [illegible] अमालदार व राजमान्य [illegible] का नाम है और पत्र [illegible] के खास व्यक्तियों [illegible] आनन्दराम, [illegible] गोसाईं

विष्णुगिरि व पड़िहार लक्ष्मीदास का भी उल्लेख है। इनमें से खवास आनन्दराय के तो व्यक्तिगत रूप से सूरिजी को लिखे हुए अन्य २ पत्र भी हमारे पास संग्रह में है। ओझाजी के बीकानेर राज्य के इतिहास के पृष्ठ २८४ के अनुसार आनन्दराय नाजर का सं० १७८६ चैत्र वदि ८ को म० सुजानसिंहजी के समय में स्वर्गवास हो चुका था अतः सम्भव है एक ही नाम वाले ये दोनों भिन्न २ व्यक्ति हों। गुसाईं विष्णुगिरि भी संस्कृत के अच्छे विद्वान प्रतीत होते हैं। महाराजा के आज्ञानुसार श्लोक बद्ध पत्र के काव्यों की रचना आपने ही की थी।

प्रसंग वश जिनको उद्देश्य करके पत्र लिखे गये हैं व पत्रों में जिन २ व्यक्तियों के नाम आते हैं उनका सन्क्षिप्त परिचय भी यहाँ करवा देना आवश्यक समझता हूँ।

(१) जिन सुखसूरि-फोगपत्तन वास्तव्य सातलेचा बोहरागोत्रीय(पींचा मख) रूपचन्द (रूप्सी) की पत्नी रतना दे (सरूपादे) के आप पुत्र थे। सं० १७३८ के मार्ग शीर्ष सुदी १५ को आपका जन्म हुआ। १८ वर्ष की उम्र में सं० १७५१ को माघ वदि ५ को पुरपालसर ग्राम में जिनचन्द्र सूरिजी से आपने दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा-अवस्था न का नाम सुखकीर्ति रक्खा गया। सं० १७६३ (गुजराती वि० १७६२) के आषाढ़ शुक्ला ११ को सूरत में जिनचन्द्र सूरिजी ने ही आपको आचार्य पद प्रदान किया। पदोत्सव चोपड़ा गोत्रीय पारख लामीदास व सूरदास ने ११ हजार रुपये खर्च करके किया। एक बार घोघा बन्दर के नव खण्डा पार्श्वनाथ की यात्रा कर संघ के साथ खंभातीर्थ जाने के लिए आप जहाज से बैठे। समुद्र के मध्य जाने पर जहाज के नीचे का फलक भग्न हो गया और जहाज में जल भरने लग गया। आपने उस विकट परिस्थिति में दादा गुरु श्री जिन कुशल सूरि का ध्यान किया, जिससे गुरुदेव के प्रताप से वहाँ एक नवीन जहाज उपस्थित हुआ। सब लोग उसमें बैठे और सकुशल खंभात पहुँचे। शत्रुंजयादि तीर्थों की आपने यात्रा की। (१७६१) में की आपने जैसलमेर के जैन मन्दिरों का चैत्य परिपाटी स्तवन, सं० १७५१, चौबीसी (१७६४ खंभात)व अन्य स्तवन बनाए। सं० १७६७ पाटण से जैसलमेर के श्रावकों को भेजे प्रश्नों के उत्तर मय सैद्धांतीय विचार नामक ग्रन्थ आपके रचित उपलब्ध हैं।

सं० १७८० के ज्येष्ठ कृष्णा १० को ३ दीन के अनशन आराधना पूर्वक रिणी में आपका स्वर्गवास हुआ। श्रावकों ने उस स्थान पर स्तूप बनाया। आपके पट्टधर जिन भक्ति सूरिजी ने माघ सुदी ६ को इसकी प्रतिष्ठा की।

(२) महाराजा के दोनों पत्रों में सूरिजी के साथ उपाध्याय धर्मसिंह व राजसागरजी को वन्दना लिखी गई है। इनमें से धर्मसिंहजी तो बहुत प्रसिद्ध कवि थे। आपके रचित मारवाड़ी हिन्दी व संस्कृत की फुटकर रचनाओं की एक संग्रह प्रति स्थानीय वृहत् ज्ञान भण्डार में उपलब्ध है। इनका जन्म सं० १७०० में हुआ था। १६ वर्ष की अल्पायु में रचित आपका श्रेणिक रास इसी प्रकार सुर सुन्दरीरास, दशार्णभद्र चोपई अमर सेनवयसेनरास, शीलरास, श्रीमती चोढालिया आदि भाषा काव्य उपलब्ध हैं। सं० १७३१ में रचित भक्तामर काव्य की पाद पूर्ति "वीर भक्तामर" के नाम से प्रकाशित हो चुका है। आपके सम्बन्ध में विशेष जानने के लिए मेरा राजस्थानी व २ अ २ में प्रकाशित राजस्थानी भाषा और जैन कवि धर्म वर्द्धन शीर्षक लेख देखना चाहिये। राज सागर जी भी अच्छे विद्वान थे पर आपकी कोई रचना उपलब्ध नहीं है श्लोक बद्ध पत्र के अंत में यति नयन सिंह को भी अभिवादन लिखा गया है। इनके रचित भर्तृहरि शतक त्रयभाषा सं० १७८६ विजय दशमी बीकानेर में राजा आनन्दसिंह जी के लिए रचित उपलब्ध है।

(३) पत्र महाराजा सुजानसिंहजी ने लिखवा के भेजा है। आपका जन्म सं० १७४३ श्रावण सुदि ३ में व राज्याभिषेक का सं० १७५७ में हुआ था। महाराजा अनूपसिंहजी के आप पुत्र थे। आपके बड़े भ्राता स्वरूपसिंहजी के छोटी वय में (सं० १७५७ में) स्वर्गवास हो जाने से राज्याधिकार आपको ही प्राप्त हुआ। विशेष जानने के लिए बीकानेर राज्य का इतिहास देखना चाहिए।

(४) दोनों पत्र में खवास आणंद राम, पांडे पेमराज, गोसांई विष्णु गिरि का एवं श्लोकबद्ध पत्र में पड़िहार लखमीदास ने वन्दना निवेदित की है। इन में से खवास आणंदराम तो सुकवि व विद्वान थे। इनके रचित १ गीता भाषा, २ गीता महात्म्य, ३ एकादशी महात्म्यादि ग्रन्थ उपलब्ध हैं। अनूप संस्कृत लाइब्रेरी में महाराजा अनूपसिंहजी ने सं० १७४८ में आपको दीवान बनाया था जिसका परवाना भी विद्यमान है।

जिन सुख सूरिजी को दिए हुए महाराजा के पत्र

पत्रांक १

॥ श्रीलक्ष्मीनारायणो जयते ॥

॥ श्रीमत्सम राज विराजमान सौजन्य धन्य द्युति कीर्ति भान ॥

बीकानेर समाचार व० ७०

प्रताप संतापित तपो विधाता राजंति राज यवि वृंद राजाः ॥ १ ॥
षड्भारती भृज्जिन सौख्य सूरिनामान अत्यद्भुत शोभमानाः ।
श्री धर्मसिंहैः परितः पुराणै सु निश मुख्यैः प्रसंदन्मनीचैः ॥ २ ॥
श्री राज
सागरैर्विद्वद्‌हंस सेवित सागरैः । अन्यैः सत्कविभिः शास्त्र कला सकुल
कोविदैः ॥ ३ ॥
त्रिभिर्विशेषकम् । तदुचितं पहितं । छदनं मुदामरु महीश सुजाण नरे श्वरै ।
सपरिवार सुमंत्रि सुतैर्हितप्रणति संतत स्त्वया धार्यताम् ॥ ४ ॥
आर्याः सदा स्वीयसु सेवकानां कार्या परिष्ठात्प्रचुरानुकम्पा ।
संपालनीया सरसाभृशं मत्स्वहृदि स्नेह सुधा-प्रपूर्णाः ॥ ५ ॥
कुशलमत्र सदैवहि वर्त्तते शुभवतांभवतामनुकम्पया ।
मनसि कामयते भवतांहितं भवि कमेवसु सेवक सज्जनः ॥ ६ ॥
अत्रोचितंकार्य वरं सुपत्रेऽविचार्याचोत्सार्या समग्रशङ्काम् ।
वितर्क्यं सत्पषणोतस्मदीये स्वान्ते भृशंतोष भृतो भवंतु ॥ ७ ॥
यथान्येषां श्रीमतां सेवकानां प्रीतिपूर्णा प्रणति पद्यानि लिखयंतो,
सुपद्ये न चानंदरामोऽलिखरमंनतिं संनतः सद्लेस्मित् ।
पर प्रेमपूरेण पूरेणु का द्रा कयुनः पाद शुद्धा सु संपादनीया ॥ ८ ॥
अतिषय मृदुभावाच्छोभने प्रीति पत्रे लिखतिच बुधपांडे प्रेम राम प्रणामम् ।
निज हृदि इतिकृत्वा सेवकः शोभन स्यात् यमपिममिश श्वतु
प्रसादोविधेयः ॥ ९ ॥
नृप मनुगतोजात्यायो सोश्रितः पडिहार तां लिखति चदले लक्ष्मीदासोल
सल्ललि साक्षरैः ।
विमल मनसा प्रष्ठी भावोममाप्यवधार्य्यतांस्व हृदिच सुदाज्ञयः स्वामिन्
सदा निज सेवक ॥ १० ॥
८ ७ ७ १
संवन्न वर्षि स्वर सोम मुक्ते मासे शुभे हैमन मार्ग शीर्षे ।
दलेऽमले पंचम के तिथौ महि ने रवौ त्रिष्णु गिरि विपश्चित् ॥ ११ ॥
नृपाज्ञया काव्य वरैः पलाशंयतीश योग्यं मविलासमेतत् ।
लिपीचकारक्रम तोत्रपत्रे सर्वोहितत्संवतयोवधार्याः ॥ १२ ॥
युग्मस्म अन्योपि योमत्स्मार को भवेत्तं प्रति प्रणतिर्वक्तव्या ।
अत्राहर्निशम स्मदादिभि भवदीय स्मरण मनुष्ठीयतेऽलविदुषां पुरः
प्रचुर जल्पनेन ।
यतिवर नयन सिंहान प्रति पुनरभिवादये ॥ १३ ॥
॥ श्री ॥ ॥ श्री ॥ ॥ श्री ॥

❀ पत्र २ ❀

॥ श्री रामोजयति तराम् ॥

"स्वस्ति श्री मत्सकल गुणगण गरिष्ठ विशिष्ट वशिष्ठ विद्या विद्योतिताना षड्भारती भाना च्छादिताज्ञानति मिरविभाताना भ्राजमान भूरि भूमीश पाणि पल्लव स पल्लव पाणिपाद पद्माना विविधोत्तम मुकुटमणि निकरातय नीराजित चरण कमलानामनेक सेवक लोक वृ द मौलि स्तवक स्तुतार्चित क्रम युगलाना विविध कीर्ति मूर्ति सम्मोहित भू मडला खडतलाना विमल कला क लित ललित मति मन्धुर सरागा नानायतिवर निकर निपवित पूर्वा पर पार्श्वा भागाना श्री मदारू यतीश वृ द वृ दार केंद्राणामस्म श्री श्री श्री श्री श्री जिनसुख सूरीणां पाद पद्मोचित पत्र मद । श्री विक्रम पुरतः प्रेषितवान श्रीमन महाराजाधिराज महाराज श्री सुजाणं हास्तद वारतार्हदिव प्रणतियोऽवधार्या परा प्रीति पायनिव रतानुकन्या सपालिव तराम सदोहाकार्या। अत्रामत्या समाचारा श्रीमता सदा सानुमहदृष्ट्या विशिष्ट शुभयुता श्रीमता मस्माद्त्र भवता सर्वदा सुख सेविध भूत अस्योमवतिविति नित्य मन्या महे । भवात पूज्यास्यास्मदुपरि सर्वदा कृपा रक्षण तो धिकारक्षणीया । अत्रोचितकार्यतकार्य जात पत्रे लिखित्वा प्रेषणीय।

। श्री । चौपई ॥

सब गुण ज्ञान विशेष बिराजै, कविगण ऊपरि घन ज्यों गाजै ॥
धर्मसींह धरणी तल माही, पटिन योग्य प्रणति दल ताही ॥ १ ॥

—दोहा—

गुण सागर गणि प्राज्ञपणि, पंडित जोतिष धीर ॥
अत्तर कला युत राजकवि सागर राज गभीर ॥ १ ॥

दयाल आनदराम री नमस्कार वाचिज्यो अपरच पाडे पेमरामजी री नमस्कार अवधारिजो, गोसाई विष्णुगिरि को वंदन अवधारिजो। कृपा स्नेहो रखणीयो । अत्र भर वामत्रमवतामाजिगिमिपिच्छु मिरमिग्यान विधीयते

१७ ७६

समाभि । ॥ सवत्सत्र*शगता जिके री नाशो दिन मे मावा शित न्त दुर्गा तिथा विद तिपी कृत पत्रम् ।

पत्र महाराजाधि के स्वरया लिखित नतौ ग्रातत्र निरस्त ।

जिनसुखसूरीजी के महाराजा को दिया हुआ पत्र

॥ स्वस्ति श्रेष्ठमतीष्ट देवा प्रणम्य श्री मधवरनगरात् भट्टारक श्री जिन सुख सूरिभि श्री वीकपुर राजधानी विराजमानेषु भ्राजमानभूरि भूपाल मौलि माना विन पलन कमलेषु निशत्रुचन्द्र समुज्वलयश सुधा धवलि तदि ग्मडलेषुमा स्वस्मान

स्वलेपुराजाधिराज महाराज श्री ५ श्री सुजाणसिंह सिंहपुश्रियानिर्जिताखंडलेषु प्रणीयते प्रेमक्षेमपत्र मदः सदाश्रेय उभयत्र अपरंच श्री महाराजाजी रौ प्रीतिपत्र आयो वाचीमन राची साची प्रीति जाणि सुख पायो श्री महाराज जी मोटा राजेश्वर धौखडदर्शन प्रतिपाल भूपाल छै श्री हिन्दुधर्म रा छत्र छै म्हे पिण श्री इष्ट देवजी रौ जपलाय स्मरणधरता श्री महाराजा जी नै शुभ आशीर्वचन करतां सदा सर्वदा श्री महाराज जी रौ चढ़ तो प्रताप उदै अभ्युदय चाहां छां आप पिण पूर्ण प्रतीति प्रीति रीतिधरौ छै तिण थी विशेष धरणि मोटा धरणिश्वरछइ। दोहाः– चौरी साधित लाईचित, फत्ते करी इरु फम्स। महाराज आये महल, सुनिहम भए खुस्यलिम्स।

बीकानेर नरेश सूरतसिंहजी खरतरगच्छ योगीराज ज्ञानसारजी के परम भक्त थे। उनके स्वयं हाथ के लिखे हुए पच्चीस पत्र हमे प्राप्त हुए हैं। जिनमें से एक दो पत्र की नकल हम अपने ज्ञानसार-ग्रंथावली में दिये जाने वाले ज्ञानसार जीवन-चरित्र में दी है इन पत्रों से महाराजा को श्रीमद् के भक्ति के साथ तत्कालीन राजनैतिक परिस्थिति आदि पर भी सुन्दर प्रकाश मिलता है कोई शोध पत्रिका उन्हें प्रकाशित करना चाहे तो हम उनकी प्रति लिपी करके भेज सकते है।

प्राचीन राजस्थानी

(ले० मनोहर शर्मा एम०ए०, साहित्य रत्न, काव्यतीर्थ)

भाषा सदा मर्यादा बहने वाली देव नदी है। वह कभी बंधकर नहीं रहती। जब कभी उसके प्राकृतिक रूप को सुधारकर संस्कृत के रूप में नियम बद्ध किया जाता है तो वह अपना नया मार्ग पकड़ लेती है। "सस किरत है कूप जल-भाषा बहता नीर।" भारतीय आर्य भाषाओं की परम्परा इस नियम का बड़ा सुन्दर उदाहरण है। सदैव उनके दो रूप रहे हैं। एक साहित्यिक भाषा और दूसरी लोक-भाषा। ये दोनों रूप दो धाराओं के समान साथ साथ चलते हैं। जब लोक भाषा साहित्य के आसन पर पदारूढ़ हो जाती है तो नई लोक भाषा तैयार हो जाती है, वैदिक संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश एवं आधुनिक आर्य भाषाओं का प्रवाह एक सोपान-परम्परा के समान है। इनमें से प्रत्येक भाषा ने लोक भाषा जीवन बिताकर साहित्य के राजसिंहासन पर सम्मान पाया है और वे लोक जीवन से परे होकर व्यवहार के नियमों में जकड़ गईं। लोक भाषा ने अपना दूसरा रास्ता पकड़ा और लोक वन्दनीय हुई।

ऐसी स्थिति में यह बड़ा कठिन है कि इनके समय-विभाग की एक स्पष्ट रेखा खींच दी जाय और इनके बदलते हुए रूप का चित्र के समान अलग अलग चौखटों में जड़ दिया जाय। उदाहरण के लिए यह कैसे कहा जा सकता है कि अपभ्रंश से आधुनिक भाषाएँ अमुक-संवत् में निकलीं और उनका उस समय ऐसा रूप था। अपभ्रंश से ही मराठी, राजस्थानी, पंजाबी, हिन्दी, बंगला आदि भाषाएँ विभिन्न हुईं, परन्तु इस विकास काल ने एक लम्बा समय लिया और इनका आदि रूप प्रायः सब जगह समान सा ही था। अथवा यों कहिए कि भारत में जब अपभ्रंश की साहित्यिक भाषा से जनता। [illegible]

था— जो तत्कालीन लोक-भाषा अपना नया रूप सजा रही थी, और आगे चल कर उसीको मराठी, राजस्थानी, पंजाबी, हिन्दी, बंगला आदि कई नाम मिले। उस जमाने की लोक भाषा को अपभ्रंश भी कहा जा सकता है और स्थान भेद के अनुसार आर्य भाषाओं का आदि रूप भी। यही कारण है कि उत्तर कालीन अपभ्रंश को काफी खैंचतान सहनी पड़ी है। कोई उसे जूनी गुजराती कहता है, कोई उसे पुरानी हिन्दी कहता है और कोई उसको प्राचीन बंगला नाम देता है। इस उत्तर कालीन अपभ्रंश का समय दसवीं शताब्दी के दो सौ वर्ष इधर उधर समझना चाहिए।

इस लोक भाषा की कुछ रचनाएँ प्रकाश मे भी आई हैं। पूर्वी भारतके विश्व विद्यालयो से सम्बन्धित बज्रयानी बौद्धसिद्धों की रचनाएँ एवं पश्चिमी भारत के हेमचन्द्राचार्य आदि जैन विद्वानों द्वारा संकलित सामग्री उस जमाने की लोक भाषा की एक झलकसी दिखाती है। इस सामग्री पर ध्यान देने से तत्कालीन भारतीय लोक भाषा की एक रूपता थोड़े से भेद के साथ स्पष्ट नजर आती है। भाषा की दृष्टि से उस समय पूर्व एवं पश्चिम का ओर छोर मिला हुआ सा था। इतना होने पर भी इस तथ्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता, कि उस समय राजनीति, संस्कृति, साहित्य एवं कला की दृष्टि से भारत का केन्द्र स्थल पश्चिम ही था। पश्चिमी भारत ही समूचे देश की भुजा हृदय या मस्तिष्क के रूप में गौरवान्वित था। कन्नौज, दिल्ली, अजमेर, चितौड़, धार, पाटण आदि नगरों ने विस्तृत राज्यों की राजधानी के रूप में जो यश वैभव प्राप्त किया उसकी उज्ज्वल गाथा से आज भारत का इतिहास महिमामय है।

उस युग में राजस्थान आज कल की तरह इतना सिमित न था। उन दिनों आधुनिक व्रज, राजस्थान मालवा एवं गुजरात मिलकर एक सांस्कृतिक एकाई के समान थे। इस लम्बे चौड़े भू भाग का—कोई एकना मन था। अनेको पृथ्वीनाथों के प्रताप सूर्य से यह प्रदेश प्रभापूर्ण हुआ। उन्होने आपस में मारकाट भी मचाई। बाहरी आक्रांताओं से भी लोहा लिया। कई प्रकार के घटनाचक्र राजनैतिक रंगमन्च पर आए और गए। परन्तु इस प्रदेश की सांस्कृतिक धारा सदैव अपने एक रूप में ही बहती रही। उस जमाने मे यहाँ की राजनीति ही भारत की राजनीति भी यहां की संस्कृति ही भारत की संस्कृति थी, यहां की भाषा ही भारत की लोक भाषा थी।

इस भूमण्डल की तत्कालीन लोक भाषाका यथार्थ नाम प्राचीन राजस्थानी है। प्राचीन राजस्थानी लम्बे समय तक जन-समाज की आदरणीय भाषा रही। इसमे काफी साहित्य रचा गया। इस साहित्य की जो भी कुछ सामग्री प्राप्य है वह अत्यन्त उज्ज्वल है। भाषा तत्व की दृष्टि से उसमें अपभ्रंश का प्राधान्य है।

परन्तु राजस्थानी भाषा में तो सदैव से अपभ्रंश की प्रधानता उसकी एक प्रमुख विशेषता है। डिंगल का आधुनिक कवि भी प्राचीन परिपाटी पर यथा शक्य चलते रहना आवश्यक समझता है। डिंगलमें प्राचीन राजस्थानीकी झलक दिखाई देती है और प्राचीन राजस्थानी में डिंगल की। दोनों का अविच्छेद सम्बन्ध आज तक बना हुआ है। इसी लोक भाषा से लगभग सोलहवीं शताब्दी में ब्रजभाषा एवं गुजराती ने जन्म ग्रहण किया। परन्तु उनमें यह अपभ्रंश की झलक कायम न रही और ये दोनों छोटी लड़कियाँ अपनी माँ से बिछुड़ गई। अपभ्रंश की जेठी बेटी राजस्थानी ने कभी अपनी माँ का एकदम साथ न छोड़ा और अब भी वह आन्तरिक प्रेम को निभाए चलती है।

हिन्दी साहित्य के आदिकाल की भाषा राजस्थानी ही है। उस युग की जो भी कुछ रचनाएँ बतलाई जाती हैं, वे सभी भाषा भाव एवं विचार की दृष्टि से राजस्थानी हैं। मध्यकाल के भक्त कवियों की संस्कृत बहुलता ने राजस्थानी के स्थान पर ब्रजभाषा को प्रधानता दी और अपभ्रंश प्रधान राजस्थानी अपने सिमित क्षेत्र में फलती फूलती रही। उसने प्रमुख पद का त्याग किया परन्तु राजस्थानी पना न छोड़ा यही कारण है कि उसने भारतीय साहित्य को कुछ ऐसी चीजें भेंट की जो विश्व साहित्य में बे जोड़ कही जा सकती है।

प्राचीन राजस्थानी की साहित्यिक सामग्री अधिक नहीं है, परन्तु जो भी कुछ है वह स्वयं प्रकाशमय है। सिद्धराज जयसिंह के आदेश से कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य ने सिद्ध हेमचन्द्र शब्दानुशासन नामक व्याकरण ग्रंथ की रचना की। इस ग्रंथ के अपभ्रंश विभाग में मुनिवर ने तत्कालीन लोक प्रचलित कविता को उदाहरण के रूप में रक्खा। उनकी इस प्रवृत्ति से लोक भाषा का बड़ा उपकार हुआ और वे साहित्य प्रेमियों को सदा के लिए ऋणीबना गए। इसी तरह सोमप्रभाचार्य ने सं० १२४१ में कुमारपालप्रतिबोध की रचना समाप्त की। यह ग्रंथ मुख्यतया प्राकृत में है और इसमें विविध कथाएँ वर्णित हैं। बीच बीच में आचार्य ने लोक प्रचलित कविता भी दी है। जैन आचार्य मेरुतुंग ने सं० १३६१ में संस्कृत ग्रंथ प्रबन्धचिंतामणि की रचना की। इस ग्रंथ की कथाओं में भी प्रसंगानुसार लोक प्रचलित भाषा की कविता रक्खी गई हैं। इस लोक प्रचलित काव्य का बड़ा महत्व है। इससे उस समय की लोक भाषा का तो पता चलता ही है, परन्तु साथ ही साथ विचार धारा का भी अच्छा परिचय मिल जाता है। इन ग्रंथकारों ने असाधारण काव्य सौंदर्य सम्पन्न दोहों की एक अच्छी सी संख्या साहित्य-जगत को भेंट की। कई दोहे ऐसे हैं, जो सभी ग्रंथों में पाये जाते हैं। (इन दोहों की सूची देखिये कि कथाओं की बीच-बीच में सोने हीरों के समान

इनकी जड़ाई हुई। कितने लोकप्रिय रहे होंगे ये दोहे इनका अधिकार भी लोक हृदय पर कितने लम्बे समय तक रहा। आज भी इन दोहों की रमणीयता ने राजस्थान के हृदय पर अधिकार कर रक्खा है। यद्यपि हजारों वर्ष बीत गए परन्तु कुछ अदल बदल कर आज भी राजस्थान का हृदय इन्हें गाता है। कुछ उदाहरण दिये जाते हैं--

वायसु उड्डावन्ति अए पिउ दिट्ठउ सहसत्ति ।
अद्धा वलया महिहिगय, अद्धा फुट्ट तडत्ति ॥
काग उडावण धण खड़ी, आयो पीव भड़क्क ।
आधी चूड़ी कागगल, आधी गई तड़क्क ॥
पुत्ते जाए कवणु गुणु, अवगुणु कवणु मुएन ।
जा बप्पी की भुँहड़ी, चम्पिज्जइ अवरेण ॥
(बेटा जाया कवण गुण, अवगुण कवण मियेण ।
जो ऊभा घर आपणी, गंजीजे अवरेण ॥)
एक्कु जम्मु नग्गुहं गिउ, भडसिरि खग्गु न भग्गु ।
तिक्खा तिरिया न माणिया, गोरी गलि न लग्गु ॥
(तीखा तुरी न माणिया, खड़ फिर खग्गन भग्ग ।
जलम अकारथ ही गयो, गोरी गले न लग्ग ॥)
जइ भग्गा पारक्कड़ा, तो सहि मज्झु पिएण ।
(अह भग्गा अम्हहंतणा तो तें मारि अडेण ॥ ॥
(अह भागा पारक्कड़ा, तो सखि मूझ पियेण ।
अह भग्गा अम्हेतणा, तो तिह जूझ पड़ेण ॥)
राय वह रावणु जाईयउ, दहमुह इक्क सरीरु ।
जणणि वियम्भि चिन्तवइ कवणु पियावइ खीरु ॥
(राजा रावण जलमियो, दसमुख एक सरीर ।
जननी ने सांसो भयो, किण मुख घालूं खीर ॥)

राजस्थान स्वयं दोहों का देश है। दोहा यहाँ के छन्दों का राजा है। दोहानिर्माता कवियों की राजस्थानी साहित्य के इतिहास में बड़ी भारी संख्या है। दोहे लिखे भी गये हैं सभी विषयों पर। बहुत से कवि तो सिर्फ दोहा कहते हैं। इसी तरह ग्रन्थ भी बड़ी भारी संख्या में दोहा ग्रन्थ ही हैं। राजस्थानी काव्य की यह दोहा परम्परा अति प्राचीन है। निश्चय ही ऊपर लिखे ग्रन्थों के संकलित दोहे दसवीं शताब्दी के आसपास के तो जरूर ही हैं। आज भी राजस्थानी कवियों में दोहे लिखने वालों की एक बड़ी संख्या है। प्राचीन राजस्थानी दोहे, की तरह

आधुनिक युग में भी यहाँ लोक प्रचलित दोहे इतने हैं कि उनकी संख्या का अन्दाज लगाना भी कठिन है। ऐसा कोई प्रसग नहींकि जिसको उपयुक्त कोई दोहा कहावत के रूप में तैयार न हो। सदा से यह भूखण्ड लोकप्रचलित दोहों की लीला भूमि रहा है। प्राचीन काल में भी था, और अब भी है।

प्रबन्ध चिन्तामणि एवं कुमारपाल प्रतिबोध की कथाओं में लोक प्रचलित दोहा रखने की परिपाटी भी राजस्थानी है। अब भी जब कोई कथा कहने वाला अपनी कहानी सुनाता है तो बीच बीच में वह लोक प्रचलित दोहों की जड़ाईसी करता जाता है। जैसा प्रसग होगा उसी के अनुसार वह दोहा सुनाता चलेगा। पुरानी बातों एवं ख्यालों में भी यही चीज है। जो बातें लिखी हुई मिलती हैं उनमें भी प्रसगानुसार दोहे अवश्य ही रहते हैं। ख्यालों में भी ऐतिहासिक दोहे मिलेगें। साधारण सी घटनाओं पर भी यहाँ दोहा मिल जाएगा। कहानी कहने की राजस्थान की यह रीति भी अति प्राचीन है, जैसा कि इन लौकिक दोहे के प्रयोग से पता चलता है।

इनके अतिरिक्त इन दोहों में बहुत से ऐसे भी है जिनकी छाया राजस्थान के लोक प्रचलित दोहों में चली आती है। प्रचीन और अर्वाचीन का यह भाव साम्य भी देखने लायक है।

गयउ सु केसरी पिअहुजलु निर्चिंतइ हरिणाई।
जसु केरए हुकारडए मुहहुँ, पडन्ति तृणाइ ॥
(जिण मारग के हरि हुवी रज लागी तिरणाह।
ते रड ऊभा सूखसी नहिं चरसी हरिणांह ॥)
जे महु दिण्णा दिअहडा दइए पवसन्तेण।
ताण गणन्तिए अङ्गुलिउ जज्जरियाउ नहेन ॥
(आऊँ आऊँ कर गया, कर गया कोल अनेक।
गिणता गिणता घस गई, आँगलियारी रेख ॥)
मीरां
महु कन्तहो गुट्ठट्ठिअहो कउ कड झुम्पडा वलन्ति।
अह रिउरूहिरे उल्हवइ अहअप्पणे न भन्ति ॥
(धीरा धीरां ठाकुरा गुमर किया मजाह।
मोहेगा देसी झूपडा, जो घर होसी नाह ॥)
ईसरदास
जइ पुच्छह घर वड्डाइ तो वड्डा घर आई।
विहलिय जण अब्भुद्धरणु कन्तु कुडीरइ जोई ॥

(टोटै सरकां भीतड़ां घातै ऊपर घास ।
वारीजै सड झूंपड़ा, अधपतियां आवास) ॥
सूर्यमल

गुणहि न संपइ कित्ति पर फल लिहिआ मुञ्जन्ति ।
केसरि न लहइ बोड्डिअवि गय लक्खेहि घेप्पन्ति ॥

(एक्कइ वन्न बसंतड़ा एवड़ अन्तर का वई ।
सिहं कवड्डी ना लहर, गयवर लक्ख बिकाई ॥)
शिवदास

धवलु विसूरइ सामिअहो गरू आ भरू पिक्खेवि ।
हउं कि न जुत्तउं दुहु दिसि हिं खण्डइ दोण्णि करेवि ॥
(क्यूं न हुइ धवलो जो तियी ते सागड़ो गिवांर ।
काढ़े जीभ किलोहड़ा खंध न झाले भार ॥)
बांकी दास

इन दोहों में राजस्थानी अनुश्रुतियाँ व्याप्त हैं। इन अनुश्रुतियों की परम्परा ने इनको राजस्थानी धारा प्रवाह के साथ जोड़ रक्खा है। इनको पढ़ते ही पहली धारणा यही होती है कि यह कविता राजस्थानी है। इसके साथ ही इनमें राजस्थान का वातावरण है। राजस्थानी वातावरण की रचना राजस्थान के हृदय पर तत्काल अपना आधिपत्य जमा लेती है। राजस्थान के रीति-रिवाज राजस्थान की प्रकृति, राजस्थान की अनुश्रुतियाँ, सब ने मिल कर इन दोहों को राजस्थानी साहित्य के इतिहास का एक उज्वल अध्याय बना दिया है।

ढोल्ला मइं तुहु वारिया, मा कुरू दीहा माणु ।
निद्दए गमिही रत्तड़ी, दड़वड़ होइ विहाणु ॥

(ढोला ! मैं तुमको मना करती हूँ। दीर्घ मान मत कर। नींद से रात चली जाएगी और झटपट सवेरा हो जाएगा)

इस दोहे का ढोला राजस्थानी काव्य का प्राण है। पूंगलगढ़ की पद्मिनी मरवण और नखलगढ़ का राजकुमार ढोला राजस्थानी साहित्य में अत्यधिक व्याप्त है। राधा-कृष्ण के समान इस जोड़ी ने राजस्थान मे नायक-नायिका का स्थान ले लिया है। यहाँ अब भी ढोले का अर्थ नायक समझा जाता है मरवण का मतलब नायिका है। इसके अतिरिक्त अन्य भी कई प्राचीन दोहों में नायक के रूप में ढोला ही लिया गया है।

ते मुग्गड़ा हराविया जे परिविट्ठा ताँह ।
अवरोप्परू जो अन्ताहं सामिउ गञ्जिउ जाँह ॥

(उन लोगों को परोसे गए मूँग व्यर्थ गए जिनके ऊपर नीचे देखते हुए स्वामी नष्ट हो गया ।)

राजस्थान में मूँग चावल परोसना एक मांगलिक प्रथा है । जब जँवाई आता है या बहू आती है तो मूँग चावल परोसे जाते हैं । मूँग चावल बड़े भारी सम्मान की वस्तु है । यह दोहा इस प्रथा की प्राचीनता का परिचायक है ।

राणा सव्वे वाणिया जेसलु वड्डउ सेठि ।
काहूँ वणिजडु माण्डीयउ अम्मीणागढ हेठि ॥

(अन्य सब राणा तो छोटे बणिए हैं और जयसिंह बड़ा भारी सेठ है । हमारे गढ़ के नीचे कैसा व्यापार फैलाया है ।)

इस दोहे में प्रयुक्त गढ और सेठ शब्दों से राजस्थानी जीवन का एक चित्र सा नजरों के सामने खिंच जाता है । राजस्थान सदा से गढों का देश है । यहाँ सेठों की अपार महिमा है । और वाणिज्य की सर्वत्र माया है ।

कोणु विछिज्जइ पाणिएण अरिखल मेहम गज्जु ।
वालिउ गलइ सु झुम्पड़ा गोरी तिम्मइ अज्जु ॥

(अरे खल मेघ, गरज मत । पानी पड़ने से आरण्य विलीन होता है । झोपड़ा गलता है और नारी भीगती है ।)

इस दोहे का सु झुम्पड़ा राजस्थान का झूपा है । इस शब्द से झोपड़ी या झोपड़ा नहीं समझना चाहिए । राजस्थान के गाँव-गाँव में देखिए घर-घर झूपों की शोभा है । झूपा गोल कुटिया होता है और वर्षा, धूप, आँधी सबमें परम उपयोगी है ।

सामिपसाउ सलज्जु पिउ सीमा सधिहि वासु ।
पेक्खिवि बाहु बलुल्लडा धण मेल्लइ नीसासु ॥

(स्वामी की कृपा,प्रियतम लज्जाशील सीमा सधि में निवास इनके अतिरिक्त प्रियतम बाहुबल से गर्वीला भी इन बातों को देख कर नायिका निश्वास छोड़ती है ।

इस दोहे का "धण" शब्द विचारणीय है । अन्य भी कई स्थानों पर इसका प्रयोग हुआ है इसके पीछे एक चित्र है ।

प्रियतमा नायिका, कुलवधु, सुन्दरी आदि कई शब्दों का भाव इस एक "धण" शब्द में समाया है । यह शब्द राजस्थानी लोक गीतों का केन्द्र-बिन्दु है ।

मुंज भणइ मुणालवइ जुव्वण गयउ न झूरि ।
आसाढि घण गज्जीइ चिक्खिल्लि होसेउ नारी ॥

(हे मुंज, प्रेम की डोरी ढीली पड़ गई है । गँवार, तू नहीं देखता कि आषाढ़ में बादल गर्जने पर अब धरती फिसलनी हो जायगी ।)

नायक अपनी प्रेमिका के पास ऊँट पर सवार होकर जाया करता था। जब उसने किसी कारण वश जाना बन्द कर दिया तो उसने यह दोहा लिखकर भेजा। कथा का ओठी (ऊँट सवार) और रपट ने गली धरती दोनों ही राजस्थानी जीवन के मार्मिक पहलू हैं।

ऊपर एक दोहा ऐसा आया है। जो तत्कालीन समाज का चित्र सा सामने रख देता है। "यह जन्म व्यर्थ ही गया मेरी तलवार वीरों के सिर पर नहीं टूटी मैंने चंचल घोड़ों की सवारी नहीं की, मैंने सुन्दरी को गले नहीं लगाया" उस जमाने मे शौर्य और प्रेम मे ही जीवन की सफलता मानी जाती थी। समस्त संसार के मध्ययुगीन साहित्य मे यही तत्व है। युद्ध और प्रेम के वर्णनों से उस जमाने का साहित्य भरा पड़ा है। सुन्दरी प्रेमिका के लिए भंयकर आपत्ति मोल लेना एक वीर के लिए गौरव की वस्तु है। सुन्दरी के लिए वीर की भार्या होना सम्मान की चीज है। Only the braw deserve the fair की कहावत हर जगह चरितार्थ होती है। कई जगह तो एक के लिए हजारों प्राण होमे जाते हैं। जिस तरह राजस्थानी साहित्य वीरता का साहित्य है, उसी प्रकार प्रेम का साहित्य भी है। राजस्थान की गौरव गाथा में ये दोनों धाराएँ मिश्रित हैं। वात, ख्यात गीत, दोहे आदि शौर्य और श्रृंगार से सम्मानित हुए हैं। जो प्रेम गाथाएँ हैं वे शौर्य कथाएँ भी हैं। इन प्राचीन दोहों में जैसा वीरता का वर्णन है, वैसा ही सुन्दर श्रृंगार रस का भी परिपाक हुआ है। इनमें प्रेम का जो विशद रूप दिखाया गया है। वह राजस्थानी काव्य के लिए गौरव की वस्तु है।

इन दोहों के शब्द भण्डार पर ध्यान देने से इनका राजस्थानी से एकात्म निश्चित होता है। इनका शब्द चयन ध्वनि-विचार एवं व्याकरण सभी चीजें राजस्थानी तत्व की ओर निर्देश करती हैं। बहुत समय तक इनकी विशेताओं को राजस्थानी ने परिलक्षित किया। डिंगल से तो इनकी काफी समरसता है। यहाँ कुछेक मोटी-मोटी बातों पर विचार किया जाता है।

(१) संदेसडओ, दीहडा, देसडा, दोरडी, निद्डी पायक्कडा, बत्तडी, मागडा, रत्तडी, माणुसड़ा, मणिअडा, वभिजडु, हियड़ा, गोरडी, मुंहड़ी आदि शब्दों मे ड का प्रयोग एक दम राजस्थानी है-राजस्थान मे इसका जितना प्रचार है और कही नहीं है-राजस्थानी साहित्य के सभी कालो मे इसके प्रयोग की प्रचुरता रही है।

(२) दोसु, मेहु, सरीऊ, सुहु, खीऊ, जलु सयलु माणु वायसु गुणु अन्तरु भयरहरू कंतु आदि शब्दों का उभी राजस्थानी की अपनी विशेपताओं में से एक है। प्राचीन राजस्थानी की अन्य रचनाओं में भी इसका अत्यधिक प्रयोग है।

(३) मकरि म सोसउ, मरणु क्रुखि मजाउ, म संचि, म रोई म फल दि, म मग्गहु, म मेल्लि, म गज्जु, आदि में म का प्रयोग मना करने के अर्थ में राजस्थानी में अति व्याप्त है।

(४) सय, गय, तुरय, सायर, लोय, तारय, मयण, आदि में त, ज, ग, क, द, के स्थान पर य का परिवर्तन लिए हुए शब्दों का प्रयोग अब भी डिंगल काव्य में होता है।

(५) अहवा, वह, सम्मुह, लंकहले, सिहर, मुह, रेह, सणाह, दुल्लह, मयरहरू, मनोहर, महुँ महण आदि में थ, ख, फ, भ, ध के स्थान पर ह धारण करने वाले शब्दों का प्रयोग राजस्थानी काव्य में लम्बे समय तक चला आया है।

(६) करत बिलत, चिंतति, करति, मुञ्चन्ति भणन्ति, गलन्ति, होन्ति, लेहति, गणन्ति, पडन्ति, भमन्ति, पिअन्ति, आदि प्रयोग डिंगल काव्य में प्रचुर हैं।

(७) रूसेसु, पावीसु, करीसु, परसीसु, ऐसी कुट्टिसु, बुड्डीसु आदि भविष्यत् काल के प्रयोग राजस्थानी हैं। अब भी बोल चाल में इनका स धारा प्रवाह के समान चला आता है।

(८) जुव्वन, गब्बु, भज्जि कज्जु इक्कु, जम्मु, वड्ड, भग्गिमज्ज, मग्गु, पचित्त, अज्जु, भग्गा, अप्पाणु आदि का द्वित राजस्थानी भाषा की एक विशेषता है। वीर काव्य में इससे बड़ा ओज पैदा होता है।

प्रसिद्ध, भमर, पवाह, पहु, पेम्मु, पम्भणु, पयासइ, पयारेहि आदि में जो र का लोप है यः भी राजस्थानी का विशेष लक्षण है।

(१०) छइल्ल, बइल्ल, अक्खइ, निरामइ, भावइ, पच्छइ आदि में अइ का प्रयोग राजस्थानी में मध्यकाल तक चला आया है।

(११) कण्ड्डु लड, चुउड, हत्थड्ड रूअड्ड लेखडड, टुअड्ड का अड भी राजस्थानी में मध्य काल तक चला आया है।

(१२) चिन्तवइ, चीसरइ, आराहइ, वसरइ, गोवइ, पिसूरइ पणट्टइ, पल्लइ आदि का इ राजस्थानी में मध्य काल तक चला आया है।

(१३) हुअउ, जाणउ, जाईयउ, पियावउ, चड्डा वियउ घडिअउ, निक्खिअउ, आदि का अउ राजस्थानी भूतकाल का लक्षण है।

(१४) सिरि, वइसानरि, सग्गि, कमलि, विरहग्गि, घरि, उरि, आदि में जो अधिकरण का इ है वह प्राचीन राजस्थानी का प्रचुर प्रयोग है।

(१५) मुणालवइ, गढ़वइ, चक्कवइ, नरवइ, महासर, सपइ, मालइ आदि में वि के स्थान पर इ का प्रयोग डिंगल में प्रचुर है।

(१६) नारायणाह, वलि बंधणाह, कन्तह, पियह, फुल्लह, जिनवरह, तियह, तथा रामहं, गामंह, सठणाहं, तरु अरहं, पओहरहं, नवन्ताहं, पवासुयहं, आदि का ह प्राचीन राजस्थानी की अपनी विशेषता है।

(१७) वलि (फिर ' इक्कज, (एकहां) करणइन्तु (करणोत) साटो (लिए) रेसि (लिए) विहूणइ (विना) वीजइ (वीजो) आदि राजस्थानी के विशष्ट प्रयोग हैं।

(१८) पसाउ (प्रसाद) विसाउ (विषाद) उज्जोउ (उद्योत) रहिउ (रहित), सुरउ (सुरत), जीविउ जीवित) आदि राजस्थानी प्रयोग हैं।

(१९) झूरि (झूरणो) कम्पिजइ (कांपणो) जोइ (जोणो) हिंडइ (हांडणो) माणियां (माणजो) माण्डीअउ (मांडणो) अत्थमणु (आंथणो) रूसिज्जइ (रूसणो) आवट्टइ (आवटणो) आदि क्रियापद राजस्थानी के जन साधारण मे प्रचलित है।

(२०) कुड्ड (कोड) चूडल्लउ (चुड़लो) तिसहे (तिस) डुंगरहि (डुंगर) पहिउ (पही) गोरी (गोरी) वाडी (वाडी) रुक्ख (रुंख) आण (आण, दुहाई,) आदि संज्ञाएँ राजस्थान में लोक प्रचलित हैं।

(२१) अम्मीणा, मरट्ठ, भडघड़, मज्भी सड़ी, सुहच्छडी, वघोहा, महुमहण आदि शब्द डिंगल को बड़े प्रिय हैं।

इन दोहों में प्रवाहित विचारधारा राजस्थानी काव्य से एकात्म है जो प्राण राजस्थानी काव्य में समाया है; वही इन दोहो को सजीव किये हुए हैं। राजस्थानी साहित्य के प्रकाश का आदि स्रोत इनमें स्पष्ट है। राजस्थानी काव्य का अर्थ है वीर काव्य। उसमे शौर्य, त्याग, ओज, बलिदान, स्वाभिमान, स्वामीभक्ति, दीनोद्धार, आदि आदि गुणों का भण्डार है। पुरुषों के समान ही महिलाओ की वीरता का वर्णन है। वहाँ वीर से वीर पत्नि घट कर नहीं। ईसरदास, बांकीदास, सूरजमल, आदि कवियों ने वीर पत्नि का जो विशद वर्णन किया है, वह राजस्थानी कवि के लिए ही उपयुक्त है। जौहर की सतियो के मरण को महोत्सव के

रूप में चित्रित करके राजस्थानी कवि अमर हो गये हैं। इन्हीं वीर बालाओं का उज्वल रूप इन दोहों में देखिए जो राजस्थानी चित्रों के साथ एक रंग हैं। राजस्थानी काव्य में एक ही धारा ऐसी है जो आदि से अन्त तक एक ही वेग से प्रवाहित है। इसी वेग ने आर्य-जाति, आर्य धर्म एवं आर्य संस्कृति को विलीन होने से बचाया है। इन प्राचीन दोहों में वीर पत्नि का ओज स्थान स्थान पर वर्णित है। राजस्थानी महिलाओं के लिए वीर पत्नि होना सबसे आनन्द की बात है। पति का भयंकर युद्ध में घम पड़ना आनन्द है, लड़ते लड़ते मारा जाना उसके लिए त्यौहार है, वह कायर की पत्नि कहला कर सखियों में हँसी का पात्र बनना नहीं चाहती। यह उसके लिए सबसे बड़ा अपमान है।

भल्ला हुआ जु मारिया बहिणि महारा कन्तु।
लज्जे ज्जुत वयसिअहु जइ भग्गा घर एन्तु॥

(बहिन अच्छा हुआ मेरा पति युद्ध में मारा गया। यदि वह भाग कर घर आ जाता तो मुझे सखियों में लज्जित होना पड़ता) पति का युद्धोत्साह वर्णन करके वीर बाला कैसा गौरव अनुभव करती है।

भग्गउ देक्खिवि निअय बलु बलु पसरि अउ परस्सु
उम्मिल्लइ ससिरेह जिवँ करि करवालु पियस्सु

(अपना बल भागा हुआ देखकर और शत्रु का बल फैला हुआ देखकर मेरे पति के हाथ में तलवार शशि रेखा के समान खिलती है।

जहिं कप्पिज्जइ सरिण सरु छिज्जइ खग्गिण खग्गु।
तहिं तेहइ भडघड निवहि कन्तु पयासइ मग्गु॥

(जहाँ तीर से तीर कटता है, तलवार से तलवार टूटती है, ऐसे वीर-सेना समूह में मेरा पति अपना मार्ग प्रकाशित करता है।) गौरी पूजन के समय कन्या की कामना देखिए—

आयहिं जम्महिं अन्नहिं वि गोरि सु दिज्जहि कन्तु।
गय मत्तहं चत्तङ्कुसहं जो अब्भिडइ हसन्तु॥

(हे गौरी, मुझे इस जन्म में और दूसरे जन्म में भी ऐसा पति दीजिए जो त्यक्तांकुश मतवाले हाथियों से हँसता हुआ जा भिड़े।)

वीरता की पराकाष्ठा देखिए—

पाइ विलग्गी अन्त्रडी सिरु ल्हसिउ खन्धस्सु।
तोवि कटारइ हत्थडउ बलि किज्जउँ कन्तस्सु॥

(आँत पैरों में जा लगी, सिर कन्धे पर झुक गया तो भी कटार हाथ में ही है। मैं अपने कंत की बलिहारी हूँ।)

वीर बालाओं के वचन सुनने के बाद अब वीरोक्तियां सुनिए। वीर वचन से वीर रस का का सुन्दर परिपाक होता है।

अम्हे थोवा रिउ बहुअ कायर एम्व भणन्ति।
मुद्धि निहालहिं गयणयलु कइ जण जोण्ह करन्ति॥

(मुग्धे, हम थोड़े हैं और शत्रु बहुत हैं, ऐसा तो कायर लोग कहते हैं। देख, गगनतल में चाँदनी फैलाने वाले कितने हैं।)

हिअड़ा जइ वेरिअ घणा तो कि अब्भिचड़ाहुं।
अम्हाहिं वे हत्थड़ा जइ पुणु मारि मराहुं॥

(हे हृदय, यदि शत्रु, अधिक है तो क्या आकाश में चढ़ जावें, हमारे भी तो दो हाथ है। मारकर मरेंगे।)

पुते जाए कवणु गुणु अवगुणु कवणु मुएण।
जा बप्पी की भुहंडी चम्पिज्जई अवरेण॥

(पुत्र पैदा हो जाने से क्या गुण और मर जाने से क्या अवगुण। यदि बापोती की धरती दूसरों से छिन जाय।)

अब नरसिंहों की धाक सुनिए—

गयउ सु केसरि पिअहु जलु निश्चितइं हरिणाइं।
जसु के रस हुंकार हुंए मुहहुं पडन्ति तृणाइं॥

(वह सिंह चला गया, जिसकी हुंकार से मुँह के तृण गिर पड़ते थे। अब निश्चिन्त होकर हिरणों जल पीलो)

जामन निवडइ कुंभयडि सीह चवेड चडक्क।
ताम समत्तह मयगलह पइ पइ वज्जइ ढक्क॥

(जब तक सिंह की चपेट-चटाक से कुंभ तट पर नहीं पड़ती, तब तक ही मदकल हाथियों के पद पद पर ढक्का बजता है।)

इन दोहों में प्रेम का जो विशद रूप दिखाया गया है वह राजस्थानी काव्य के लिए गौरव की वस्तु है।

अगलिअ नेह निवट्टाअं जो अण लक्खु विजाउ।
व रिस सएण विजो मिलइ सहि सोक्खएँ सो ठाउ॥

(स्थिर, स्नेह पूर्ण यदि लाख योजन जाकर सौ वर्ष से भी मिलता है तो भी वह आनन्द का स्थान है।)

तिलहं तिलतणु ताउ पर जाउ न नेह गलन्ति।
नेहि पणट्ठइ तेज्जि तिल तिल फिह विखल होन्ति॥

(तिलों का तिलपना उसी समय तक है, जब तक कि उनका नेह (तेल और प्रेम) नहीं निकल जाता। नेह के नष्ट हो जाने पर वे ही तिल फिरकर खल (खली और दुष्ट) हो जाते हैं।)

कहिं ससहरू कहिं मयरहरू कहिं वरिहिणु कहिं मेहु ।
दूर ठिआहंवि सज्जणह होइ असड्ढलु नेहु ॥

(कहाँ चन्द्रमा और कहाँ समुद्र। कहाँ मोर और कहाँ मेघ! सज्जनों के दूर स्थित होने पर भी असाधारण प्रेम होता है।)

देसुच्चाडणु सिहिकढणु घणु कुट्टणु ज लोइ ।
मंजिट्ठए अइरत्तिए सव्व सहेव्वउ होइ ॥

(देश से उखाड़ा जाना, आग पर कढ़ना, घण से कूटा जाना आदि जो लोक में कष्ट हैं वे सभी अतिरिक्त (लाल और प्रेमी) मजीठ को सहने पड़ते हैं।)

इसके बाद नारी-सौन्दर्य का वर्णन किया जाता है। मरवण के रूप वर्णन की मधुरता देखिए—

ओ गोरी मुह निज्जिअउ वद्दलिलुक्कु मियंकु ।
अन्नु विजो परिहविय तणु सो किवं भवंइ निसंकु ॥

(गोरी के मुँह से पराजित होकर चाँद बादल में छिप गया है। अन्य भी हार खाने पर निशंक कैसे घूम सकते हैं।)

जइ सो घडदि प्रयावदी केत्थुवि लेप्पिणु सिक्खु ।
जेत्थुवि तेत्थवि एत्थु जगि भण तो तहि सरिक्खु ॥

(यदि प्रजापति जहाँ कहीं से भी शिक्षा लेकर सौ भी रचदे तो भी संसार में उसके जैसा कौन है ?)

जिणविण तिक्खा लेविकर जइ ससि छोल्लिज्जतु ।
तो जइ गोरि हे मुह कमलि सरिसिम कावि लहन्तु ॥

(यदि जैसे तैसे तीखे शस्त्र लेकर चाँद को छीला जाय, तो गोरी के मुख-कमल की कुछ समता उसे मिल भी जाय।)

राजस्थान के जीवन में वियोग का प्रमुख स्थान है। पुराने जमाने में ही इस प्रदेश की ऐसी हालत है। मध्यकाल में प्रधान पेशा सिपाही का जीवन व्यतीत करना ही था। यहाँ की राजनैतिक परिस्थिति भी ऐसी ही थी। राजाजी की चाकरी में ही मरवणों का यौवन काल समाप्त होता था। इधर-उधर घर की पहार दिवार में उनकी मरवण पोपली गा गाकर अपने दिल के उद्गार निकाला करती थी। सिपाही घर आता पर तो सीख मागकर। अब भी वहीं स्थिति है।

यहाँ के युवक घर से बाहर रहते हैं या तो सेना में या व्यापार में। पर देश की कमाई ही घर पर खर्च के रूप में आकर गृहस्थी की गाड़ी चलाती है। यही कारण है कि राजस्थानी काव्य वियोग वर्णन से भरा पड़ा है। इस वियोग वर्णन में एक विशेषता भी है, और वह यह कि यह दो तरफा है। नायक और नायिका दोनों उसास भरते हैं। दोनों के दिलों में जुदाई का दर्द का भरा है। इन प्राचीन दोहों में भी वियोग का बड़ा मार्मिक वर्णन है। उनमें राजस्थान का हृदय स्पष्ट दिखाई देता है।

अज्जवि नाहु महज्जि घर सिद्धत्था वन्देइ।
ताउजि विरहु गवक्खेहिं मक्कडु धुग्विउ देइ॥

(आज अभी तो स्वामी मेरे घर पर सिद्ध करने के लिए वन्दना ही कर रहे हैं परन्तु फिर भी अभी से विरह झरोखों में से मुझे बन्दर की घुड़की देने लगा है।)

जो महु दिण्णा दिअहडा दइएं पवसन्तेण।
ताण गणन्तिए अङ्गुलिउ जज्जरिआउ नहेण॥

(प्रवास पर जाते हुए प्रियतम ने मुझे जो समय दिया था उसके दिन गिनते गिनते मेरी अंगुलियाँ जर्जरित हो गई)

पइं मेल्लन्तिहे महु मरणु मइं मेल्लन्त हो तुज्झु।
सारस जसु जो वेग्गला सोवि कृदन्त हो सज्झु॥

(सारस, तुम्हें छोड़ती हुई का मेरा मरण है। मुझे छोड़ते हुए का तुम्हारा मरण है, जिससे जो विलग है वही यमराज का साध्य है।)

अम्बनु लाइवि जे गया पहिअ ध पराया केवि।
अवसन सुअहिं सुहच्छिअहिं जिवं अम्हइ तिवँ तेवी॥

(अपनया लगाकर जो पथिक या पराए कोई भी गए हैं, अवश्य ही वे सुख से नहीं सोते। जैसे हम हैं वैसे ही वे हैं।)

हिअइ खुडुक्कइ गोरडी गमणि घुडुक्कइ मेहु।
वासा रत्ति पवासु अहं विसमा संकडु एहु॥

हृदय में खटकती है गोरी गगन में गरजते हैं, बादल। वर्षा ऋतु प्रवासियों के लिए विषम संकट है।)

पहिआ दिट्ठी गोरडी, दिट्ठी मग्गु नि अन्त।
असूं सासेहिं कञ्चुआ तितुव्वाण करन्त॥

(पथिक तूने गौरी को देखा? हां देखा, वह रास्ता देख रही है और अपने आसूँ और उसासों से कंचुकी को गीला सुखा कर रही है।)

वियोगनी की अभिलाषाओं को प्रगट करने वालेकई मार्मिक दोहे हैं जिनका भाव अत्यन्त गहरा है—

ऐसी पिउ रूसेसु हउ रुट्ठी मइँ अनुणेइ।
पागिम्व एइ मनोहरइ दुक्कर दइउ करेइ॥

(प्रिय आवेगा, तो मैं रुठूगी। मुझ रूठी को वह मनावेगा इस प्रकार दयिता प्रायः दुष्कर मनोरथों को धारणा करती है।)

जइ केवँइ पावीसु पिउ अकिय। कुड्ड करीसु।
पाणीउ नवइ सरावि जिवँ सव्वंङ्गे पइसीसु॥

(यदि किसी प्रकार प्रियतम को पाऊँगी तो किसी ने न किया ऐसा कौतुक करुँगी नए सकोरे में पानी की तरह उसके सर्वाङ्ग में प्रविष्ट हो जाऊँगी।)

जा, इज्जइ तहिं देसडइ लब्भइ पियरो पमाणु।
जइ आवइ तो आणिअइ अहवातलि निवाणु॥

(उस देश में जाना चाहिए जहाँ प्रियतम का प्रमाण मिले।)

यदि वह आवे तो लाया जावे नहीं तो वही शान्ति मिले।)विरह के बाद मिलन का भी बड़ा सुन्दर वर्णन मिलता है। इन दोहों में मिलन का स्वरूप भी बड़ा ही सजीव चित्रित किया गया है।

पिउ आइउ सुअ वत्तडी झुणि कन्नडइ पइट्ठ।
त हो विरह हो ना सन्त अहो धूलडि आविन दिट्ठ॥

(प्रिय आया, इस शुभ वार्ता की ध्वनि कानों में प्रविष्ट हुई कि भागते हुए विरह की धूल भी नहीं देखी गई।)

अम्मीए सत्थावथेहि, सुधिं चिंतिज्जइ माणु।
पिए दिट्ठे हल्लोहलेण, को चेयइ अप्पाणु॥

(स्वस्थ अवस्था में मान करने की सूझती है। प्रियतम के देखने ही ऐसी हलचल मचती है कि अपनापन भी ध्यान में नहीं रहता।)

अज्जु विहाणउ अज्जु दिणु अज्जु सुवाउ पवत्तु।
अज्जु गयलिउ सयलु दुहु जतुहु यह घरि पत्तु॥

(आज विहान हुआ, आज दिन निकला आज सुवायु प्रवृत्त हुआ आज सकल दुःख दूर हुआ जो तूँ मेरे घर आ गया)

खज्जइ नउ कसरक्केहि-पिज्जइ नव घुण्टेहि।
एवइ होइ सुहच्छडी, पिए दिट्ठे नयणेहि॥

(यह न तो कसर को से खाया जाता है और न घूँटों से पिया जाता है।

परन्तु उसे आंखों से देखने पर एक अनिर्गचनीय ही आनन्द प्राप्त होता है।)

इन दूहों में महाप्राण व्यक्तित्व का जो चित्र उपस्थित किया गया है वह अद्वितीय है। महासत्त्व नरपुंगवों का ऐसा वर्णन राजस्थानी साहित्य के सर्वथा उपयुक्त है जिन महापुरुषों ने राजस्थान के इतिहास का निर्माण किया है उनका स्पष्ट रूप इन दोहों में अंकित मिलेगा। मनस्वी नर वीरों का चरित्र वर्णन करके सचमुच कविता धन्य हो गई है। राजस्थानी साहित्य ने अपने स्वाभाविक रूप में यह सिद्ध कर दिया है कि कवि ही राष्ट्र निर्माता होते हैं। कवियों की वाणी ही जन साधारण के हृदय में गूंजकर समाज में ऐसे, व्यक्तित्व पैदा करती है जो स्वयं प्रकाश स्वरूप हो कर औरों का भी मार्ग प्रदर्शन करते हैं। ऐसे चरित्रों से राजस्थान का साहित्य महिमा मय है। कुछ उदाहरण देखिये—

एइति घोड़ा एह थलि, एइति निसिआ खग्गा।
एत्थु मुणी सम जाणी अइ; जो न विवालइ वग्ग॥

(ये घोड़े हो, यह रण भूमि हो, और ये पैनी तलवारें हों ऐसी स्थिति में जो लगाम घुमाकर भाग न छूटे तो वहाँ मनुष्यता जानी जाती है।

वच्छहें गृन्हर फलहं जणु; डुपलकलव वज्जेइ।
तोवि महद्दुम सुअणु जिवँ; ते उच्छगि धरेइ॥

(वृक्ष से लोग फलों को तोड़ लेते हैं और कटु पल्लवों को छोड़ देते हैं किन्तु महाद्रुम सज्जन के समान उनको गोद में ही धारण करता है।)

जो गुण गोवइ अप्पणा; पयडा करइ परस्सु।
तसु हउ कलि जुगि दुल्लह हो; बलि किज्जउ सुअणस्सु॥

(जो अपने गुण छिपा कर दूसरों के गुण प्रकट करता है उस कलियुग में दुर्लभ सज्जन की मैं बलिहारी जावूँ।)

जीविउ कासुनवल्लहउ; धणु पुणु का सुन इट्ठु।
दोण्णिवि अवसर निवड़ि आइ; तिण समगणइ विसिट्ठु॥

(जीवन किसे प्यारा नहीं, धन किसे इष्ट नहीं। परन्तु अवसर पड़ने पर विशिष्ट जन दोनों को ही तृण के समान गिनते हैं।)

जइ पुच्छह घर बुड्डाइं तो बड्डा घर ओइ।
विहलिय जन अब्युद्धरणु, कंतु कुड़ी रह जोइ॥

(यदि बड़े घर पूछते हो तो बड़े घर वे हैं- दुःखी लोगों का उद्धार करने वाले मेरे कंत की कुटीर में बैठा देखो।)

एत्तेइ मेह पिअति जलु एतहे वडवानल आवट्टइ ।
पेक्खु महीरिम सायर हो एक्कवि कणिअ नहि ओह ट्टइ ॥

(इधर मेघ जल पीते हैं उधर बड़वानल औटाता है। सागर की गंभीरता देखो वह एक बूँद भी नहीं घटता।)

सत्थावत्थह आलवणु, साहुविलोउ करेइ ।
आदन्नह मब्भी सड़ी, जो सज्जणु सो देइ ॥

(सुखी लोगों से सभी प्रेमालाप करते हैं परन्तु आर्तलोगों को मतडरो ऐसी अभयवाणी जो सज्जन होता है वह देता है।)

राजस्थानी साहित्य में जैन ग्रन्थकारों का विशिष्ट स्थान है, इनमें मुनिवरों का साहित्य अनुपम है। लोक कल्याणकारी सत्य, अहिंसा, त्याग, तप, दया आदि गुणों के प्रचारार्थ यतिवरों ने प्रचुर साहित्य की रचना की है। उनके साहित्य में उनके जीवन की तपस्या का मधुर फल है, उन्होंने ससार से मन हटाकर स्वाध्याय में जीवन लगाया और बड़े २ ग्रंथागार स्थापित किए। उनकी शिष्य परम्परा ने उनके द्वारा बहाई हुई गंगा का मार्ग अवरुद्ध नहीं होने दिया। ऐसे ही लोकोपकारी संतों का शांति पूर्ण उपदेश हमें इन प्राचीन दोहों में भी सुनाई पड़ता है।

वसइ कमलि कल हंसि जिव, जीव दया जसु चित्ति ।
तसु पय पक्खालणा जलिण, होसइ असिव निवित्ति ॥

(कमल में कल हंसी के समान जिसके चित्त में जीव दया रहती है, उसके चरण प्रक्षालन के जल से अशिव की निवृत्ति होगी।)

जे परदार परम्मुहा तो, वुच्चहिं नरसीह ।
जे परिरभहि पररमणि, ताहं फुसिज्जइ लीह ॥

(जो परदारा से पराङ मुख हैं वे नरसिंह कहलाते हैं। जो पर रमणी का आलिंगन करते हैं उनकी रेखा मिट जाती है।)

गिरि हे सिलायलु तरु हे, फल घेप्पइ नीसावंनु ।
घर मेल्लिप्पिणुमाणु, सह तोविन रुच्चइ रन्नु ॥

(पहाड़ों से शिलातल वृक्षों से फल, मनुष्य को बिना भेद भाव के मिल जाता है परन्तु फिर भी लोगों को घर छोड़ कर अरण्य नहीं रुचता।

अग्गिए उण्हउ होइ, जगु वाएँ सीअलु तेव ।
जो पुणु अग्गि सीअला, तसु उण्हत्तणु केव ॥

(आग से संसार गरम होता है वायु से संसार शीतल होता है। परन्तु उससे उष्णता किससे हो जो आग से शीतल होता है।)

आय हो दड्ढ कलेवर हो; जवाहिड़ तं सारु।
जइउट्ठब्भइ तो कुहइ;अह डज्झइ तो छारु॥

(इस दग्ध कलेवर का जो समय बीत गया वह सार है। यदि यह गाड़ा जाता है तो सड़ता है और यदि जलाया जाता है तो राख हो जाता है।

संता भोगजु परिहरइ; तसु कन्त हो बलि कीसु।
तसु दइवेण वि मुण्डियउ, जसु खल्लि हडु सीसु॥

प्राप्त भोगों को जो छोड़ दे, उस कंत की बलिहारी जाऊँ जो खल्वाट है उसका सिर तो विधाता ने ही मूँड दिया।

इन दोहों में असाधारण काव्य सौंदर्य के साथ साथ विषय की विविधता भी है। इनमें प्रायः सभी रस ऊँचे परिपाक के साथ मौजूद हैं। ऐतिहासिक और पौराणिक प्रसंग भी हैं, नीतिपूर्ण सूक्तियाँ भी बड़ी मार्मिक एवं मौलिक हैं। लोक प्रियता की कसौटी पर कसे हुए काव्य की महत्ता सदैव गौरव मय हुआ करती है। यही सौभाग्य इन प्राचीन दोहों को भी मिला। भाषा एवं विचार की दृष्टि से इनमें राजस्थान की आत्मा बोलती है। ये प्राचीन दोहे मध्य कालीन एवं अर्वाचीन राजस्थानी साहित्य के साथ एकात्म हैं। स्वर्गीय गुलेरीजी ने अपने पुरानी हिन्दी नामक लेख में इनकी बड़ी विशद व्याख्या की है। उन्होंने भी इनमे समाए हुए राजस्थानी तत्त्वों का स्थान स्थान पर उल्लेख किया और साथ ही इनकी भाषा की डिंगल से समानता भी मंजूर की है। राजस्थानी साहित्य से प्रेम रखने वाले व्यक्ति को अपने हृदय में इनकी रागिनी गूँजती हुई अनुभव होता है। इसीलिए इनकी भाषा को श्री गुलेरीजी के मतानुसार 'पुरानी हिन्दी' नाम न देकर प्राचीन राजस्थानी नाम देना सर्वथा उचित है।

पूर्वांश.

पृथ्वीराज रासो शंकायें और उनका समाधान

(ले० कविराव मोहनसिंह)

शंका–११–चंद वंशज जदुनाथ ने "व्रत रत्नाकर" ग्रन्थ वि० सं० १८०० के आस पास लिखा। जिसमें रासो की श्लोक संख्या १०५००० लिखी है। इसलिए क्षेपक अंश भी रासो में नहीं माना जा सकता।

उत्तर —ओझाजी रासो के निर्माण काल वाले लेख में 'व्रत रत्नाकर' में जदुनाथ द्वारा पृथ्वीराज रासो के श्लोक परिमाण का उल्लेख करते हुए जिस पद्य में (व्रत रत्नाकर में) परिमाण का उल्लेख हुआ। उसे दबा गए हैं। किंतु उन्हीं ने जिस निबन्ध में व्रत रत्नाकर और उसके रचयिता चन्द वंशज कवि जदुनाथ पर प्रकाश डाला है। वह पद्य उसमें इस प्रकार है–

"एक लक्ष रासो कियो, पंच सहस परिमाण ॥
पृथीराज नृप को सुयश, जाहर सकल जहान ॥"

उपरोक्त पद्य के ऊपर के अर्ध चरण का ओझाजी ने गलत अर्थ लगा कर ही रासो की श्लोक संख्या १०५००० लिख गये हैं, लेकिन बीच में "कियौ" शब्द एक लक्ष और पांच सहस संख्या को भिन्न करता है, उस पर विचार किया जाय तो व्रत रत्नाकर जैसे ग्रन्थ का रचयिता जदुनाथ कवि ने "कियो" शब्द बीच में लाकर परिमाण संख्या में संदिग्धता कैसे आने दी होगी यह चाहता तो इस चरण के स्थान पर "एकलक्ष अरु पंच सहस रासो कियो बखान" या ऐसा ही अन्य शुद्ध भी लिख सकता था जो उसके लिए कोई कठिन बात नहीं थी। अत

लेखक के 'कियो' शब्द को बीच में लाने का कारण विचारने पर उपरोक्त सारे पद्य के सही दो अर्थ हो सकते हैं—

१—जो रासो ग्रन्थ पांच सहस परिमाण का था किंतु उसमें सम्राट पृथ्वीराज चहुआन का संसार प्रसिद्ध यश होने से अन्य कवियों ने उसके (पृथ्वीराज के) पराक्रम से प्रभावित होकर उसी रासो ग्रन्थ को बढ़ा कर एक लक्ष परिमाण का रूप दे दिया।

२—प्राचीन भाषा ग्रन्थों में और बोल चाल में देखा गया है कि "लक्ष्य" के स्थान पर 'लक्ष' लिखते और बोलते हैं। अतः 'लक्ष' को 'लक्ष्य' का अपभ्रंश रूप मान कर अर्थ किया जाय तो अर्थ होता है—

महाकवि चंद बरदाई का एक मात्र ध्येय जगत प्रसिद्ध पृथ्वीराज का यश वर्णन करना ही रहा और उसने पृथ्वीराज के यश वर्णन में पंच सहस परिमाण का रासो ग्रन्थ लिखा (अर्थात् उसने अन्य कोई रचना नहीं की)।

रासो की जितनी प्रतियाँ हमारे पास है, उनमें रासो के परिमाण विषयक पद्य में "सत्त सहस" लिखा है, जिससे सात सहस परिमाण ठहरता है क्योंकि रासो में बहुधा 'सत्त' शब्द सात संख्या के लिए लिखा है जैसे "सत्त सिंधु" "सत्त ऋषि" इत्यादि। किन्तु देवलिया प्रति में सत्त सहस के स्थान पर पंच सहस लिखा हुआ है, और हमारे द्वारा रासो का सम्पादन हो रहा है, जिसमें भी रासो के जो मूल पद्य जांच द्वारा सम्पादन से स्थान पा सकेंगे उनकी भी संख्या लगभग ५ सहस्र ही आती है। इस लिए रासो के मूल पद्यों की संख्या पांच सहस्र होना मानना ही सप्रमाण और युक्ति संगत है।

स्वयं व्रत रत्नाकर वाला पांच सहस परिमाण का रासो मानता है और उस (रासो की परिमाण संख्या) में अन्य कवियो द्वारा वृद्धि होना लिख रहा है एवं इस समय का विद्वत् समाज भी बहुमत से रासो मे क्षेपक अंश मानता है ऐसी दशा में इसमें मूल पद्य ५००० के, अलावा प्रक्षिप्त होना स्वतः सिद्ध है।

शंका १२—पृथ्वीराज के बन्दी राज (कवि) का नाम चन्द न होकर 'पृथ्वीराज विजय' के लेखानुसार 'पृथ्वीभट्ट' था।

उत्तर—इस का समाधान शंका नं० ६ का उत्तर और टिप्पणियों के पढ़ने से हो सकेगा।

———

पृथ्वीराज रासो पर की गई शंकाओं का आवश्यक शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१६५	२०	चहुआन	चाहुआन नृप
१६६	२	वर्जित	वर्णित
१७०	२१	रयणायर	रयणायर
१७४	१६	बाट	बात
२०३	३	विरुद्ध	विरुद
२०६	१६	भृगराज	मृगराज
२११	२३	नख	नर वर
२१३	७	काव्य	सलधार
"	२०	वान	तात
"	२१	भीरा	मीरा
"	"	वघ	वघ
"	"	प्रग है	प्रग ट्टे
"	२३	वलि	वसि
२१४	२४	विनय	विनग
२१५	४	मुल	कुम्फ
२१७	२५	मार	मार
२३१	१६	कमी	कमी
२४१	२०	११८	११८०
२४२	१६-२४	सम्मत	सपच्च
२४६	२	१५	१६
२६०	१४	मिजि	मिलि
२६०	२१	सर्ग	सर्ग
२६१	३	खाठे राय	खाहिराय
२७०	४	निग्रहलव	निग्रहयन
२७०	५	गडव्ल्यो	गहडयै
२२१	५	जियो	जियौ
२७२	३	सुद्द	तुम्म
२७३	२६	अत्र	जत्र
"	७	'ग'	'घ'

२७४	१०	गोसाजिन	गोसाइन
,,	,,	गहिडा	गहिड
२७४	१२	बिवाह	बिवाद
२७६	१	सोहद	सोदह

नोटः—पृष्ठ सं० २१३, २५२ की टिप्पणियों में समय (सर्ग) का संकेत 'स' किया गया है किंतु छपने में 'सं, कर दिया है अत. पाठक इसका ध्यान रक्खें।

———

सामन्तसिंह ही रासो के समरसिंह, और उसके बाद चितौड़ पर कुतुबुद्दीन का अधिकार

[लेखक— श्री कुँवर देवीसिंह, मंडावा]

भारत के अन्तिम हिन्दू-सम्राट् वीरवर पृथ्वीराज चौहान हुए। इन की वीर गाथाओं से भारत का बच्चा बच्चा परिचित है। देश के अनेक राजा इन की सामन्त श्रेणी में रहते थे। मेवाड़ के रावल समरसिंह, जिनका विवाह, इनकी बहिन पृथाबाई से हुआ था। यह भी पृथ्वीराज के पास रहा करते थे। शाहबुद्दीन गौरी से लड़ाई के मैदान में, जब भारत सम्राट का अन्तिम युद्ध हुआ तो रावल समरसिंह भी देश के लिये लड़ते हुए वीर गति को प्राप्त हुए। पृथ्वीराज के समय का विस्तृत विवरण, उनके राज कवि वीर वर चन्द बरदाई ने 'पृथ्वीराज रासो' नामक ग्रन्थ में लिखा है। उसके पश्चात् समय समय पर अन्य कवियों ने अपनी ओर से बहुत सा विवरण रासो में बढ़ा दिया १। 'राजस्थान का इतिहास' के ले० माननीय विद्वान गौरी शंकर हीराचन्द ओझा ने अनेक कारणों से इस ग्रन्थ को ऐतिहासिक खोज के लिये अनुपयुक्त माना है। इन अनेक कारणों में से मेवाड़ के रावल समरसिंह का पृथ्वीराज की मृत्यु से १०९ पश्चात् प्रस्तुत होना भी एक कारण है।

ओझाजी मानते हैं कि मेवाड़ के रावल समरसिंह का पृथ्वीराज के सम कालीन होना, पृथ्वीराज की बहिन पृथाबाई से उनका विवाह होना और पृथ्वी-

---

१ प० रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० ४१ डिंगल में वीर रस श्री मोतीलालजी मेनारिया पृ० ७

२ रा० इ० ओ० भाग १ पृ० ४५८

राज के साथ तराई के द्वितीय युद्ध में विक्रम संवत १२४६ ई० ११६२ में मारा जाना आदि सारी बातें गलत हैं। क्योंकि समरसिंह का अंतिम शिलालेख वि० सं० १३५६ ज्येष्ठ कृष्णा १० का कांकरोली स्टेशन से अनुमानतः ८ मील दूर दरीबा गाँव की खान के पास वाले माता के मन्दिर के एक स्तम्भ पर है। इस प्रकार पृथ्वीराज और समरसिंह, जिस युद्ध में मारे गये, माने जाते हैं उससे १०६ वर्ष पश्चात् समरसिंह का जीवित रहना शिला लेखों से सिद्ध होता है।

ओझा जी यह मानते हैं कि पृथा बाई का विवाह समरसिंह से होना 'पृथ्वीराज रासो' और 'राज प्रशस्ति' महा काव्य में भी मिलता है १। परन्तु उक्त पृथ्वीराज की बहिन का विवाह रावत समरसिंह के साथ होना, किसी प्रकार सम्भव नहीं हो सकता है क्यों कि उपर बताया जा चुका है कि सम्राट पृथ्वीराज की मृत्यु के १०६ वर्ष पश्चात् रावल समरसिंह प्रस्तुत थे। वे मानते हैं कि पृथा-बाई पृथ्वीराज दूसरे की बहिन थी। पृथ्वीराज द्वितीय के तीन शिला लेख प्राप्त हुए हैं। संवत् १२२४-१२२५ और १२२६ तथा मेवाड़ के रावल सामन्तसिंह के समय के अभी तक दो शिला लेख प्राप्त हुए हैं। एक वि० सं० १२२८ फाल्गुन शुक्ला ७ का, जो डूँगरपुर सीमा से मिले हुए मेवाड़ के छप्पन जिले के जगत नामक गाँव में देवी के मन्दिर के स्तम्भ पर खुदा हुआ है। दूसरा वि० सं० १२३६ का डूँगरपुर राज्य में सोलज गाँव से लगभग डेढ़ मील दूर, बोरेश्वर महादेव की दीवार में लगा हुआ है। इस परिस्थिति में यह दोनों कुछ समय के लिये सम कालीन थे। इस प्रकार पृथाबाई का विवाह मेवाड़ के रावल सामन्तसिंह से हुआ। ख्यातो मे सामन्तसिंह के बजाय समन्तसिंह भी नाम मिलता है। २ समन्त-सिंह और समरसिंह नाम परस्पर बहुत कुछ मिलते हैं। इसलिये एक स्थान पर दूसरे का व्यवहार हो जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। डूँगरपुर की ख्यात में भी पृथा बाई का सम्बन्ध समन्तसिंह के साथ लिखा है।३

इस प्रकार ओझाजी ने समरसिंह को पृथ्वीराज के सम कालीन नहीं माना है। वह तो बिलकुल शिला लेखों से साफ है। उन्होने यह माना है कि "रावल सान्मतसिंह का ख्यातों नाम समन्तसिंह मिलता है।" समन्तसिंह और समरसिंह में सिर्फ 'त' और 'र' काही फर्क है। जो किसी समय में एक से दूसरी नकल करते समय 'त' के स्थान पर 'र' मँड कर समरसिंह नाम प्रसिद्धि में आ सकता है। इससे साफ जाहिर होता है कि रावल सामन्तसिंह ही रासो के समरसिंह हैं।

---

१. राजपूताने का इतिहास ओझा भाग १ पृ० ४५८
२. " " " " "
३. राजप्रशस्ति सर्ग ३

ओझाजी राजपूताना के इतिहास में सामन्तसिंह का वर्णन करते हुए लिखते हैं "अजमेर के चौहान राजा पृथ्वीराज द्वितीय (पृथ्वीभट्ट) की बहिन पृथाबाई का विवाह मेवाड के रावल समन्तसिंह (सामन्तसिंह) से हुआ।" "इसके बाद वे लिखते हैं कि सामन्तसिंह से मेवाड़ का राज्य किसी शत्रु के छीन लेने पर उसने वागड़ में जाकर अपना नया राज्य स्थापित किया।"

इसका प्रमाण ओझाजी ने, सामन्तसिंह के डूँगरपुर की सरहद से मिले हुये एक शिला लेख से दिया है उन्होंने ऐसा मान लिया कि सामन्तसिंह से मेवाड़ का राज्य छूट जाने पर, वह डूँगरपुर की तरफ गया, इसी लिये उसका वहाँ शिलालेख मिला। परन्तु वास्तव में मेवाड का राज्य उधरी वागड़ तक फैला हुआ था। इसके कई प्रमाण हैं। इसका सब से ठोस प्रमाण, भर्तृभट्ट दूसरे का वि० स० ६६६ सावण सुदि १ का शिला लेख है। जो प्रतापगढ से मिला है। इस शिला लेख को देख कर ओझाजी ने 'राजपूताने' के इतिहास में यह माना है कि भर्तृभट्ट दूसरे का राज्य प्रतापगढ़ तक फैला हुआ था १।' इससे यह साफ है कि जब भर्तृभट्ट के शिला लेख के प्रतापगढ में मिलने से वहां तक उसका राज्य माना जाता है। दूसरी तरफ सामन्तसिंह का शिला लेख डूँगरपुर में मिलने पर, उसका मेवाड़ छूटने पर उधर जाना मानते हैं। यह बात बैठने वाली नहीं है।

ओझा जी की यह विचार धारा मुहणोत नैणसी की ख्यात से हुई है। नैणसी ने लिखा है "समन्तसिंह (सामन्तसिंह) ने अपने छोटे भाई कुमारसिंह की सेवा से प्रसन्न होकर उसे मेवाड़ का राज्य दे दिया। राणा की उपाधि दी।" आगे वह लिखता है कि "चित्तौड़ छोड़ कर रावल समन्तसिंह ने वागड़ देश पर अपना अधिकार कर लिया।"

सम्वत् १२५७ का कुम्भलगढ़ के लेख में लिखा है कि "कुमारसिंह ने शत्रु को निकाल कर आघारपुर प्राप्त किया और खुद राजा होगया।" इस लेख के अनुसार नैणसी का यह लिखना कि सामन्तसिंह ने अपने छोटे भाई को राज्य दिया, गलत सिद्ध होता है।

ओझाजी ने इस में से रावल सामन्तसिंह का वागड़ में जाना वो ले लिया और उसका जो कारण है कि प्रसन्न होकर चित्तौड़ का राज्य अपने छोटे भाई को

---

१ राजपूताने का इतिहास ओझा भाग १ पृ० ४२५

दे गये" उसके लिये लिखते हैं कि:— "मुहणोंत नैणसी ने इस घटना के ५०० वर्ष बाद पुस्तक लिखी है, जिस कारण यह गलत लिखा गया २" एक पुस्तकके एक प्रसंग के आधे हिस्से को सही तथा आधे को गलत मानना तर्क संगत नहीं है। उसमें जो लिखा है कि उसने अपने छोटे भाई को राणा का खिताब दिया। यह भी गलत है। क्यों कि मेवाड़ के इतिहास जानने वालों के लिये यह बिलकुल सिद्ध है कि मेवाड़ के स्वामी बप्पा से लेकर सामन्तसिंह, उसके छोटे भाई कुमारसिंह और इसके पश्चात् उसकी छटी पुश्त रत्नसिंह तक रावल ही कहलाये। राणा तो सामन्तसिंह के दादा कर्णसिंह के छोटे पुत्र माहप और राहप और उनके वंशज कहलाये। इन्हे सीसोदा की जागीर मिली थी। यह मेवाड़ के सामन्त थे। रावल रत्नसिंह के वि० सं० १३६० में अलाउद्दीन से युद्ध करके निःसन्तान काम आजाने पर राणा शाखा में से हम्मीर ने चित्तौड़ पर फिर से अधिकार किया और तब से ही मेवाड़ के स्वामी राणा कहलाने लगे।

इन दोनों ही कारणों से हम नैणसी के इतिहास के प्राचीन भाग को प्रमाणित नहीं मान सकते। मालूम होता है कि ओझा जी ने सामन्तसिंह के मेवाड़ से बागड़ जाने का खयाल नैणसी की ख्यात से लिया। मेवाड़ के विस्तृत राज्य के कारण सामन्तसिंह का उत्तरी बागड़ की सीमा से जो शिला लेख मिला, उसे, इस विचारधारा की पुष्टि प्रमाण मान लिया।

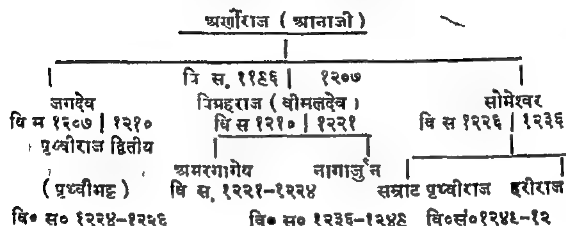
ओझा जी ने पृथा बाई को पृथ्वीभट्ट की बहिन माना है। पृथ्वीभट्ट के तीन शीला लेख प्राप्त हुए हैं। पहला १२२४ का, दूसरा १२२५ का तथा तीसरा १२२६ का। इसके पश्चात् सोमेश्वर १२३६ तक राजा रहे। १२३६ से १२४६ तक सम्राट पृथ्वीराज रहे। पृथ्वीराज द्वितीय के समय के दो वर्ष पश्चात् सामन्तसिंह का प्रथम शिला लेख प्राप्त होता है। सोमेश्वर के यह पूर्ण समकालीन थे। सोमेश्वर महाराज आनाजी के द्वितीय पुत्र थे। इसलिये जब वे गद्दी पर बैठे, उनकी अवस्था भी काफी थी। इससे यही प्रकट होता है कि पृथा बाई सोमेश्वर की पृथ्वीराज से बड़ी लड़की होगी। पुरानी बातों के अनुसार भी यह पृथ्वीराज की बहिन मानी जाती है। ओझा जी ने पृथा बाई को पृथ्वीभट्ट की बहिन माना है। परन्तु उसकी पुष्टि में कोई प्रमाण नहीं दिया है।

---

२. रा० इ० ओ० भाग १ पृ० ४५४

चौहान नरेशों का सम्बन्ध जानने के लिये नीचे आनाजी (अर्णोराज) से उनका वंश वृक्ष दिया जाता है।

अजमेर के चौहानों का वंशवृक्ष



जैसा ओझा जी ने माना है कि 'सामन्तसिंह से मेवाड़ का राज्य किसी शत्रु ने छीन लिया। मेवाड़ छूट जाने के पश्चात् सामन्तसिंह ने बागड़ में जाकर नया राज्य स्थापित किया। इनके छोटेभाई कुमारसिंह ने अपना पैतृक राज्य वापस छीना। ओझा जी ने इसका प्रमाण रावल समरसिंह के वि० स० १३४२ के लेख से दिया है। लेख इस प्रकार है–"उस (क्षेमसिंह) से कामदेव से भी अधिक सुन्दर शरीर वाला राजा सामन्तसिंह उत्पन्न हुआ। जिसने अपने सामन्तों से सर्वस्व छीन लिया। इसके पीछे कुमारसिंह ने इस पृथ्वी को, जिसने पहले कभी गुहिलवंश का वियोग नहीं सहा था यानी शत्रु के हाथ में चली गई थी, फिर छीन कर राजवती बनाया १।" इस लेख से यही विदित होता है कि सामन्तसिंह के पश्चात कुमारसिंह ने मेवाड़ के राज्य को वापस लिया। इस से यह कतई मालूम नहीं होता कि राज्य सामन्तसिंह के समय में गया या उनकी मृत्यु के पश्चात्। सामन्तसिंह का विवाह अजमेर के चौहानों के यहां हुआ था। इसलिये यदि सामन्तसिंह के समय में कोई शत्रु उन से राज्य छीन लेता तो चौहान उनकी सहायता करते। परन्तु चौहान वंश के इतिहास में यह कहीं नहीं मिलता। चौहान उस समय बहुत शक्ति शाली भी थे। इन बातों को देखते हुये यह विचार होता है कि यह सामन्तसिंह सम्राट पृथ्वीराज के पास रहा करते थे। जो पृथ्वीराज तथा

---

१. इण्डियन ऐन्टीक्वेरी जिल्द १६ पृष्ठ ३४६

गौरी के अन्तिम युद्ध में वीर गति को प्राप्त हुये। उनकी मृत्यु के पश्चात् शत्रुओं ने उनके पुत्र से मेवाड़ को छीन लिया। उस समय चौहान भी उनकी सहायता करने योग्य नहीं थे। उनके पुत्र छोटे होने के कारण वहाँ से बाहर चले गये। और उनके भाई ने शक्ति एकत्रित करके मेवाड़ को वापस विजय किया।

ऐसा कोई प्रमाण अभी तक प्राप्त नहीं हुआ जिससे यह कहा जा सके कि सामन्तसिंह ने और उनके पुत्र जैतसिंह ने बागड़ प्रदेश को विजय किया हो। सामन्तसिंह के –वि० सं० १२३६ का डूंगरपुर राज्य मे बोरेश्वर महादेव की दीवार में लगे हुये शिला लेख के कारण ओझाजी ने इनका बागड़ में (डूँगरपुर) जाना मान लिया है। परन्तु इनका वि० सं० १२२८ फाल्गुण सुदि ७ का जगत नामक ग्राम का शिला लेख भी डूँगरपुर राज्य की सीमा से बहुत समीप है। इन दोनों शिला लेखों से तो यही निश्चित होता है कि बागड़ का उत्तरी हिस्सा भी इनके समय में मेवाड़ के आधीन था। उदयपुर राज्य के प्रसिद्ध तालाब जय-समुद्र के बांध के निकटवर्ती वीरपुर (गातोड़ा) ग्राम में वि० सं० १२४२ कार्तिक शुक्ला १५ के दान पत्र और डूँगरपुर राज्य के बड़ा दीवड़ा नाम के शिव मूर्ति के आसन पर वि० सं० १२५३ के लेख से यह साफ विदित होता है कि सं० ४२ से लेकर ५३ तक वहाँ गुजरात के सोलंकियों का अधिकार था। इससे यह साफ हो जाता है कि सामन्तसिंह ने बागड़ में राज्य स्थापित नहीं किया। जगदीशसिंह गहलोत ने अपने राजपूताने के इतिहास में यह माना है कि सं० ३६ से ४२ तक सामन्तसिंह ने बागड़ में राज्य किया हो और ४२ में सोलंकियों के बागड़ छीन लेने पर सम्राट पृथ्वीराज के पास चले गये। वहाँ शाहबुद्दीन गौरी से लड़ते हुए वीर गति को प्राप्त हुये [१]। परन्तु यह नहीं मान सकते कि पृथ्वीराज अपने बहनोई सामन्तसिंह का राज्य दिलवाये बिना रह जाते, क्यों कि उस समय सारा हिन्दुस्तान सम्राट पृथ्वीराज की धाक मानता था इन बातों से यह प्रतीत होता है कि यह पृथ्वीराज के साथ तराई के युद्ध में वीर गति को प्राप्त हुये। उनके पश्चात् इनके पुत्र के हाथ से मेवाड़ का राज्य निकल गया।

ख्यातों में लिखा है सामन्तसिंह के पौत्र भीहडदेव ने बागड़ को विजय किया। उनके शिला लेखों में उनके महारावल और महाराजधिराज की उपाधि मिलती है।

अब यह समस्या आती है कि मेवाड़ का राज्य किस शत्रु ने छीना। इसके विषय में महाराणा कुम्भा का १५१७ का कुँभलगढ़ का लेख कहता है "सामन्त-

---

१. राजपूताने का इतिहास जगदीशसिंह गहलोत भाग १, पृष्ठ ४००

सिंह राजा भूतल पर हुआ, उसका भाई कुमारसिंह था, जिसने अपना राज्य छीनने वाले कीतू नामक शत्रु राजा को देश से निकाला। गुजरात के राजा को प्रसन्न कर आधारपुर प्राप्त किया और स्वयं राजा बन गया।"

कीतू कौन था ? इसके विषय में ओझाजी लिखते हैं—यह नाडौल के चौहान राजा आल्हणदेव का तीसरा पुत्र था। साहसी वीर एवं उच्चाभिलाषी होने के कारण अपने ही बाहुबल से जालौर का राज्य परमारों से छीन कर चौहानों की सोनगरा शाखा का मूल पुरुष और स्वतन्त्र राजा हुआ। सिवाने का क़िला भी उसने परमारों से छीन कर अपने राज्य में मिला लिया था। चौहानों के शिलालेखों और ताम्रपत्रों में कीतू का नाम कीर्तिपाल मिलता है परन्तु राजपूताने में वह कीतू नाम से प्रसिद्ध है। जैसा कि मुहणोत नैणसी की ख्यात तथा राजपूताने की अन्य ख्यातो में लिखा मिलता है। उसका अब तक केवल एक ही लेख मिला है जो वि० सं० १२१८ का दानपत्र है, उससे विदित होता है कि उस समय उसका पिता जीवित था। उसको बारह गाँवों की जागीर मिली थी जिसका मुख्य नाम नडुलाई था। कीर्तिपाल के पुत्र समरसिंह का शिलालेख १२३६ का जालौर में मिला है। इससे स्पष्ट विदित होता है कि कीर्तिपाल इस समय से पहले मर चुका था। अगर कीर्तिपाल मेवाड छीनता तो चौहान उसको उससे वापस दिला देते। इसलिये ये शत्रु १२४६ के बाद का होना चाहिये। जब कि चौहान शक्ति टूट चुकी थी। पृथ्वीराज के पश्चात् दिल्ली पर गौरी का अधिकार हो चुका था। कुतुबुद्दीन ने अजमेर और रणथभोर पर आक्रमण किये थे। मेवाड़ की ख्यातों से यह विदित होता है कि समरसिंह के तराई के युद्ध में मारे जाने के पश्चात् उनके बालक पुत्र के समय में कुतुबुद्दीन ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया। राजमाता ने स्वयं युद्ध किया और अन्त में कुतुबुद्दीन को पीछे हटना पड़ा। सम्भव है कि दूसरी बार कुतुबुद्दीन ने फिर आक्रमण किया हो। पिछले युद्ध के कारण मेवाड़ की शक्ति क्षीण हो चुकी थी। इसलिये इस बार कुतुबुद्दीन का मेवाड़ पर अधिकार हो गया हो। राजस्थानी में कुतुबुद्दीन को कीतू हो सकता है। इसलिये मेवाड़ पर अधिकार करने वाला कीर्तिपाल चौहान नहीं था। वरन् यह कीतू कुतुबुद्दीन ऐबक था। कुमारसिंह ने मेवाड़ इसी से वापस ली।

उस समय के राजस्थान के इतिहास को देखने से नाडौल, जालौर के चौहान वंशों की ताकत का जब मेवाड़ के गुहिल वंश की शक्ति से तुलना करते हैं तो यह प्रश्न और भी साफ होजाता है। इसलिये इस गुत्थी को सुलझाने के लिये इन दोनों ताकतों का अवलोकन करना आवश्यक है।

पहले नाडौल और जालौर के चौहान वंश पर दृष्टि डालते हैं। सांभर के वाक्पति राज (प्रथम) के छोटे पुत्र ने सांभर से जाकर नाडौल में अपना राज्य स्थापित किया। यहां के पांचवे शासक महेन्द्र के समय में गुजरात के सोलंकी दुर्लभराज ने इस पर चढ़ाई की १। इसने अपनी बहिन का उसके साथ विवाह करके आक्रमण को बचाया। सूंधे के शिला लेख में नाडौल के सातवें शासक बालप्रसाद के लिये लिखा है:-कि उसने "भीम के चरणों को पकड़ने के बहाने, दबा कर, कृष्ण को, उस की कैद से छुड़ा दिया।" इस लेख से सिद्ध होता है कि बालप्रसाद गुजरात के सोलंकियों का सामन्त था २। उसका खयाल है कि इसके पिता अणहिल्ल के समय में, सोलंकी भीम के सेनापति विमलशाह ने जो चढ़ाई की। उस समय नाडौल उनके मातहत हो गया। दसवें शासक जोजलदेव के विषय में सूंघा के लेख में लिखा है कि यह अणहिल्लपुर में सुख से रहता था। इससे यह सिद्ध है कि वह गुजरात के सोलंकियों का सामन्त था। उसके पश्चात् बारहवें शासक अश्वराज के वर्णन में मिलता है कि उसने मालवे के युद्ध में जयसिंह की बहुत मदद की। जिससे जयसिंह उस पर बड़ा प्रसन्न हुआ। इसके समय का एक शिला लेख वि० सं० १२०० का वसी से मिला है उससे यह स्पष्ट प्रकट होता है कि इसके समय मे नाडौल के चौहानों ने सोलंकियों की अधीनता पूर्णतया स्वीकार करली थी ३। इसके पहले कई शासकों ने गुजरात की सेना से मुकाबले भी किये। नाडौल के १४ वें शासक आल्हण देव का छोटा पुत्र कीर्तिपाल था। इसने जालौर में जाकर अपना नया राज्य स्थापित किया। यह नाडौल के चौहान राज्य की छोटी शाखा थी। इसके पौत्र उदयसिंह के समय में जालौर और नाडौल के राज्य आपस में मिल गये थे। उदयसिंह उसका शासक था। इस पर मेवाड़ के जैत्रसिंह ने चढ़ाई की और उसे युद्ध में परास्त किया ४।

अब हम पाठकों के सामने उस सदी के मेवाड़ के गोहिल वंश का भी परिचय देते हैं। मेवाड़ के शासक……(द्वितीय) के राज्य की सीमा उत्तरी बागड़ तक फैली हुई थी ५। यह उस समय के मिले हुयेशिला लेखों से ज्ञात होता है।

---

१. हथूड़ी का लेख श्लोक ११ वां। भा० प्रा० रा० भा० १ पृ० २८७)

२. रा० इ० औ० भाग १ पृ० २१६, भा० प्रा० रा० रेउ भाग १ पृ० २८८

३. भारत के प्राचीन राजवंश भाग १ रेउ पृ० २९३

४. रा० इ० औ० भाग १ पृ० ४६१

५. रा० इ० औ० भाग १ पृ० ४२५

उसके पुत्र अल्हट्ट का वर्णन जब देखते हैं तो यह ज्ञात होता है कि उसकी राज्य व्यवस्था बड़े सुन्दर ढग से शास्त्रो में बताये हुये नियमों के अनुसार थी १। उसके पुत्र के लिये शिला लेखों में लिखा है कि वह कलाओं का आधार, धीर, विजय का निवास स्थान, क्षत्रियों का क्षेत्र, शत्रु दल का नष्ट करने वाला, वैभव का भवन एवं विद्या का वेदी था २। उसके पश्चात् शक्तिकुमार और अम्बा-प्रसाद के समय में भारत की दो बढती हुई, शक्तियों के आक्रमण मेवाड़ पर हुये और वे थे मालवा के शासक मुंज। इसने शक्ति कुमार को परास्त किया। उसके पश्चात् अम्बाप्रसाद के समय में सांभर के चौहान राजा वाक्पतिराज (द्वितीय) ने आक्रमण किया। इन दोनों ही युद्धों में मेवाड़ की पराजय हुई। उसके पश्चात् शुचिवर्मा ने शक्ति को सगठित किया। जिसके लिये लेख में समुद्र के समान मर्यादा का पालन करने वाला, कर्ण के सदृश्य दानी तथा शिव के तुल्य शत्रु को नष्ट करने वाला, लिखा है ३। इसके पीछे प्रसिद्ध शासक हंसपाल हुआ। जिस के विषय में चेदी के कलचूरी शिला लेखों में प्रसग वशात् वर्णन मिलता है, जिनमें लिखा है कि गुहिलोत वंश में हंसपाल राजा हुआ, जिसने निज शौर्य से शत्रुओं के समुदाय को अपने आगे झुकाया ४। कलचूरियों के भेरा घाट के शिला लेख में हंसपाल के पुत्र वैरीसिंह के लिये लिखा है कि उसके चरणों में अनेक सामन्त सिर झुकाते थे। उसने अपने शत्रुओं को पहाड़ों की गुफाओं में भगाया और उनके नगर छीन लिये ५। इससे कुछ पुश्तों बाद सामन्तसिंह हुआ। उसके बारे में आबू पर देलवाड़ा गाँव के तेजपाल के बनवाये हुये लूणवा सही नामक नेमि-नाथ के जैन मन्दिर के शिला लेख से यह मिलता है कि सामन्तसिंह ने गुजराज के राजा को परास्त किया ६। इस सामन्तसिंह से तीन पीढ़ी पश्चात् मेवाड़ का शासक जैत्रसिंह हुआ। उसने नाडौल और जालौर के चौहान, मालवे के परमार, गुजरात के राजा त्रिभुवनपाल और दिल्ली के सुल्तान शम्शुद्दीन अल्त मस और नासिरुद्दीन महमूद को युद्धों में परास्त किया ७।

---

१ रा० इ० औ० १ पृ० ४२६
२ ,, ,, ४२८
३ भावनगर प्राचीन शोध सग्रह पृष्ट २२
४ एपीग्राफीका इन्डी का जिल्द २ पृ० ११
५ एपीग्राफिआ इन्डी जि० २ पृ० १२
६ ए० इ० जिल्द ८ पृ २११
७ ए० ई० जिल्द १६ पृ० ३४६

ऊपर नाडौल और जालौर के चौहान वंश का मेवाड़ के गुहिल वंश से संतुलन दिखाया गया है। जिससे यह सिद्ध हो जाता है कि जालौर के चौहानों की ताकत बहुत छोटी थी। वे सदा ही गुजरात के सोलंकियों के समान्तरूप में रहे। दूसरी तरफ मेवाड़ के गुहिलोतो की शक्ति बहुत बढ़ी हुई थी। उन्होंने गुजरात के सोलंकियों तक को परास्त किया है। ऐसी परिस्थिति में यह मानने में नहीं आ सकता कि सामन्तसिंह जैसे शक्तिशाली शासक को कीर्तिपाल जैसा एक छोटा-सा सामन्त परास्त कर सके इसलिये यह साफ है कि महाराणा कुम्भा के शिलालेख का कीतू-कीर्तिपाल चौहान नहीं है।

सूधा पर्वत के चौहान शिलालेख में नाडौल और जालौर के शासकों का पर्याप्त वर्णन है। उसमें इनकी बहादुरी के कार्यों की प्रशंसा की है। परन्तु उसमें कीर्तिपाल के चित्तौड़ पर अधिकार करने का कहीं वर्णन नहीं है। जहाँ कि उसमे छोटी छोटी विजयों की भी प्रशंसा की है तो उसमें चित्तौड़ जैसे प्रसिद्ध राज्य पर कीर्तिपाल क अधिकार होने का हाल नहीं है। यह बात ऐसी है कि जो सिद्ध कर देती है के कीर्तिपाल ने चित्तौड़ पर अधिकार नहीं किया, वर्ना उस लेख मे ऐसी प्रसिद्ध विजय लिखे बिना नहीं रहते।

उपरोक्त समस्त उद्धरणों को देखने के पश्चात् यह निर्विवाद सिद्ध हो जाता है कि सामन्तसिंह के पश्चात् चित्तौड़ पर अधिकार करने वाला व्यक्ति कीतू, कुतुबुद्दीन ऐबक था। रासो में जो हमें समरसिंह का वर्णन मिलता है, वह मेवाड़ के इतिहास का सामन्तसिंह है, न कि समरसिंह। जैसा कि कुछ विद्वानों ने गलत मान लिया था, पृथाबाई का विवाह समन्तसिंह (सामन्तसिंह) के साथ ही हुआ था।

"सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते"

राजस्थान विश्व विद्यापीठ

साहित्य संस्थान उदयपुर (राजस्थान)

परिचय और संक्षिप्त कार्य-विवरण

वि० सं० २००६–२००७–२००८

–: प्रस्तावना :–

राजस्थान १,३५,०५२ वर्ग मील क्षेत्रफल के साथ भारतवर्ष के महत्वपूर्ण भू भाग में फैला हुआ है। समस्त राजस्थान, मालवा और भील प्रदेश में राजस्थानी भाषा का प्रयोग होता है। भारतवर्ष के उत्तर-पश्चिमी सीमान्त प्रदेश तथा काश्मीर के गूजरों, तामील देश के सौराष्ट्रों और समस्त भारतवर्ष में मारवाड़ियों की राजस्थानी मातृभाषा है। इसके बोलने वालों की संख्या लगभग पौने दो करोड़ है। राजस्थानी की मारवाड़ी, मेवाड़ी, वागड़ी, हाड़ोती, मालवी, ढूँढाड़ी आदि बोलियोंमें बड़ा शक्तिशाली एवं सरस साहित्य वर्तमान है। राजस्थान आज कम से कम डेढ करोड़ मानव-पुत्रों के साथ महान् भारत देश के भविष्य को उज्ज्वल बनाने में संलग्न है, इस राजस्थान के महत्व को भुलाया नहीं जा सकता।

जिस राजस्थान ने मध्यकाल में अपनी वीरता, त्याग और बलिदान के कारण इतिहास में अपना महत्वपूर्ण एवं गौरवशाली स्थान बना लिया है, जिसकी कहानियाँ आज न केवल भारतवर्ष में वरन समस्त संसार में जहाँ तक विद्या का प्रवेश है प्रचलित हैं, जिस राजस्थान के खेत मोती उगलते हैं, जिसकी धरती अटूट रत्नों और खनिज पदार्थों की खान है, जहाँ निरन्तर बहने वाली नदियाँ और ऊँचाई से निरन्तर गिरने वाले झरने अपनी शक्ति का परिचय दे रहे हैं, जिस धरती माता के पुत्र सुदूर स्थानों में जा-जा कर कुबेर-कोष एकत्रित करते हैं और 'जहाज कमाने की' पुरानी कहानियों को चरितार्थ करते हैं-उसी महान् राजस्थान की जनता आज अशिक्षित, नंगी, भूखी और पिछड़ी मनोवृत्ति की बनी हुई है यह अत्यन्त दुःख की बात है। आज जब भारतीय स्वाधीनताके साथराजस्थानी जनता ने भी स्वतन्त्रता प्राप्त कर सुशासन की स्थापना प्रारम्भ करदी तो किस प्रकार हम सशक्त होकर भारतीय उन्नति और उत्कर्ष में अपना गौरवपूर्ण योग दें, यह विचारणीय विषय है।

समाज की शक्ति का मूल स्रोत साहित्य और संस्कृति में निहित है। युग-युग से साहित्य और संस्कृति में जो जीवन दायिनी अमृत धारा प्रवाहित हो रही है, उसे परखे और उसके उपयोग किये बिना हम कदापि उन्नति नहीं कर सकते।

विश्व वंद्य महात्मा गाँधी के शब्दों में "हमारा भारतवर्ष गाँवों में बसा हुआ है।" गाँवों को छोड़ कर शहरों में रहने वाले कुछ लोग देश की उन्नति नहीं कर सकते। आज ग्रामीण साहित्य, कला, लोक व्यवहार आदि की पूरी छान-बीन करने की आवश्यकता है, जिससे भारतवर्ष के नव निर्माण मे हम सब सशक्त हो सकें।

अब हमें अपने प्राचीन उत्कृष्ट साहित्य, लोक साहित्य, इतिहास, कला आदि की विधिवत् खोज करनी है। अपने आसपास की वनस्पति, पशु पक्षियों और हमारे साथी वन-वासियों एवं पिछड़ी जाति के लोगों से सम्पर्क साध कर पूरी-पूरी जानकारी प्राप्त करनी है और संसार के अन्य लोग जो इसे जानने के लिये उत्सुक हैं, उन्हें देनी है।

संसार के उन्नत कहे जाने वाले राष्ट्रों ने उन्नति के इस नींव के महान् कार्य को बड़े अंश में पूर्ण कर लिया है। हमारे देश में भी कई अन्य प्रान्त आज इस विषय मे अग्रसर हो गये हैं। किन्तु राजस्थान अभी इन कार्यों मे बहुत पीछे है। आज के इस महत्वपूर्ण कार्य मे संगठित प्रयत्न के साथ कई कार्यकर्त्ताओं और विद्वानों के संलग्न होने की आवश्यकता है।

इसी मंगलमय विचारधारा के साथ राजस्थान विश्व-विद्यापीठ साहित्य संस्थान निरन्तर अग्रसर हो रहा है।

स्थापनाः—

राजस्थान हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रथमाधिवेशन उदयपुर में स्वीकृत एक प्रस्ताव के अनुसार विद्यापीठ ने शोध कार्य के महत्व को स्वीकार कर विक्रम सम्वत् १९९८ में साहित्य संस्थान की स्थापना की।

रूप–रेखाः—

राजस्थान विश्व विद्यापीठ की सर्वोच्च नियमिका महासमिति ने अगस्त सन् १९४८ में साहित्य संस्थान की यह रूप रेखा स्वीकृत की—

उद्देश्यः—

राजस्थान विश्व विद्यापीठ के उद्देश्यों के अनुरूप साहित्य संस्थान के निम्नलिखित उद्देश्य होंगे—

(क) प्राचीन साहित्य की खोज, संग्रह, सम्पादन और प्रकाशन।
(ख) लोक-साहित्य का संग्रह, सम्पादन और प्रकाशन।
(ग) इतिहास, संस्कृति और ललित कलाओं के अनुसन्धान का कार्य करना।
(घ) शोध-कार्य के लिए विद्वानों को पुस्तकालय, संग्रहालय, छात्र वृत्ति आदि द्वारा सुविधा देना।
(ङ) साहित्यिक, ऐतिहासिक और कलापूर्ण सामग्री के रक्षण प्रदर्शन और अध्ययन आदि के लिए एक संग्रहालय का आयोजन करना।
(च) निबन्ध पाठ, भाषण, प्रकाशन, यात्रा पुरस्कार आदि के द्वारा शोध-कार्य में गति उत्पन्न करना तथा इस कार्य के लिए वातावरण उत्पन्न करना।
(छ) साहित्य–सृजन एवं साहित्यकारों का संगठन करना

(२) विभाग और उनके कार्यः—

(क) प्राचीन साहित्य विभाग

(अ) राजस्थान में प्राचीन साहित्य और उससे सम्बन्धित सामग्री का संग्रह कर संग्रहालय के लिये प्रस्तुत करना।

(आ) महत्वपूर्ण हस्तलिखित ग्रन्थों की विवरिणियाँ तैयार करना।

(इ) भिन्न-भिन्न ग्रन्थ-मालाओं का आयोजन कर प्राचीन उत्कृष्ट साहित्य के सम्पादन-प्रकाशन की व्यवस्था करना।

(ख) लोक साहित्य विभागः—

(अ) राजस्थान से लोक गीत, कहावतें, मुहावरे, लोक-कहानियाँ, वात-ख्यात, ख्याल, पहेलियाँ, बैठकों के गीत, आदि का वैज्ञानिक रीति से संग्रह करना।

(आ) लोक साहित्य के सम्पादन, प्रकाशन एवं अध्ययन के लिए भिन्न भिन्न ग्रन्थमालाओं का आयोजन करना।

(इ) लोक साहित्य के प्रति जनता की रुचि बढ़ाने के लिये आवश्यक प्रयत्न करना।

(ग) पुरातत्व विभागः—

(अ) राजस्थान से ताम्र-पत्र, पट्टे, परवाने तथा अन्य ऐतिहासिक महत्व के पत्रों का संग्रह करना, तथा उनके अध्ययन का प्रबन्ध करना।

(आ) राजस्थान में यत्र-तत्र बिखरी हुई, मूर्तियों, सिक्कों, शिलादि लेखों चित्रों तथा अन्य कलाकृतियों का संग्रह करना, उनके विवरण तैयार करना, उनकी रक्षा, प्रदर्शन और अध्ययन का प्रबन्ध करना।

(इ) पुरातत्व, इतिहास औ कला सम्बन्धी प्रकाशन के लिये विभिन्न ग्रन्थमालाओं का आयोजन करना।

(घ) अध्ययन ग्रह और संग्रहालयः—

(अ) शोध कार्य के लिए एक विशाल ग्रन्थ भण्डार का आयोजन कर आवश्यक मुद्रित और हस्तलिखित ग्रन्थों का संग्रह करना।

(आ) साहित्यिक, सांस्कृतिक और कला पूर्ण तथा अन्य महत्वपूर्ण कृतियों का संग्रह करना, उनकी रक्षा, प्रदर्शन और अध्ययन का प्रबन्ध करना।

(इ) अध्ययन और अनुसंधान के लिये अध्ययन गृह, प्रयोगशाला आदि की व्यवस्था करना।

(ङ) सामान्य विभाग

(अ) विशेष आसन स्थापित कर उनके तत्वाधान में शोधपूर्ण भाषण करवाना तथा उन्हें प्रकाशित करना।
(आ) गवेषणात्मक पत्रिका का प्रकाशित करना।
(इ) निबन्ध-पाठ, व्याख्यानमाला, पुरस्कार, शोध कार्य के लिए दल-यात्रा, शोध-कार्य में सहायक सम्मेलन और प्रदर्शन आदि का आयोजन करना।
(ई) राजस्थानी जन, पशु, पक्षी और वनस्पति आदि का अध्ययन प्रस्तुत करना।
(उ) साहित्य परिषद् का संगठन करना।
(ऊ) अन्य प्रवृत्तियों और कार्यों का प्रारम्भ और सचालन करना जो शोध सस्थान के उद्देश्य की पूर्ति में साधक बने।

३ प्रबंध और संचालन—

साहित्य-सस्थान की सम्पूर्ण व्यवस्था तथा सचालन राजस्थान विश्व विद्यापीठ प्रबन्ध कारिणी तथा विधान सभा अपने क्षेत्र के अनुकूल करेगी।

साहित्य सस्थान का अन्तरग उत्तरदायित्व मन्त्री साहित्य सस्थान का होगा।

साहित्य सस्थान द्वारा सर्व प्रथम राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज महत्वपूर्ण हस्तलिखित ग्रन्थों की विवरणियाँ तैयार करने का कार्य हाथ में लिया गया। इसके उपरान्त चारण गीत, लोक गीत, कहावतें, लोक-वार्ताएं, पहेलियाँ, हस्तलिखित ग्रन्थ, प्राचीन चित्र, सिक्के, ऐतिहासिक पत्र और शिला लेख आदि का सग्रह तथा सम्पादन, प्रकाशन, ओझा निबन्ध सग्रह, महाकवि सूर्यमल आसन, ओझा आसन, श्री भूपाल प्राचीन साहित्य ग्रन्थमाला, त्रैमासिक "शोध पत्रिका", साहित्य परिषद्, राजस्थान समिति आदि का कार्य प्रारम्भ किया गया। धन और अन्य साधन सुविधाओं की कमी के कारण स्वीकृत रूप रेखा एवं अर्थ योजना के अनुसार कई महत्वपूर्ण कार्य अब तक नहीं प्रारम्भ किये जा सके हैं। विभागीय मुख्य प्रवृत्तियों का सक्षिप्त कार्य विवरण नीचे दिया जा रहा है।

प्राचीन साहित्य विभाग

(१) राजस्थान में हिंदी के हस्तलिखित ग्रथों की खोज—

राजस्थान में प्राचीन और महत्वपूर्ण ग्रन्थ बहुत अधिक सख्या में वर्तमान हैं। इनके प्रकाश में आये बिना भारतीय साहित्य का इतिहास पूरा नहीं किया

जा सकता। आज हमारे देश की यह साहित्य निधि दिनों दिन नष्ट होती जा रही है एवं तत्काल इस ओर ध्यान देने की आवश्यकता है। शोध संस्थान ने प्रारम्भ से ही इस प्रवृत्ति की ओर ध्यान दिया, तथा इस कार्य का सभी ओर से पर्याप्त स्वागत समर्थन किया गया। अब तक इसके छः विवरण ग्रन्थ तैयार हो चुके हैं। इनसे कई नवीन और महत्वपूर्ण ग्रन्थों तथा साहित्यकारों के विषय में जानकारी मिली है।

भाग १—लेखकः— श्रीयुत पं० मोतीलाल मेनारिया एम० ए० इसमें १७५ ग्रन्थों के १७५ विवरण हैं, जिनसे ४१ नवीन ग्रन्थकारों और उनकी रचनाओं तथा अज्ञात ग्रन्थकारों के २८ नये नये ग्रन्थों के विषय में जानकारी प्राप्त हुई है। इसमें कुछ को छोड़कर सभी ग्रन्थों के विवरण उदयपुर के राजकीय सरस्वती भंडार, उदयपुर के महत्वपूर्ण हस्तलिखित ग्रन्थों के हैं। कर्नल टॉड तथा एक दो अन्य विद्वानों के अतिरिक्त अन्य किसी विद्वान को भली प्रकार से इस पुस्तकालय को देखने और लाभ उठाने का अवसर नहीं प्राप्त हुआ था और सरकार की विशेष स्वीकृति के उपरान्त ही साहित्य संस्थान इस कार्य को करवा सका था। (प्रकाशित)

भाग-२ लेखक—श्रीयुत अगरचन्द नाहटा—इसमें १—लेखक के निजी संग्रह अभय जैन ग्रन्थालय, २—बीकानेर राज्य के अनूप संस्कृत पुस्तकालय, ३—बृहद् ज्ञान भंडार, ४—जिन चरित्र सूरि संग्रह, ५—जयचन्द्रजी ज्ञान भंडार ६—आश्चर्य शाखा भण्डार, ७—पन्नीबाई उपाश्रय संग्रह, ८—गोविन्द पुस्तकालय, ९—लछीराम जाति संग्रह, १०—राव गोपालसिंह वेद का संग्रह ११—कविराज सुखदानजी का संग्रह १२—विनयसागरजी का संग्रह १३—नवलनाथजी की बागीची जो अब बीकानेर नगर में ही है तथा बाहिर के संग्रहालयों में १४—श्री चन्द्रजी गधैया संग्रह, सरदार शहर, १५—श्री सीताराम शर्मा, राजगढ़ १६—यतिवर्य ऋद्धिकरणजी का संग्रह, चुरू १७—यति विष्णुदयालजी का संग्रह फतेपुर (जयपुर) १८—जिनभद्रसूरि भण्डार, १९—वृद्धिचन्द्रजी यति संग्रह, २०—चुन्नी संग्रह जैसलमेर और २१—हरिसागर सूरिभण्डार, लोहावट (जोधपुर) इन संग्रहालयों की. अज्ञात पुस्तकों की प्रतियों के विवरण हैं। यह ग्रन्थ बारह विभागों में विभक्त हैं—जिनके नाम और विवरण लिये ग्रन्थों की संख्या इस प्रकार है—

(१) नाममाला (कोष) ग्रन्थ—१०, (२) छन्द ग्रन्थ—८, (३) अलङ्कार ग्रन्थ—३१, (४) वैद्यक, ग्रन्थ—२१, (५) रत्न परीक्षा ग्रन्थ—१६, (६)

संगीत ग्रन्थ—१२, (७) नाट्य ग्रन्थ—३, (८) कथा ग्रन्थ—२३, (९) ऐतिहासिक काव्य ग्रन्थ—८, (१०) नगर वर्णन ग्रन्थ—२०, (११) शकुन, सामुद्रिक ज्योतिष, स्वरोदय, रमल, इन्द्रजाल, ग्रन्थ—२८ और हिन्दी ग्रन्थों की टीकाएं, ग्रन्थ—४।

इसमे १०२ साहित्यकारों के १३८ अज्ञात ग्रन्थों के विवरण हैं। ८० कवि भी सर्व प्रथम ग्रन्थ द्वारा प्रकाश में आये हैं। इस पुस्तक के प्रकाशन के लिए भूतपूर्व मेवाड़ सरकार ने एक हजार रुपया और श्रीयुत सेठ रोशनलालजी चतुर, उदयपुर ने एक हजार रुपये, सहायता प्रदान की है। (प्रकाशित)

भाग ३—लेखक श्रीयुत उदयसिंह भटनागर एम० ए० इसमें—लगभग २१७ उदयपुर के तथा मेवाड़ के एक दो अन्य स्थानों के हस्तलिखित ग्रन्थों के विवरण हैं। शोध संस्थान के संग्रहालय में सुरक्षित 'अन्वाणी संग्रह' के कई महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों के विवरण भी इस भाग में लिये गये हैं।

भाग ४—लेखक श्रीयुत् अगरचन्द नाहटा। इसमें भाग दो के साथ उल्लिखित बीकानेर के तथा अन्य संग्रहालयों के निम्न विषयक अज्ञात हस्तलिखित ग्रन्थों के विवरण संगृहीत हैं—

१ पुराण उपनिषद, २ संत साहित्य, ३ कृष्ण काव्य, ५ वेदान्त, ६ नीति, ७ जैन साहित्य, ८ शतक साहित्य ९ बावनी साहित्य, १० फुटकर।

भाग ५—लेखक श्रीयुत् अगरचन्द नाहटा। इसमें भी भाग दो में उल्लिखित बीकानेर के तथा बाहर के संग्रहालयों के विभिन्न विषयक राजस्थानी भाषा के महत्वपूर्ण हस्तलिखित ग्रन्थों के विवरण हैं। इसके प्रकाशित होने पर यह स्पष्ट हो जायगा कि राजस्थानी भाषा के कौन कौन से महत्वपूर्ण ग्रन्थ कहां कहां सुरक्षित हैं।

भाग ६—इसके अन्तर्गत सुप्रसिद्ध वैष्णव तीर्थ-स्थान नाथद्वारा के ये हस्तलिखित ग्रन्थों के विवरण प्रकाशित किये जायेंगे। प्रसन्नता की बात है कि नाथद्वारा के श्रीमान तिलकायत गोस्वामी महाराज ने ठिकाने के निजी पुस्तकालय की महत्वपूर्ण ग्रन्थों के विवरण तैयार करने की स्वीकृति कृपा कर प्रदान कर दी है। कुछ समय पूर्व संस्थान के भू० पू० कार्यकर्त्ता श्रीयुत् पं० नाथुलाल व्यास ने नाथद्वारा में अन्वेषण का कार्य आरम्भ कर पाये, उन्होंने ५१ ग्रन्थों के

विवरण प्रस्तुत भी कर दिये हैं। इनकी विषय और ग्रन्थ संख्या इस प्रकार है—

पौराणिक और भक्ति विषयक कथाएँ ३३, काव्य १८, अलंकार १२, कामशास्त्र ३, कोष १, छन्द २, वैद्यक ६, संगीत ३, सामुद्रिक १, विज्ञान १, वेदांत २, वार्ताएँ ३, वचनिका १, वंशावली ३।

आशा है श्रीमान् गोस्वामीजी महाराज की पुस्तकों के विवरण तैयार करने का शेष कार्य भी वहाँ सुविधा प्राप्त होते ही शीघ्र ही प्रारम्भ किया जायेगा।

(२) राजस्थान में संस्कृत के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज—

राजस्थानी हिन्दी ग्रन्थों की तरह राजस्थान में संस्कृत ग्रन्थों की भी अधिकता है इनमें से कई प्राचीन शास्त्रों की प्रतिलिपियों के रूप में तथा कई राजस्थान के ही साहित्यकारों और पण्डितों की सुन्दर रचनाओं के रूप में सुरक्षित हैं। संस्थान के भू० पू० विद्वान कार्यकर्त्ता श्रीयुत् पं. भोलाशंकर व्यास एम. ए. शास्त्री ने साहित्य संस्थान के संग्रहालय में सुरक्षित ग्रन्थों के विवरण तैयार करने का कार्य प्रारम्भ कर दिया है। अब तक १०४ ग्रन्थों का विवरण लिया गया जिसमें विषयानुसार उपनिषद् ब्राह्मण १, पुराण १, काव्य १७, धर्मशास्त्र २, ज्योतिष शास्त्र ५, वैद्यक (नर, अश्व और गज) २८, अलंकार ३, अश्वविद्या १, वस्तु शास्त्र २, भक्ति २, तन्त्र १७,राजनीति १, वेदांत ४,व्याकरण६, जैन दर्शन ७, रत्न परीक्षा १, कथादि महात्मा ३, पिंगल १४, ग्रन्थ पन्द्रहवीं शती तक के हैं।

(३) राजस्थानी साहित्य (चारण एवं राव गीतमाला–)

प्राचीनकाल में चारण राव आदि कवियों द्वारा गीत कवित्त,दोहा आदि प्रचुर मात्रा मे लिखे गये। चारणों और राव जाति के कई घरानों में ऐसे गीतों के संग्रह पाए जाते हैं। साहित्यिक और ऐतिहासिक दृष्टि से इनका बड़ा महत्त्व है। विश्व विद्यापीठ का साहित्य-सस्थान श्रीयुत सांवलदान आशिया एवं श्रीयुत् जसवन्तसिंह दसोन्दी द्वारा इनका संग्रह करवा रहा है। अब तक सम्पादनार्थ ६६८२ गीत इकट्ठे हो चुके हैं। मेवाड़ के कई गाँवों में इनकी खोज का कार्य पूरा कर दिया गया है। जोधपुर से श्रीयुत् पं० विश्वेश्वरनाथ रेउ साहित्याचार्य की कृपा से और अजमेर से श्रीयुत् पं० रामेश्वर गौरीशंकर ओझा की कृपा से कई चारण गीत प्राप्त हुए हैं। अन्य स्थानों से भी चारण गीत प्राप्त करने का प्रयत्न किया जा रहा है। आशा है सम्बन्धित महानुभाव इस विषय में पूरा-पूरा सहयोग देंगे।

भाग १—सम्पादक श्रीयुत् पुरुषोत्तम मेनारिया 'साहित्यरत्न';

सहायक सम्पादक-श्रीयुत् सांवलदान आशिया। इस भाग में मेवाड़ के प्रमुख एवं जनता द्वारा सम्मानित इतिहास प्रसिद्ध महाराणों के अप्रकाशित गीत सम्पादित किए गए हैं। गीतों के साथ विस्तार से शब्दार्थ तथा भूमिका एवं परिशिष्ट में कई आवश्यक ज्ञातव्य भी दिए गये हैं।

भाग २—सम्पादक श्रीयुत् भोलाशंकर व्यास एम. ए. एल. एल. बी.

सहायक सम्पादक-श्रीयुत् सांवलदान आशिया। इस भाग में क्षत्रिय जाति के राठोड़ों से सम्बन्ध रखने वाले गीत सम्पादित किये गये हैं।

भाग ३—सम्पादक श्रीयुत् भगवतीलाल भट्ट सा. रत्न.

सहायक सम्पादक -श्रीयुत् सांवलदान आशिया। इस भाग में भगवद्भक्ति और आध्यात्मिक विषयक-गीतों का सम्पादन किया गया है।

पृथ्वीराज रासो सम्पादन

रासो के सम्पादन का कार्य श्रीयुत् कविराज मोहनसिंह के सम्पाकत्व में नियमित रूप से चालू है। रासो के ऊपर भारतवर्ष के भिन्न २ विद्वानों के द्वारा उठाई गई शकाओं का लगभग १५० पृष्ठों में समाधान किया गया। जो शोध पत्रिका के भाग २ के अंक ३ और ४ में प्रकाशित हुआ है। यों कुल मिला कर रासो का पूरा अर्थ हो चुका है। तथा ४६ समय (अध्याय) का सम्पादन कार्य पूर्णत है।

लोक साहित्य विभाग

१. राजस्थानी कहावतमाला —

कहावतें देश, काल और समाज की वास्तविक स्थिति की परिचायक होती हैं। लोक साहित्य में इसका प्रमुख स्थान है। इस ग्रन्थमाला के अन्तर्गत शब्दार्थ, भावार्थ और आवश्यक टिप्पणियों के साथ कहावतें प्रकाशित करने की योजना है। कहावतें राजस्थान के विभिन्न भागों की और विभिन्न बोलियों की होगी किन्तु किसी कहावत का पुनर्वार प्रकाशन नहीं होगा। इस प्रकार इस ग्रन्थमाला द्वारा राजस्थानी बोलियों की समस्त कहावतें संग्रहित एवं प्रकाशित कर दी जायगी।

भाग १, मेवाड़ की कहावतें (प्रथम पुस्तक) सम्पादक श्रीयुत् प० लक्ष्मीलाल जोशी एम ए, एल-एल बी। इसमें मेवाड़ी बोली की चुनी हुई १०३६

कहावतें, हिन्दी अर्थ सहित संग्रहित एवं सम्पादित की गई हैं। पुस्तक की भूमिका श्रीयुत् डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल, नई दिल्ली ने लिखी है। देश के कई विद्वानों, नेताओं और पत्रकारों आदि ने इस पुस्तक की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है (प्रकाशित)।

भाग २, मालवी कहावतें। सम्पादकः-श्रीयुत रतनलाल मेहता बी. ए., एल-एल. बी.। इसमें राजस्थान के प्रतापगढ़ क्षेत्र से राजस्थानी भाषा की मालवी बोली की ६३३ कहावतें शब्दार्थ सहित सम्पादित की गईं तथा ६०० के लगभग नवीन अर्थों का शब्द कोष भी तय्यार किया जा चुका है। (प्रकाशित)

भाग ३, राजस्थानी भीलों की कहावतें:-(प्रथम पुस्तक) सम्पादकः-श्रीयुत् पुरुषोत्तम मेनारिया 'साहित्य रत्न'। पुस्तक, भू. पू. साहित्य संस्थान के भील साहित्य-संग्राहक श्रीयुत् फूलजी मीणा द्वारा संग्रहित ७२१ कहावतों का शब्दार्थ और भावार्थ सहित सम्पादित किया गया। साथ ही उपयोगी टिप्पणियाँ भी जोड़ी गई हैं, तथा भूमिका में भील साहित्य, कहावतों में निहित भील जाति की विचार धारा और भीली भाषा आदि के विषय में महत्वपूर्ण जानकारी दी गई है। इस पुस्तक को छपवाने का व्यय श्रीमान् रावजी केशरीसिंहजी ठि० बिजोलियाँ ने कृपा कर प्रदान करना स्वीकृत किया है। (प्रेस में)

भाग ४-मेवाड़ की कहावतें-(द्वितीय पुस्तक) सम्पादक श्रीयुत् पं० लक्ष्मीलाल जोशी एम. ए., एल-एल. बी.। इस पुस्तक के लिए पर्याप्त कहावतों का संग्रह कर लिया गया है और शीघ्र ही इनका सम्पादन-कार्य पूर्ण हो जायगा।

२. राजस्थानी लोक गीतमाला—

लोक गीत जनता के स्वाभाविक उद्गार हैं और जनता के भावों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इनके रुप में हमारे साहित्य की अमूल्य निधि सुरक्षित है। संसार के सभी सभ्य क्षेत्रों में इनके प्रकाशन को बड़ा महत्व दिया जा रहा है। विश्वविद्यापीठ ने साहित्य सस्थान की स्थापना से पूर्व ही इस ओर ध्यान दिया था और श्रीयुत् पं० जनार्दनराय नागर, एम. ए., साहित्य रत्न' ने कई गीतों का संग्रह किया था। उस समय इस कार्यक्रम के लिये एक छोटा सा आंदोलन प्रारम्भ किया गया था, किन्तु उसमें तब सफलता नहीं मिल सकी। साहित्य-संस्थान की स्थापना पर श्रीयुत फूलजी मीणा को भील गीत संग्रह के लिए पढ़ा लिखा कर नियुक्त किया गया। इस नवजवान कार्यकर्ता ने कई गीत भील क्षेत्र में घूम-घूम कर एकत्रित किये। श्रीयुत् गेहरीलाल नन्दवाणा और श्रीयुत् पुरुषोत्तम मेनारिया ने भी कई गीत एकत्रित किये। इस समय साहित्य-संस्थान में गीतों की कुल संख्या१००० के लगभग है जिनका सम्पादन कार्य चालू है। अभी

श्रीयुत् प० जनार्दन राय एम. ए., सा. रत्न' और श्रीयुत शम्भूलाल शर्मा एम. ए (प्रीवी) भील गीतों के सम्पादक मनोनीत किए गये हैं।

राजस्थान के लोकगीत—

सम्पादक -श्रीयुत् जनार्दनराय नागर एम०ए०, साहित्य रत्न, इस भाग में लोक जीवन से सम्बन्ध रखने वाले कई सुन्दर गीतों का सम्पादन किया गया है। (प्रेस में)

सुखी गिरस्थी रा गीत—

सम्पादक -श्रीयुत नरोत्तमदास स्वामी एम०ए०, विद्यामहोदधि बीकानेर इस भाग में गृहस्थ जीवन से सम्बन्धित अनेकों सुन्दर गीतों का सम्पादन किया गया है। (प्रेस मे)

लोक साहित्य विभाग के अन्तर्गत २०० के लगभग लोक कहानियाँ, १०० पहेलियां तथा फुटकर लोक कथा काव्यों का संग्रह हो चुका है। कार्यकर्ताओं की कमी के कारण अभी इस ओर विशेष प्रगति नहीं हो सकी है। मेवाड़ क्षेत्र से गूजरी और राजा भरथरी नामक दो छोटे लोक कथा काव्यों को लिपिबद्ध किया है। महा भारत, बगडावत, तेजोरी, मामादेव, रेवा मालण आदि को भी लिपिबद्ध करने की योजना चालू है।

राजस्थानी बात संग्रह—

सम्पादक'-श्रीयुत नरोत्तमदास स्वामी एम०ए०, विद्यामहोदधि, इसमें प्राचीन अनेकों सुन्दर और मधुर बातों का संग्रह कर सम्पादन किया गया है। (प्रेसमें)

लोक कथा काव्य—

साहित्य-संस्थान के सम्पूर्ण कथा काव्या को तीन भागों में विभक्त कर सम्पादन करने की योजना है।

आदिवासी भील—

लेखक.-श्रीयुत जोधसिंह महता'उदयपुर, प्रकाशक -रा०वि०विद्यापीठ। इस पुस्तक में आदिवासियों की उत्पत्ति तथा उनकी सभ्यता, संस्कृति पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। (प्रेस में)

पुरातत्व विभाग

डॉ० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा निबन्ध संग्रह—

राजस्थान के सुप्रसिद्ध इतिहासकार स्व. डॉ. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने अपने समस्त निबन्ध सम्पादन-प्रकाशन के लिए विश्व विद्यापीठ साहित्य संस्थान को अर्पित कर दिए थे। साथ ही इन निबन्धों की बिक्री से होने वाली समस्त आय भी विश्व विद्यापीठ को समर्पित कर दी थी। समग्र निबन्धों की संख्या १०८ है। निबन्धों की काल क्रमानुसार और विषयानुसार वर्गीकरण एवं चार भागों में प्रकाशन होगा। प्रत्येक निबन्ध के साथ नवीन खोज के अनुसार टिप्पणियाँ भी जोड़ी जावेगी। प्राचीन काल के निबन्धों का सम्पादन श्रीयुत् डॉ. रमाशंकर त्रिपाठी एम. ए. पी. एच. डी., अध्यक्ष, इतिहास विभाग, बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी और मुसलमानी काल मरहठा काल के निबन्धों का सम्पादन श्रीयुत महाराज कुमार डॉ. रघुवीरसिंह एम. ए., डी. लिट. एल-एल. बी., सीतामऊ कृपा कर कर रहे हैं। आशा है प्रथम भाग शीघ्र ही प्रेस में दे दिया जावेगा।

पुरातत्व विभाग के अन्तर्गत मेवाड़ के प्रायः सभी महत्वपूर्ण शिलालेखों की छापें प्रस्तुत कर दी गई हैं। इनकी संख्या ५६ है। इनका प्रकाशन सुविधानुसार किया जायगा। साथ ही कई ऐतिहासिक महत्व के कागज-पत्रों, प्राचीन चरित्रों, सिक्को आदि का भी संग्रह किया गया है। नवीन योजना के अनुसार शीघ्र ही एक संग्रहालय की स्थापना की जायगी और इस संग्रह-कार्य को आगे बढ़ाया जायगा।

अध्ययन गृह और संग्रहालय—

इस विभाग के अन्तर्गत कथित साहित्यिक, ऐतिहासिक सामग्री अतिरिक्त ६५० महत्वपूर्ण हस्त लिखित ग्रन्थ; संग्रहालय के लिए अप्राप्य हस्तलिखित ग्रंथों की प्रतिलिपियां और १८०० मुद्रित ग्रन्थ इकत्रित किए गये हैं। कई आवश्यक ग्रन्थ जो पास नहीं है उनकी सूचि बनाई एवं स्वीकृति की जा चुकी है और आशा है ये ग्रन्थ शीघ्र ही प्राप्त हो जायगे। हस्त लिखित ग्रन्थो को व्यवस्थित कर उनकी सूचि तैयार करने का कार्य समाप्त हो चुका है।

संग्रहालय के लिए साहित्य-संस्थान को कई महानुभावों ने सहायता देने की कृपा की है। स्व. श्रीयुत् पं० रत्तीलालजी अन्तानी के सुपुत्र श्रीयुत् विनोदराय अन्तानी ने अपने पिताजी के हस्त लिखित ग्रन्थों के महत्वपूर्ण संग्रह भी प्रदान किया। श्रीयुत् भगवतीलाल भट्ट 'साहित्य रत्न' श्रीयुत् भँवरलाल जोशी 'साहित्य

रत्न', श्रीयुत् भवानीशंकर ज्योतिषि ने भी अपनी हस्त लिखित पुस्तकें साहित्य संस्थान को प्रदान की। इनके अतिरिक्त श्रीयुत् नाथूलाल व्यास ने स्व- संग्रहित मूल्यवान मुद्रित पुस्तकें साहित्य-संस्थान को भेंट स्वरूप दी। श्रीयुत् इन्द्रसिंह मेहता बी. ए बार एटलॉ ने भी कृपाकर अपने श्री जोधसिंह मेहता पुस्तकालय को प्रदान किया। उक्त सभी महानुभाव धन्यवाद के पात्र हैं। संग्रहालय में अन्वानी संग्रह, भट्ट संग्रह, व्यास संग्रह और जोधसिंह पुस्तकालय व्यवस्थित किये गये हैं।

सामान्य विभाग

१. महाकवि सूर्यमल आसन

राजस्थान के महाकवि सूर्यमल मिश्रण के नाम पर स्थापित इस आसन का उद्देश्य राजस्थानी भाषा और साहित्य तथा इससे सम्बन्धित समस्याओं पर शोधपूर्ण लिखित भाषणों का आयोजन कर उन्हें प्रकाशित करना है। इसके लिये प्रतिवर्ष एक अधिकारी विद्वान द्वारा तीन भाषणों का आयोजन कर उन्हें प्रकाशित किया जाता है। महाकवि सूर्यमल आसन की स्थापना श्रीयुत् आचार्य मुनि जिन विजयजी संचालक, भारतीय विद्याभवन बम्बई के द्वारा सन् १९४३ में क गई थी।

इस आसन के प्रथम भाषक राजस्थानी के अनन्य प्रेमी श्रीयुत रामदेवजी चोखानी कलकत्ता के भाषण "राजस्थानी का महत्व" विषय पर कार्तिक कृष्णा ११, १२, और १३ विक्रमी सम्वत २००० में हुए। इसी अवसर पर राजस्थानी भाषा और साहित्य के उद्धार के निमित्त एक योजना बनाई गई और उसके अनुसार कार्य प्रारम्भ किया।

द्वितीय सूर्यमल-अभिभाषक श्रीयुत पं० नरोत्तमदास स्वामी एम ए. विद्या महोदधि, बीकानेर के भाषण श्रावण शुक्ला ११, १२, १३ विक्रमी सम्वत २००२ में "राजस्थानी भाषा और साहित्य" विषय पर हुए। इसी अवसर पर राजस्थानी के सम्बन्ध में विचार विनिमय के लिये राजस्थानी भाषा परिषद् की आयोजना की गई, जिसमें स्थानीय तथा बाहर के पन्द्रह विद्वानों ने भाग लिया।

तृतीय सूर्यमल अभिभाषक भारतवर्ष के सुप्रसिद्ध भाषा तत्वज्ञ श्रीयुत् डॉ० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या ए० एम० डी० लिट. प्राध्यापक और अध्यक्ष भाषातत्व विभाग, कलकत्ता विश्व विद्यालय मनोनीत हुए। आप के भाषण "राजस्थानी भाषा" विषय पर माघ शुक्ला ५ (बसन्त पचमी) ६ और ७ विक्रम संवत २००३ में हुए। भाषण पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुके हैं। इसी अवसर पर राजस्थानी

परिषद की दो बैठकें भी हुई।

चतुर्थ सूर्यमल-अभिभाषक सुप्रसिद्ध भारतीय विद्वान श्रीयुत मुनि जिन-विजयजी मनोनीत हुए हैं। आपके भाषण शीघ्र ही होंगे व इसकी व्यवस्था की जा रही है।

२ ओझा आसन

राजस्थान के दिवंगत सुप्रसिद्ध इतिहासकार डॉ० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा डी० लिट, साहित्य वाचस्पति महामहोपाध्याय के नाम पर स्थापित इस आसन का उद्देश्य राजस्थानी इतिहास तथा उससे सम्बन्धित समस्याओं पर शोध पूर्ण भाषणों का आयोजन कर उन्हें प्रकाशित करना है। इसके लिये प्रतिवर्ष एक अधिकारी विद्वान द्वारा तत्सम्बन्धी भाषणों का आयोजन कर उन्हें प्रकाशित करने की योजना है।

ओझा-आसन के प्रथम अभिभाषक श्रीयुत् महाराजा कुमार डॉ रघुवीर-सिंह एम. ए. डी. लिट एल. एल. बी. सीतामऊ थे। आप के भाषण पूर्व आधुनिक राजस्थान विषय पर हुए, भाषण लगभग ४०० पृष्ठों की पुस्तक के रूप में प्रकाशित कर दिये गये हैं।

३ श्री भूपाल प्राचीन-साहित्य ग्रंथ माला

संयुक्त राजस्थान राज्य के महाराजप्रमुख और राजस्थान विद्यापीठ के माननीय कुलपति (चांसलर) श्रीमान महाराणा भूपालसिंहजी महोदय के नाम पर यह ग्रन्थमाला प्रारम्भ की गई है। इस ग्रन्थमाला के अन्तर्गत सभी विषयों के उपयोगी एवं महत्वपूर्ण प्राचीन ग्रन्थों का प्रकाशन प्रारम्भ किया जा रहा है। हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज सम्बन्धी महत्वपूर्ण ग्रन्थ भी इसी माला के अन्तर्गत प्रकाशित किये जा रहे हैं।

४ शोध पत्रिका

प्राचीन साहित्य, लोक साहित्य, जनकला, इतिहास, पुरातत्व, भाषाशास्त्र विज्ञान आदि विविध विषयों के शोध पूर्ण निबन्ध प्रकाशित करने, नवोदित विद्वानों को शोध कार्य मे प्रेरित करने तथा शोध कार्य को प्रगति देने के उद्देश्यों से इस त्रैमासिक निबन्ध-पत्र का प्रकाशन चैत्र विक्रम संवत २००४ से प्रारम्भ कर दिया गया है। इसके सम्पादक मण्डल में प० श्रीयुत नरोत्तमदास स्वामी एम०ए०,विद्या महोदधि बीकानेर,श्रीयुत महाराज कुमार डा०रघुवीरसिंह एम०ए०,

डि०लिट०,एल एल०बी०, सीतामऊ, श्रीयुत कन्हैयालाल सहल एम०ए०, श्रीयुत देवीलाल सामर एम० ए० और श्रीयुत भगवतीलाल भट्ट, साहित्य रत्न (प्रबन्ध सम्पादक) अपनी सेवाएं कृपाकर दे रहे हैं। अब तक इसके ८ अंक दो भाग प्रकाशित हो चुके हैं एवं इस निबंध क्रम का प्रथम भाग पुस्तकाकार प्रकाशित कर दिया गया है।

५ मुनि जिन विजय अभिनन्दन ग्रंथ

श्रीमान् मुनि जिन विजयजी ने राजस्थान से दूर रहकर भी अपनी मातृभूमि राजस्थान की बड़ी सेवा की है। विश्व विद्यापीठ ने आपके सम्मान में एक अभिनन्दन ग्रन्थ प्रस्तुत करने का निश्चय किया है। इस ग्रन्थ के द्वारा राजस्थान का सर्वाङ्गीण और प्रामाणिक परिचय उपस्थित किया जायगा। इसमें भूमि, प्राणी, वनस्पति, जन जीवन, संस्कृत,पुरातत्त्व, जन जागृति, भाषा, साहित्य, जन कला आदि मुख्य विभाग रहेंगे। आशा है, आगामी वर्ष तक इस कार्य को समाप्त कर सकेंगे।

सुभाषित सर्वोपरि

अजमेर के पास देवलिया ग्राम निवासी स्व० राव बहादुरसिंहजी द्वारा संग्रहीत सुभाषित सर्वोपरि ग्रन्थ को २५०० रुपये में संस्थान ने प्राप्त कर लिया है। इस ग्रन्थ में लग भग एक लक्ष छन्द हैं, जो विविध भाषाओं और भावों की दृष्टि से बड़े ही मनोरंजक हैं, इस ग्रन्थ में ४०० के आसपास विषय हैं, जिन पर कि विविध कवियों की सुन्दर रचनायें हैं, स्वयं संग्रहकार की ७००० के करीब उत्तम रचनायें हैं, इसके अतिरिक्त कामशास्त्र के ऊपर विशद विवेचन का कन्दर्प कला निधि नामक ग्रन्थ है। इसी तरह सामुद्रिक ग्रन्थ और अनेकों निबन्ध तथा मनोरंजक साहित्य संग्रहकार की धर्मपत्नी से प्राप्त किया गया है। इसके सम्पादन कार्य की व्यवस्था की जा रही है। कन्दर्प कलानिधि का सम्पादन करना श्री जनार्दनरायजी नागर ने स्वीकार किया है।

नवीन साहित्य सृजन एवं परिषद विभाग।

नवीन साहित्य के सृजन और प्रकाशन के लिये साहित्य सृजन विभाग की आयोजना की गई है। साथ ही साहित्यकार के संगठन एवं स्वावलम्बन के लिये उक्त परिषद में महत्वपूर्ण कार्य करने की योजना है।

"नया चीन" ले० हुक्मराज महता, प्रकाशकः- रा० वि० विद्यापीठ

उक्त आयोजना के अन्तर्गत इस वर्ष 'नया चीन' पुस्तक प्रकाशित की गई है, भारतीय साहित्य में यह एक नया आयोजन है।

निम्न लिखित कार्य भी साहित्य-संस्थान द्वारा इसी वर्ष किये जाने की योजना की गई हैं।

(१) महाकवि चंद, मीरां, पृथ्वीराज, सूर्यमल आदि की रचनाओं को प्रामाणिक परिचय, अर्थ और आलोचना आदि सहित प्रकाशित करने के लिये एक ग्रन्थमाला का प्रारम्भ।

(२) राजस्थानी लोक-कहानियाँ, ख्याल, वैठकों के गीत आदि का संग्रह।

(३) राजस्थानी जन-जीवन के चित्रों का सटिप्पण 'एलबम' प्रकाशित करना।

(४) राजस्थानी भाषा की विविध बोलियों के साहित्य का संग्रह करने और अन्य शोध-कार्य करने के लिये शाखाओं की स्थापना।

(५) साहित्य-संग्राहकों तथा शोध-कर्त्ताओं के लिये एक शिक्षण-शिविर का आयोजन।

(६) राजस्थान में शोध-कार्य सम्बन्धी समस्याओं पर विचार करने और आवश्यक कार्य करने के लिये राजस्थान शोध-परिषद का आयोजन।

(७) राजस्थान की साहित्यिक, ऐतिहासिक एवं कलात्मक विविध उपयोगी और राष्ट्रीय महत्व की सामग्री के संग्रह, संरक्षण, प्रदर्शन और अध्ययन के लिये एक विशाल संग्रहालय की स्थापना।

(८) राजस्थान के ग्रामों के नाम सांस्कृतिक परिचय के एकीकरण का कार्य आरम्भ करना।

निरीक्षण

स्थानीय जनता, विद्वानो और कार्यकर्ताओं के अतिरिक्त देश के कई प्रमुख महानुभावों ने साहित्य-संस्थान के कार्य का निरीक्षण किया है। कुछ नाम इस प्रकार हैं:—

श्रीयुत् महा पण्डित राहुल सांकृत्यायन, श्रीयुत् डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, श्रीयुत् मोहनलाल सक्सेना, श्रीयुत प्रो० सत्येन्द्र एम० ए०, श्रीयुत् आचार्य विनोबा भावे, श्रीयुत् कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी, श्रीयुत् मुनि जिन विजय,

श्रीयुत् सम्पूर्णानन्द, श्रीयुत् जयप्रकाशनारायण, श्रीयुत् बाल गंगाधर खेर, श्रीयुत् पूर्णचन्द्र जैन, श्रीयुत सत्यनारायण नाथानी, श्रीयुत् सुगनमल भंडारी, श्री जयनारायण व्यास, श्री श्रद्धा माता, श्री नरोत्तमदास स्वामी, श्री महेन्द्र प्रताप, श्री परशुराम चतुर्वेदी, डेविड शेफर्ड आदि।

आभार—

राजस्थान विश्व विद्यापीठ साहित्य संस्थान उन सभी महानुभावों का परम आभारी है जिन्होंने समय समय पर साहित्य संस्थान के लिये आर्थिक सहायता दी है, जिन्होंने साहित्य संस्थान का सम्पादन लेखन कार्य किया है और अधिकांश में आज भी कर रहे हैं। जिन्होंने साहित्यिक, ऐतिहासिक एवं अन्य महत्वपूर्ण सामग्री को एकत्रित करने में सहयोग दिया है और जिन्होंने अपनी पुस्तकें तथा महत्वपूर्ण वस्तुएं साहित्य संस्थान के लिये प्रदान की हैं तथा जिनका उल्लेख कार्य-विवरण में भी यथास्थान हो चुका है। साहित्य संस्थान अपने मानद निर्देशकों, परामर्शदाताओं, विभिन्न समितियों उपसमितियों, के सदस्यों, साहित्य संग्राहकों तथा कार्यकर्ताओं का भी आभारी है। जिनके बल पर साहित्य संस्थान निरन्तर प्रगति करता जा रहा है। इस कठिन समय में संस्थान को, श्रीमान् महाराज कुमार सा० उदयपुर, ठाकुर सा० गोपालसिंहजी बदनोर, महाराज सा० शिवदानसिंहजी करजाली, रावजी सा० बिजैपुर, भागीरथजी कानोडिया कलकत्ता, केलवा ठाकुर सा० तथा अनेक महानुभावों ने आर्थिक सहायता दी है, उसके लिये हम उनके अत्यन्त ही ऋणी हैं।

राजस्थान विश्व विद्यापीठ साहित्य-संस्थान के तत्वाधान में स्थापित

"डॉ. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा आसन"

उद्घाटन समारोह

पूर्वाभास परिचयाङ्क—

राजस्थान विश्व विद्यापीठ साहित्य संस्थान का शोध-विभाग अपने प्रतिष्ठापन के समय से बराबर राजस्थानी भाषा, साहित्य तथा इतिहास के अपरिचय के आच्छादन से परिवेष्ठित विशाल भाण्डार को यथासाध्य अपनी शक्ति और साधनों के अनुरूप प्रकाश में लाने के लिये यत्नवान रहा है। लोक-साहित्य, चारण तथा राव-साहित्य तथा राजस्थानी कहावतों और मुहावरों की शोध खोज के क्षेत्र में हो रहे क्षेत्र-कार्य तथा सम्पादन कार्य के अतिरिक्त त्रैमासिक 'शोध पत्रिका' के प्रकाशन तथा डॉ गौरीशंकर हीराचन्द ओझा जैसे इतिहासज्ञ एवम् पुरातत्व वेत्ताओं की अब तक की अप्रकाशित रचनाओं को प्राप्त कर उनके समुचित सम्पादन और प्रकाशन का कार्य भी 'संस्थान' कर रहा है, और द्विगुणित शक्ति से करना चाहता है। इन प्रवृत्तियों के अतिरिक्त राजस्थानी के सुप्रसिद्ध कवि तथा इतिहास कार कविवर सूर्यमल की स्मृति में 'सूर्यमल आसन' की स्थापना के बाद उसके तत्वाधान में राजस्थानी भाषा और साहित्य पर शोध पूर्ण भाषणों का समायोजन भी इस संस्थान द्वारा किया गया है।

अपनी गति विधि और कार्य के दौरान में इसके पश्चात् देश के लब्ध प्रतिष्ठ इतिहासकार, पुरातत्व वेत्ता तथा विद्वान महामहोपाध्याय डॉ गौरीशंकर हीराचन्द ओझा की पुण्य स्मृति में "डॉ गौरीशंकर हीराचन्द ओझा आसन"

की स्थापना करने का शुभ संकल्प विद्यापीठ के इस संस्थान ने किया । अनेक विघ्न बाधाओं और कठिनाइयों के कारण यह संकल्प अद्यावधि मूर्तरूप धारण न कर सका । किन्तु फिर भी डॉ. रघुबीरसिंहजी एम. ए. एल-एल. बी. डी. लिट् को उक्त आसन के प्रथम 'आपक' की भाँति प्राप्त कर सकने के रूप में संस्थान को अपने उक्त संकल्प को कार्यान्वित करने के लिए मानों एक सुदृढ़ आधार प्राप्त हो गया । और अन्ततः वह मूहूर्त भी आया जब विद्यापीठ की चौदहवीं वर्ष गांठ के शुभ अवसर पर संस्थान अपने इस संकल्प को मूर्त रूप देने "डॉ. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा आसन" का उद्घाटन करवाने का सुयोग पा सका ।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि राजस्थान और राजस्थानी भाषा, साहित्य-संस्कृति, कला और इतिहास के क्षेत्र मे शोध खोज, संग्रह, संपादन तथा सृजन के लिये विशाल संभावनाएँ विद्यमान हैं । टूक टूक राजस्थान जब आज एकीकृत होकर एक विशाल इकाई के रूप में संघठित हो चुका है, तब तो इस माने में और भी सजग प्रयत्न तथा प्रवृत्ति की आवश्यकता स्वतः बढ़ गई है । हमारा राजस्थान का अतीत हमारे सम्पूर्ण देश के प्राचीन इतिहास में अपनी विशेषताओं के कारण गौरव पूर्ण स्थिति का धनी है उसके चतुर्दिक समय के व्यतीत होने के साथ २ शनैः शनैः विस्मृति का जो जाल फैलता और बढ़ता गया है । उसे फिर कर अपने उस युग को पहचानना और उसके आलोक में अपने वर्तमान का अंकन और आलेखन करना आज कितना अनिवार्य है ? इस 'ओझा आसन' की स्थापना तथा निमित्त से राजस्थान तथा समस्त देश से इस भूमि के प्रतिनिष्ठावान महाशयों, विद्वानों तथा इतिहासविदों का सहयोग प्राप्त कर यदि राजस्थान विश्व विद्यापीठ, साहित्य-संस्थान इस लक्ष्य की पूर्ति में कुछ भी उपयोगी सहयोग दे सका तो वह अपने आपको गौरवान्वित समझेगा ।

स्व०डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा का संक्षिप्त परिचय

स्व०डॉ०गौरीशंकर हीराचन्द ओझा का जन्म वि०सं०१९२० भाद्रपद शुक्ल २ को सिरोही प्रान्त के रोहेड़ा गाँव में सहस्त्र औदिच्य जाति के हीराचन्दजी के घर में हुआ था, इनके चार पुत्र और एक पुत्री उत्पन्न हुए, इनकी पत्नी की गृह कुशलता ने इनके प्रारम्भिक आर्थिक संकट मय जीवन को व्यवस्थित कर दिया, प्रारम्भिक शिक्षा घर पर-और बादमें बम्बई में शिक्षा प्राप्त की, वहीं इन्होने इतिहास, पुरातत्व तथा लिपि आदि का परिज्ञान प्राप्त किया । प्रचुरज्ञान उपलब्ध कर ये उदयपुर की ओर आये, और म० फतहसिंहजी ने अपने राजकीय पुरातत्व

विभाग के अध्यक्ष पद पर नियुक्त किया। इस समय तक इन्होंने काफी शोध पूर्ण लेख लिखें। ई०स०१८६४ में विश्व की सर्व श्रेष्ठ भारतीय प्राचीन लिपिमाला का प्रथम संस्करण जब प्रकट हुआ ओझाजी प्रथम कोटि के साहित्यिक गिने जाने लगे। ई०स०१६०८ में अजमेर के राजपूताना म्युजियम की स्थापना हुई, उसके ये अध्यक्ष बनाये गये और सन ३८ तक कार्य करते रहे, इन्होंने राजस्थान के तथा भारत के सभी प्राचीन स्थानों का भ्रमण किया। ई०स०१६०२ में कर्नल टॉड के इतिहास का सम्पादन किया। १६०८ में सोलंकियों का इतिहास लिखा, इसके बाद पृथ्वीराज विजय तथा कर्मचन्द वंश संबंधी पुस्तकका सम्पादन किया और ई०स० १६१८ में प्राचीन लिपि माला का बृहद संस्करण भारतीय प्राचीन लिपि माला को परिवर्धित संस्करण निकाला, उस पर अ०भा०हि०सा० सम्मेलन से मंगला प्रसाद पुरस्कार मिला। १६२० में ना०प्र०पत्रिका के सम्पादक बनाये गये, सन् १६२२ से राजपूताना का इतिहास लिखने का कार्य शुरु किया इन्होंने उदयपुर, डूंगरपुर, बांसवाड़ा, प्रतापगढ, जोधपुर और बीकानेर राज्यों के इतिहास लिखें, मुंहणोत नेणसी की ख्यात का सम्पादन किया और लगभग १५० पृष्ठ का शोध पूर्ण लेखा लिखे जो विद्यापीठ की ओर से पुस्तकाकार प्रकाशित किये जायगे।

सम्मान— ई०स० १६१४ में राय बहादुर का खिताब
" १६२८ में महा महोपाध्याय की उपाधि
" १६११ मे दिल्ली दरबार में निमन्त्रित
" १६२७ हि०सा०स० भरतपुर अधिवेशन तथा नड़ियाद में हुई गुजरात साहित्य सभा के सभापति
" १६२८ में हिन्दुस्तानी एकेडेमी इलाहबाद में मध्यकालीन भारतीय संस्कृतियां पर तीन भाषण
" १६३३ म भारतीय अनुशीलन ग्रन्थ से अभिनंदित
" १६३३ में ओरियन्टल कॉन्फ्रेंस बड़ौदा में इतिहास विभाग के अध्यक्ष
" १६२७ मे साहित्य वाचस्पति और वाचस्पति की पदवी

ई० स० १६३७ में काशी विश्व विद्यालय मे डी० लिट् तथा आन्ध्र विश्व विद्यालय से पुरातत्व वेत्ता की मान्यता

भारत के कई महात्माओं, राजाओं, नेताओं तथा विद्वानों के सम्पर्क में रहे।

मृत्यु २००४ वैशाख शुक्ल ११ को स्वग्राम में निधन।

डॉ० रघुवीरसिंह का संक्षिप्त परिचय—

जन्म—२३ फरवरी १९०८ सीतामऊ नरेश श्री रामसिंहजी के राज कुल में हुआ। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही हुई, बाद में बड़ौदा, बम्बई, आगरा आदि में रहकर उच्च शिक्षण प्राप्त किया. सन १९३६ में आगरा युनिवरसिटी से आपको मालवा इन ट्रान्जेशन थिसिस पर डी० लिट् की उपाधि मिली. १९२९ में आपका विवाह प्रतापगढ़ नरेश के यहां हुआ. आपके दो पुत्र और दो पुत्रियां हैं। सन १९३१ से ही आप राज्य प्रबन्ध, शासन सम्बन्धी कार्य तथा भारतीय राजनीति में संलग्न हो गये, भारतीय रियासतों के एकीकरण में आपकी विशेष दिलचस्पी रही है। आप मध्य भारत और राजस्थान के इतिहास के एक नये दिग्दर्शक हैं। हिन्दी गद्य काव्य पर भी आपका पूरा अधिकार है। ओझाजी के बाद राजस्थान आदि इतिहास कार में आपका नाम आता है. आप सरल प्रकृति के और कर्म कुशल व्यक्ति हैं। इस समय अन्य संस्थाओं के सम्बन्ध के साथ २ आप रा० वि० विद्यापीठ के वरिष्ठोपकुलपति हैं। आपकी अब तक की रचनायें निम्न हैं:—पूर्व मध्य कालीन भारत, बिखरे फूल, सप्तदीप, शेष स्मृतियां, रतलाम का पहला राज्य, मालवा इन ट्रान्जेशन, मालवा में युगान्तर, भारतीय रियासतें और नया शासन, पूना रेजिडेन्सी रेकार्डस् सर्विस, पूर्व आधुनिक राजस्थान। (ओझा आसन से दिये गये अभिभाषण)!



साहित्य परिषद:—२० तारीख की प्रातः साढ़े सात बजे विद्यापीठ सरस्वती भवन में साहित्य-परिषद् का आयोजन किया गया। श्री भगवतीलालजी भट्ट ने मनोनीत सभापति डॉक्टर रघुबीरसिंहजी को आसन-गृहण करने की प्रार्थना की। साहित्य परिषद में विवेचनात्मक विषय था 'हमारे साहित्य की भावी मार्ग दिशा'। श्री भट्ट ने विषय पर बोलते हुए बताया कि राजस्थान और भारत के साहित्यकारों की अनेकों समस्याएँ हैं इन समस्याओं के सम्मुख वह आतुर व भयभीत- सा व्रत में पांव लटकाये बैठा है। समस्या के मूल तक पहुंचने में असमर्थ हो रहा है। साहित्य जीवन यापन का सस्ता माध्यम बन गया है। राजनैतिक स्वतन्त्रता के संघर्ष के समय उत्साह, सेवा और लगन का निदान आज भ्रष्ट जीवन में हो गया है। आज का साहित्यकार विभिन्न राजनैतिक-गुटों में नव साहित्य का निर्माण किया जाना असम्भव हो गया। साहित्य में जीवन की गति, आत्म प्रखरता आवेग और भावों की सहज अभिव्यक्ति न्यूनतर होती गई है!

साहित्यिक प्रवृत्तियों में अनेकों बार राजस्थान व्यापी सगठन बनाने का प्रयत्न किया किन्तु सामुहिक रुचि, उत्साह और लगन के अभाव में हमें शुभ प्रयत्न और आकांक्षा को वहीं स्थगित कर देना पड़ा।

तत्पश्चात् अध्यक्ष पद से डॉ० रघुवीर सिंहजी ने साहित्य की सृजनात्मक और सगठनात्मक दृष्टि से तीन सुझाव दिये।

राजस्थान व्यापी साहित्यिक आन्दोलन के निर्माण के हेतु अनेकों प्रयत्न होने के पश्चात् आज भी इस प्रकार का सगठन नहीं बन सका है। इसके मूल कारण को समझे बिना नये सगठन का विचार करना असगत होगा। दूसरा मुख्य कारण है किसी भी साहित्यिक महत्त्वपूर्ण कार्य में हम राजनीति के दाव-पेच की अवस्था से बाहिर नहीं निकले। और यदि भविष्य में राजनीति के तत्वाधान में साहित्यिक सगठन का प्रयत्न किया जायगा तो अवश्य असफल होगा। जनता को साथ लेकर चलने में साहित्य का गरिमामय भाविष्य निहित है।

उपर्युक्त भावना को रचनात्मक क्रम देने के लिये जहाँ तक जनपदों के आधार पर साहित्य का जनता से सम्बन्ध स्थापित नहीं किया जाता तब तक प्रगति सम्भव नहीं है। प्रान्तीय सम्मेलन के झगड़ों में न पड राजस्थान या दक्षिणी राजस्थान में जनपदों द्वारा साहित्य समितियों की स्थापना कर, जन सम्पर्क से साहित्य निर्माण ही सच्ची सेवा होगी।

आज के साहित्य में राजनीति के एकाधिपत्य होना प्रगति के लिये दुर्भाग्य का प्रश्न है। यद्यपि राजनीति भी जीवन का आवश्यक अग है तथापि उसके अस्थायी आवरण को साहित्य पर डाल देना भूल होगी। विचारों की प्रमुखता ही नई राजनीति का अंकुर है। कार्ल मार्क्स विचारक पहिले था और उसके पश्चात् की राजनीति और इतिहास उस अंकुर का विकास। साहित्य पर वर्तमान राजनीति का हावी हो पाना साहित्यकारों की असफलता और साहित्यिक सगठन की समस्या है।

देश काल से परे साहित्य की अभि व्यञ्जना असम्भव है। राजनीति की छाया में साहित्य का पनपना चिरन्तन साहित्य नहीं प्रोपेगेण्डा होता है। प्रचार की अति प्रवृति और साहित्य की सूक्ष्म प्रवृत्ति एक दूसरे के विपरीत हैं। यदि इसमें नीरक्षीर विवेक से काम नहीं लिया गया तो राजनीति के पीछे साहित्य का भविष्य उज्ज्वल नहीं हो सकता।

डॉ० रघुवीरसिंहजी के भाषण के उपरान्त श्री नन्द चतुर्वेदी, श्री कन्हैया-लालजी ओझा, श्री अमरजी, सुश्री श्रीकान्ता, श्री जायरियाजी, श्री कोमल कोठारी ने विषय पर अपने विचार प्रकट किये। (कुछ महानुभावों के परिशिष्ट में भाषण देखिये।)

ओझा-आसन समारोह का संक्षिप्त विवरण

राजस्थान विश्व विद्यापीठ साहित्य संस्थान के तत्वावधान में दिनांक १६, २०, २१ अगस्त १६५१ को अपूर्व उत्साह से 'ओझा-आसन' का गम्भीर समारोह मनाया गया। स्वर्गीय श्रीगौरीशंकर हीराचन्दजी ओझा के महत्व पूर्ण ऐतिहासिक कार्य को चिरस्मित करने के हेतु इस प्रकार का आयोजन किया गया।

इतिहासज्ञ के आसन की आत्मा को इतिहासज्ञ की अन्वेषण पूर्णवाणी ही परितृप्ति प्रदान कर सकती है। इसी हेतु प्रमुख भारतीय इतिहासकार डॉ. रघुबीरसिंहजी एम. ए. डी. लिट् एल. एल. बी. को अभिभाषक नियुक्त किया गया। राजस्थान के गौरव पूर्ण इतिहास पर प्रकाश डालने का श्रेय ओझाजी को प्राप्त था और उस प्रकाश को स्थिरता तथा नवीन दृष्टि कोण से परिपूरित करने का श्रेय डॉ. रघुबीरसिंहजी को प्राप्त हुआ। जिन्होने गहन अध्ययन के पश्चात् पूर्व आधुनिक राजस्थान की ऐतिहासिक घटनाओं का विवेचन किया (यह अभिभाषण भी पुस्तकाकार मे छप चुका है।)

इतिहास के महत्व से प्रेरणा और उत्साह प्राप्त करने १६ अगस्त १६५१ को श्री महाराणा भूपाल कॉलेज सभा भवन में 'ओझा-आसन' का उद्घाटन राजस्थान



(उद्घाटन भाषण देते हुए व्यासजी)

के प्रधान मन्त्री श्री जयनारायणजी व्यास द्वारा हुआ। 'ओझा-आसन' के महत्व को प्रतिपादित करते हुए श्री व्यासजी ने कहा "यह कहना न होगा कि

गौरीशकर हीराचन्दजी ओझा का नाम राजस्थान के इतिहास का पर्यायवाची नाम हो गया है। राजस्थान के शिलालेखों, पत्थरों, पगडडियों, प्रासादो छत-रियों, गुबदों और मीनारों तथा स्तभो से मतिमान ओझाजी ने राजस्थान के जीवन क्रम के अतीत को एक क्रम बद्ध स्वरूप देने को स्मृति में आसन स्थापित कर राजस्थान विश्व विद्यापीठ उदयपुर ने एक अभाव की ही अनिवार्य पूर्ति नहीं की, किन्तु डॉ ओझा की चिन्तना और काम के आसन पर राजस्थान और भारत की जनता के इतिहास की गम्भीर विवेचना तथा "गवेषणा के लिये अमूल्य अवसर प्रस्तुत किया है।" व्यासजी ने आगे डॉ रघुवीरसिंहजी की विद्वत्ता का अभिनन्दन करते हुए कहा "डॉ रघुवीरसिंहजी के अभिभाषणों का विषय "पूर्व आधुनिक राजस्थान" है। बाबर से लगा कर वृहद् राजस्थान के निर्माण तक आपने राजस्थान के व्यतीत जीवन की ऐतिहासिक घटनाओं, घुमावों, मोडो अवस्थाओं, प्रसगों, अकस्मातों सौभाग्यो और दुर्भाग्यों का आम जनता की दृष्टि से अध्ययन करने का प्रथम और आवश्यक प्रयास किया है।

कहना न होगा राजस्थान के सामन्तों और उसके जीवन के प्रेम प्रसगों तथा पराक्रम वैभवों के उपरान्त सदियों से प्रवहमान राजस्थान के जन जीवन की अभिलाषाओं, आकाक्षाओं के जीवन क्रम का निरपेक्ष चित्रण आवश्यक है। अन्त में आपने उद्घाटन की घोषणा करते हुए कहा कि हमें विश्वास करना चाहिये कि वृहद् राजस्थान के बदलते हुए इतिहास के जन जीवन का अध्ययन प्रति वर्ष ख्यात इतिहास वेत्ताओं की लेखिनी द्वारा प्रस्तुत किया जाता रहेगा।



(ओझा आसन के अवसर पर भाषण देते हुए पीठाधिपति श्री जनार्दनराय नागर)

उद्घाटन भाषण के पश्चात् पीठस्थविर श्री जनार्दनराय नागर का भाषण हुआ। श्री नागर जी ने विद्यापीठ के संघर्ष मयजीवन की कहानी का लेखा देते हुए विद्यापीठ की अबाध प्रगति और विकास के दृढ़ विश्वास का आश्वासन दिया। आपने कहा ओझा आसन के निर्माण के आज के दिन ही से उस कार्य का श्री गणेश होता है जिसके आधार पर नवीन राष्ट्रों की कल्पनायें सजीव होती हैं। और यह आधार है इतिहास। विद्यापीठ के कार्य का निरन्तर विकास निश्चय, और प्रगति अर्थ पर अवलम्बित है। आर्थिक सहायता से अनेकों महत्वपूर्ण कार्यों को सफलता से समाप्त करने का प्रयत्न किया जा सकता है आपने प्रधान मन्त्री को इस ओर सोचने की अपील की।

इसके बाद जो शुभ सन्देश ओझा-आसन के अवसर पर प्राप्त हुए उन्हें संस्थान के मन्त्री श्री गिरिधारीलाल शर्मा ने पढ़कर सुनाये। उनमें प्रमुख सन्देश केन्द्रीय सरकार के खाद्य मन्त्री श्री के. एम. मुन्शी, संयुक्त प्रान्त के प्रधान मन्त्री श्रीगोविन्दवल्लभपन्त तथा शिक्षा-सचिव श्रीसम्पूर्णानन्दजी माननीय गाडगिल, डॉ. ताराचन्द डॉ. दौलतसिंह कोठारी, राजस्थान के मन्त्रीगण माननीय सर्व श्रीजसवन्तसिंह मा० युगलकिशोर चतुर्वेदी, मा० टीकाराम पालीवाल, गोस्वामीगणेशदत्त, डॉ. त्रिपाठी, भागीरथजी कानोड़िया, पी. के. गॉडे, गोकुलभाईभट्ट. राहुल सांकृत्यायन आदि प्रमुख थे। और भी अनेक शुभ सन्देश प्राप्त हुए जिन्हें स्थानाभाव के कारण यहाँ अंकित करना कठिन है किन्तु सभी का हम संस्था की ओर से आभार प्रदर्शित करते है।



(डॉ. साहब भाषण देते हुए)

तत्पश्चात् साहित्य संस्थान के कार्य का संक्षेप में श्री भगवतीलालजी भट्ट ने परिचय दिया। (परिशिष्ट में पूरी रिपोर्ट देखिये) करतल ध्वनि के मध्य में डॉ. रघुवीरसिंहजी ने अपना प्रथम भाषण चालू किया (भाषण पुस्तकाकार पूर्व आधुनिक राजस्थान के नाम से प्रकाशित हो चुका है। अन्त में श्री नागरजी ने प्रधान मन्त्री तथा उपस्थित सज्जनों व सन्नारियों को धन्यवाद दिया। प्रथम दिवस का कार्य सफलता पूर्वक समाप्त हुआ।

दिनाङ्क २० अगस्त को उदयपुर के महाराज कुमार साहब श्री भगवतसिंहजी के सभापतित्व में पूर्व आधुनिक राजस्थान का द्वितीय अभिभाषण हुआ। श्री महाराज कुमार साहब ने मेवाड के प्राचीन ऐतिहासिक स्थान पर ओझा आसन की स्थापना का महत्व बताते हुए विद्यापीठ के इस कार्य की सराहना की, तथा डॉ० ओझा के ऐतिहासिक कार्य की व्याख्या करते हुए राजस्थान के इस नवीन उत्साह प्रद ऐतिहासिक कार्य की अनिवार्य आवश्यकता प्रकट की। और विश्वास जाहिर किया कि इससे राजस्थान के इस नवीन संगठन के लिये डॉ० रघुवीरसिंहजी का इतिहास विषय पर अपना पूरा अधिकार है। वे कई एक भ्रान्त धारणाओं को दूर कर राजस्थान का समूचा विशुद्ध इतिहास निर्माण में अपना योग देंगे। इसके बाद डॉ० रघुवीरसिंहजी का द्वितीय भाषण हुआ। समारोह के तीसरे और अन्तिम दिन २१ अगस्त को राजस्थान के शिक्षामंत्री श्री मथुरादास के सभापतित्व में विराट जनसमूह के बीच तृतीय अभिभाषण समाप्त हुआ। आज के ही शुभ दिवस पर राजस्थान विश्व विद्यापीठ की स्थापना हुई थी—

सर्व प्रथम डॉ० रघुवीरसिंहजी का अभिभाषण हुआ तत्पश्चात् श्री जनार्दन राय नागर ने विद्यापीठ की स्थापना के दिन से आज तक के संघर्षमय इतिहास को दोहराया। आपने ओजस्वी भाषण में कहा विद्यापीठ का कर्त्तव्य लोक सेवा है मनुष्य की अनेकों मुखी प्रगति और प्रवृत्तियों को सुन्दर भविष्य की ओर लेजाना उसका लक्ष्य है। इस ज्ञान के दीपक को प्रकाशित करके विद्यापीठ ने अन्धकारमय संघर्षरत, सतत विकासशील और समाज के कल्याण की भावना का उद्बोधन किया है। इस दीपक को बुझाने हेतु अनेकों शक्तियों ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाई अपने क्षेत्रों से आंधियों पर आंधियों को भेजा किन्तु ज्ञानका यह दीपक जलता रहा जिस दिन यह आलोक प्रदीप जिस साध्य को लेकर चला है-बुझा देगा-उसी दिन मैं स्वयं उसे बुझा दूंगा। अपने भाषण के अन्त में आपने राजस्थान के स्वद मंत्री श्री मोहनलाल सुखाड़िया से बोलने की प्रार्थना की।

श्री सुखाड़ियाजी ने अपने भाषण में विद्यापीठ से अपने पुराने सम्बन्धों का उल्लेख करते हुए कहा " मैं विद्यापीठ का उत्तरोत्तर विकास चाहता हूँ। किसी भी संस्था के विकास के लिये अपने निर्धारित कर्त्तव्यों का पालन करना अति आवश्यक है। चाहे आज यहाँ के निवासी यहाँ की सस्था के महत्त्व को समझ न सके, मैं जहाँ कहीं बाहर जाता हूँ उदयपुर की संस्थाओं की प्रशंसा सुनता हूं। जितने कम खर्च में और जितने अधिक उत्साह से यहां की जनसंस्थाएँ कार्य करती है। वह अन्य स्थानों के लिये उदाहरण के योग्य है।

अध्यक्षपद से शिक्षामंत्री श्री माथुर ने कहा "विद्यापीठ जैसी संस्थाओं को हर प्रकार के सहयोग मिलना चाहिये" यह सहयोग जनता औरो



(शिक्षा मन्त्री अध्यक्ष पद से बोल रहे हैं।)

सरकार दोनों की ही ओर से हो। असली सहयोग तो जनता का ही हो सकता है! सरकार केवल एक साधन है। व्यक्ति के तौर पर और सरकार के प्रतिनिधि की ओर से मैं विद्यापीठ के कार्य में हर सहयोग और सहायता देना अपना कर्तव्य समझता हूँ।

अतमें श्री गिरिधारीलाल शर्मा, मंत्री साहित्य-संस्थान ने श्री माथुरजी और श्री सुखाड़िया तथा अन्य गण्यमान्य सज्जनों को धन्यवाद दिया। श्री शर्मा ने उन लोगों के प्रति भी आभार प्रदर्शित किया, जिन्होने इस आयोजन को सफल बनाने के लिये पूरी २ सहायता दी!

संस्कृति परिषद की बैठक का विवरण

ता: ४० ८-४१ को प्रातः काल ७॥ बजे विश्व विद्यापीठ साहित्य-सस्थान द्वारा आयोजित "सस्कृत-परिषद" में अध्यक्ष पद से अन्य विद्वानों के साथ "भारतीय सस्कृति और जनतन्त्र" विषय पर श्री शान्ति प्रसादजी वर्मा ने अपना महत्वपूर्ण वक्तव्य दिया. (परिशिष्ट में देखिए)

श्री भगवतीलालजी भट्ट ने बोलते हुए कहा कि बहुत समय पूर्व सस्कृति-परिषद का आयोजन हमारे द्वारा किया गया था, किन्तु कई कारणों से इतने समय हुए ऐसा आयोजन नहीं किया जा सका आज यह बडे सौभाग्य का अवसर है कि भारत के ख्याति प्राप्त विद्वानों के समक्ष यह सस्कृति परिषद का आयोजन हो रहा है, सस्कृति देश की आत्मा और उसके विचारों का तथा राजनीति का लेखा है संस्कृति एक समस्या या विचार है, यह किसी देश विशेष की आत्मा है, किसी भी देश के व्यक्ति के लिये सस्कृति का ज्ञान होना आवश्यक है



डॉ साहब का स्टेशन पर स्वागत

(जहा तक ऐतिहासिक दृष्टि से इस पर प्रकाश डालने का प्रश्न है देश के माननीय विद्वान डॉ० रघुवीरसिंहजी तथा श्री शान्ति प्रसादजी वर्मा इस पर अधिकृत रूप से पूर्ण प्रकाश डालगे और श्रीभट्टजी ने विषय के अधिकारी विद्वान सज्जनों से निवेदन किया कि आनेवाली शोध के

लाभार्थ वे उक्त विषय पर पूर्ण प्रकाश डाल सके तो बड़ा अच्छा होगा.)
कई लोगों द्वारा संस्कृति की व्याख्या कई प्रकार से की गई है, किन्तु यह तो मानी हुई बात है कि देश में सांस्कृतिक उत्थान के अभाव में कोई भी देश उन्नति नहीं कर सकता. जिस दुर्गम समय में मौजूदा पीढ़ी गुजर रही है उस ओर कोई सफल प्रयत्न नहीं किया गया तो हमारा भविष्य अन्धकारमय होना निश्चित है.

चर्चा में भाग लेने वालों में सर्व श्री डॉ० रघुवीरसिंहजी, चिमनसिंहजी झावरिया आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

ता० २० को सायंकाल ४ बजे साहित्य संस्थान के कार्य की प्रदर्शनी एवं पृथ्वीराज रासो सम्पादन कार्य का माननीय महानुभावों द्वारा निरीक्षण किया गया.

ता० २१ को सायंकाल ४ बजे विद्यापीठ के कार्यकर्ताओं की एक बैठक हुई जिसमें डॉ० रघुवीरसिंहजी एवं माननीय शिक्षा मन्त्रीजी के सार गर्भित प्रवचन हुए, इस अवसर पर अनेक महानुभावों ने सहायता प्रदान की, तथा जो सहयोग दिया उसके लिए हम उनके अत्यन्त ही कृतज्ञ हैं, उनमें उन महानुभावों को धन्यवाद दिये बिगैर नहीं रह सकते।

हिन्दी साहित्य की भावी मार्ग दिशा

(ले० श्रीकान्ता टाली)

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। समाज से अलग रह कर वह जीवित नहीं रह सकता। ऐसी अवस्था में समाज में जो भी प्रतिक्रिया होंगी उसका असर उस पर पडे बिना रह नहीं सकता। यही कारण है कि साहित्य प्रत्येक काल में हमारे जीवन को अनुप्राणित करता आ रहा है, क्योंकि साहित्य के लिये प्रगति और प्रतिक्रिया नई वस्तु नहीं है। साहित्य बराबर हमारे जीवन का सहचर रहा है। तभी तो कहा जाता है कि "साहित्य और समाज का घनिष्ट सम्बन्ध है।" 'साहित्य समाज की अनुभूति है' साहित्य समाज का द्रष्टा, एवं सृष्टा है तथा साहित्य समाज का दर्पण है।

समय २ पर मानव समाज में जो उत्थान एवं पतन हुए हैं उनका सम्बन्ध भी हमें साहित्य के साथ नाना रूपों में मिलता है।

जब तक समाज में जो परिवर्तन एवं विवेर्तन होते रहे हैं उनके मूल सूत्र का संधान हमें उस समाज की तत्कालीन आर्थिक परिस्थिति तथा उसकी धनोत्पादक प्रणाली में मिलता है। काल के अनन्त प्रवाह में युग के बाद युग बीतते जा रहे हैं, उनके साथ समाज का रूप भी बदलता रहा है। इसकी ठीक २ प्रक्रिया समझने के लिये हमें इतिहास के पन्ने जरूर टटोलने पड़ेंगे। साहित्य का सम्बन्ध भूत या भविष्य दोनों से होता है कवि या लेखक तो बीच की शृंखला की भाँति होता है।

ब्रिटिश साम्राज्य काल में पूँजीवाद ने आर्थिक विकास तो खूब किया किन्तु जनता का मानसिक विकास वह नहीं कर सका, वह अपने ऐश्वर्य और विलास

में ही लगा। इस युग के साहित्यकार कोरी कल्पना की उड़ान में तो उड़ सके किन्तु जनता के साथ उसका कोई सामंजस्य नहीं हो सका। क्योंकि समय की माँग ही कुछ ऐसी थी। इसलिये कहा जाता है, छायावाद तथा रहस्यवाद के साहित्यकार अपने साहित्य को वाणी के स्वर और लय का सामंजस्य दे सके किन्तु साहित्य को जनता का सामंजस्य न दे सके। आखिर कोरी कल्पना में मनुष्य कब तक उड़ सकता है ? जब कि वह चेतना शील प्राणी है।

किन्तु धीरे २ इस बदलते हुए युग की विचारधारा के साथ स्वयं छायावादी कवियों ने अपना दृष्टि कोण बदलने का तय किया जिसके उदाहरण–पन्त निराला, महादेवी आदि हैं। महादेवी ने अपनी बात में स्पष्ट लिखा है "आज ढ़ाई करोड़ दरिद्र किसान और खेतो में काम करने वाले श्रमिको का वर्ग है भिक्षुक," आजीविका है भिक्षाटन, विनोद है व्याधि, लक्ष्य है मृत्यु। अपने उदर की पूर्ति करने में भी असमर्थ यह धरती के पुत्र जलने के लिये दौड़ जाने वाले पतंगों के समान नगरों की ओर दौड़ पड़े। यहीं से मानों उनकी श्मशान यात्रा प्रारम्भ हो जाती है। अब इन ग्रामीणो के हृदय मे धरती से मिली हुई स्वर्ण राशि का उल्लास था, आँखो में आत्म विश्वास के चित्र थे, पैरों में कर्तव्य की दृढ़ता थी और हाथों में वरदान का बल था, तब भी नगरो ने उन्हें कभी हाथ भर छाया नहीं दी। फिर आज तो अट्टालिकाओं ने इन्हे डगमगाते पैरों, काँपते हाथों, सभीत आँखों और टूटे हृदयों के साथ उन भिक्षुकों की पंक्ति में बैठा देखा जो विकलांगता का प्रदर्शन कर के ही जीविका प्राप्त करते हुए फुटपाथ के रंगमन्च पर ही जन्म मृत्यु का अभिनय करते हैं।

'आज के विराट मानव की व्यथा का समुद्र आज के लेखक को, जीवन का कोई महान तथ्य, कोई अमूल्य सत्य न दे सकेगा, ऐसा विश्वास कठिन है। इस दुर्भिक्ष की ज्वालाएँ स्पर्श करके हमारे कलाकारों, लेखको की तूलि यदि स्वर्ण न बन सकी तो उसे राख हो जाना पड़ेगा। किन्तु ऐसी कल्पना करना भी सच्चे कलाकार का अपमान करना है। यदि वह आधुनिक युगीन हिंसा की ज्वार में स्थिर रह सके। आज भी मेदवृद्धि का बादल उसकी चेतना को ढक न सके और वर्तमान सामाजिक विकृत तथा सांप्रदायिक संकीर्णता की धूली उसकी दृष्टि को धुँधला न कर सके तो वह कल्याण पथ का पथिक न भ्रांत होगा न विचलित'।

महादेवी के ये शब्द हमें कितनी प्रेरणा देते हैं।

इन्हीं सब क्रियाओं को लेकर आज के युग मे प्रगतिवाद का जन्म हुआ। आधुनिक युग का प्रगतिशील लेखक दिखलाता है कि जिसे हम नीति और धर्म

कहते हैं उसके नाम पर आज समाज में बराबर दुष्कर्म हो रहे हैं, उनका मन उसमे ऊब रहा है। आज का साहित्यकार नायक नायिकाओं के वर्णन की जगह स्वत व्यक्ति उसके भावों और विचारों को प्रतिष्ठित करता है। निष्प्राण प्रतीकों के बदले सजीव भाव-व्यजना द्वारा साहित्य के जीवन को निकट लाना चाहता है, किन्तु मनुष्य की प्रकृति शुरू से ही सौन्दर्यमयी और रागात्मक रही है. इसलिये वह स्वाधीनता आन्दोलन में जूझता हुआ भी सौंदर्य प्रियता को नहीं भूला सका और इसीलिये आज भी साहित्य में यथार्थ को प्रमुखता होते हुए भी कलात्मकता नहीं भुलाई जा सकी।

आज के इस समाजवादी युग में-युद्ध के पूर्व साहित्य की पृष्ठ भूमि में जीवन की जो सरलता, मधुरता एवं स्निग्धता देखी जाती थी वह अब नहीं रह गई। जीवन के सूत्र भिन्न भिन्न हो गये। आज पूँजीवाद समाज के शरीर में कीटाणु बनकर उसका क्षय कर रहे हैं, यही समाज के अन्तर्जगत की स्थिति है और उसी का निराकरण यह साहित्य में चाहता है।

प्रगति शील साहित्य में हम व्यक्ति के ऊपर समाज शक्ति के विचार हीन, उत्पीड़न एवं मगल हीन नीति के विरुद्ध मानव मन के विद्रोह का सुर पाते हैं। आज राष्ट्र एवं समाज में सर्वत्र ही अशांति असंतोष, मृत्यु एवं विध्वंस की ताण्डव लीला चल रही है। आधुनिक साहित्यकार चाहता है कि जो कठोर सत्य का स्पर्श नहीं कर सकता। जो युक्ति तर्क की अलौकिक रासमीले तिल मिला उठता है उसका ध्वंस होजाय। यह समस्त मानव मन की अनुभूतियों को लेकर चलता है। तभी तो आज का प्रगति शील साहित्य मनुष्य को मनुष्य बनाना दिखाएगा। उसके जीवन को आनन्द और माधुर्य के बीच उसे प्रतिष्ठित करेगा, उसके जीवन में साहस, शौर्य और दीप्ति भरेगा।

आज हमें सब से बड़ी प्रसन्नता इस बात की है कि जो साहित्यकार समाज की अनुभूतियों से दूर खड़े रह कर कल्याण लोक में विचरण करते थे वे अब समाज की पृष्ठ भूमि में आ खड़े हैं। यह उसके लिये सम्भव भी था क्योंकि किसी भी युग का साहित्य कार उस युग का प्रतीक होते हुए भी भविष्य का पथ प्रदर्शक भी होता है। जैसे तुलसीदास ने अपने 'रामचरित्र मानस' द्वारा तुलसी।

आज कवि या लेखक ने अपनी रचनाओं में उन सभी विषयों का समावेश किया है, जिसकी समाज को जरूरत हो।

आज प्रगति वाद का ही दूसरा नाम उपयोगितावाद है। इस युग की सांस्कृतिक परिणति प्रगतिशील है और ऐतिहासिक परिणति उन्नति शील। इसी

युग की दो प्रमुख धाराएँ हैं:-गाँधीवाद और समाजवाद । गाँधीवाद धर्म नीति को प्रधानता देता है और समाजवाद अर्थ नीति। इन दोनों का अन्तर धर्म और विज्ञान का अन्तर है, इसके उदाहरण है-पंत और यशपाल । काव्य साहित्य में पंत और कथा साहित्य में यशपाल प्रगतिवाद के प्रतिनिधि कलाकार हैं ।

पंत समन्वय की ओर हैं, यशपाल विज्ञान की ओर; पंत समाजवादी है यशपाल मार्क्सवादी । यशपाल ने अपने "मनुष्य के रूप में" यर्थाथ को बड़ी खूबी से चित्रण किया है तभी तो पंत और यशपाल वर्तमान के कलाकार होते हुए भी भावी के मार्ग द्रष्टा कहे जाते हैं।

शरद और प्रेमचन्द ने हमें पृथक दृष्टि दी शरद ने तो अपने "शेष-प्रश्न" द्वारा समाज को यह बताया कि आज के युग में क्रांति की आवश्यकता है। इधर प्रेमचन्दजी के साहित्य का संदेश है कि जीवन की घटनाओं को प्रत्येक मनुष्य गंभीर अन्तर्दृष्टि से लेकर देखे। प्रेमचन्द के गोदान का 'होरी' एक दरिद्र किसान के रूप में भारतीय कृषकवर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। प्रेमचन्दजी के अन्य उपन्यास भी इसी तरह के चित्र प्रस्तुत करते हैं।

इतना होते हुए भी आज का युग शरद और प्रेमचन्द के युग से बहुत आगे बढ़ गया है, क्यों कि हमारे समाज की व्यवस्था जो आज है वह उस वक्त नहीं थी उस समय भारत गुलाम था। उसे गुलामी की जंजीरों से छुड़ाने के लिये जनता को एक संदेश देना था, ऐसी अवस्था में शरद जी ने 'पथेरदावी' जैसे उपन्यासों की रचना कर देश भक्ति और बुद्धिमत्ता का परिचय दिया था । दूसरी तरफ गरीब जनता का दुख दर्द प्रदर्शन करने लिये प्रेमचन्दजी को आगे उठना पड़ा था । इसके अलावा हमारे साहित्य जगत में बहुत से साहित्य कार हैं जिनकी लगभग समान ही मार्ग दिशा है-श्री नवीन, अंचल, जेनेन्द्र, सुदर्शन, इलाचन्द्र जोशी, हजारीप्रसाद द्विवेदी, शांतिप्रसाद द्विवेदी आदि के नाम उल्लेखनीय है। किन्तु विस्तार भय से सब के सम्बन्ध में कहना संभव नहीं है ।

यह सब होते हुए भी आज समाज में कमी हैं, जबकि आज का प्रत्येक प्राणी स्वतन्त्र होने का दावा करता है। ऐसी अवस्था में उसे पूर्ण रूप से अपने युग के साथ चलना होगा। अपवाद स्वरूप बहुत से कवि या लेखक ऐसे भी दिखाई देते हैं जो केवल भावुक बन कर आज भी आकाश पाताल एक करने की कोरी कल्पना करते हैं। किन्तु जहाँ कार्य रूप में परिणित करना होता है दुम दबा कर भाग जाते हैं, इस प्रकार शत २ धारा में बिखरे हुए अनंत पुष्पों की भांति काव्य कला के प्रेमी अपनी कला में काव्यलहरी जोकि ५० ई०

के वादों के चक्कर में पली हुई सामाजिक भावनाओं से रहित होती है, समाज के सामने रखते हैं ये कविताएँ उनकी आत्म तुष्टी ही कर सकती हैं।

हमारे नाटककार की भी यही दशा है, भारतेन्दु काल में रचित नाटक अच्छे ढग से रग मंच पर खेले जाते थे। किन्तु आज के नाटक केवल पढ़ने की ही चीज रह गई,क्यों कि "चलचित्र" उनके स्थान पर सदा खेते बढते हुए नाटकागण मे प्रवेश पा गये हैं।

किन्तु नाटक को केवल पढना ही सब कुछ नहीं है, जबकि नाटक का प्रभाव पढने की अपेक्षा देखने से ज्यादा होता है। किन्तु इस मार्ग में भी हिन्दी साहित्य में नये मोड़ आरहे हैं। अभिनय की दृष्टि से उपयोग तथा भावुकता के स्थान पर बुद्धिवादी नाटकों का प्रचार आज बढ़ता जा रहा है।

कथा साहित्य का जहाँ तक सम्बन्ध है, इधर थोड़े समय से हमारी कहानियाँ बिल्कुल 'सेक्स' पर चलती है। 'सेक्स' कोई बुरी वस्तु नहीं है किन्तु यही तो सब-कुछ साहित्य नहीं है चूँकि ऐसी कहानियों से समाज को कोई प्रेरणा नहीं मिलती भला 'शहनाई' और 'खिड़की' के मूल कथाकारों से क्या आशा की जा सकती है?

जहाँ तक उपन्यास का सम्बन्ध है समयाभाव और कलेवर में बड़े होने के नाते लोग उसमें अब कम ही रुचि लेते हैं। यदि उपन्यास सजीव एवं सूक्ष्म कलेवर लेकर आये तो शायद ज्यादा लाभप्रद तथा लोकप्रिय हो सके।

आज का निबन्धकार अवश्य कुछ स्वस्थ है, किन्तु साथ ही कुछ सुप्त भी। इस क्षेत्र में हमें तीव्रता से बहुमुखी प्रगति करनी है।

आज का कविता साहित्य भी निरन्तर छायावाद और रहस्यवाद के रहस्यमय पर्दे को चीरता हुआ आगे बढ़ता चला आ रहा है। क्योंकि कविता, संगीतमय होने से मनुष्य के हृदय को जल्दी ही छू लेती है। अत हमें इस प्रकार के साहित्य सृजन करने के पूर्व बहुत सोच समझ कर अपनी लेखनी उठानी होगी तांकि आपका साहित्य निर्माण इस कोटिका बन सके कि वह केवल बुद्धिजीवियों की ही वस्तु न रह कर आम जनता के लिये उपयोगी हो सके।

अन्त मे कहना न होगा कि आज का हमारा साहित्य कुछ त्रुटियाँ होते हुए भी लक्ष्य भ्रष्ट नहीं है। उसका मार्ग निर्दिष्ट हो चुका है।

हिन्दी साहित्य की भावी मार्ग दिशा

(ले०—श्री कोमल कोठारी)

भावी साहित्य की रूप रेखा का निर्माण करना, और उसकी गति को समझने का प्रयास करना— भविष्य के साहित्य का विधान बनाना नहीं है, न हीं साहित्य की पंच वर्षीय योजना ही है। साहित्य का प्रत्येक विद्यार्थी अपने अध्ययन, मनः स्थिति और सामाजिक तत्वों पर आधारित विशेष दृष्टिकोण ही उपस्थित कर सकता है।

जहाँ तक प्राचीन साहित्य का सम्बन्ध है उसे विषय प्रधान (Objective) दृष्टिकोण से समझने पर भी अनेक मतों और विचारों में संघर्ष और विरोध होता है। वस्तु प्रत्यक्ष होने पर भी यह मत विवाद विचारों को लेकर होता है। वर्तमान को समझने के प्रयास से व्यक्तिगत वैमनस्य और स्नेह; और सामाजिक विचारों का सामान्य या विरोधी होने से आज के साहित्य में मतभेद अधिक संभव है। किन्तु भविष्य का साहित्य तो रचा जाने वाला है— वह किस प्रकार का हो, क्यों हो और कौन से तर्कों द्वारा व्यक्ति विशेष साहित्य की वह विशेष प्रतिक्रिया चाहता है ? इन प्रश्नों का उत्तर साहित्यिक अनुभवों द्वारा, जातीय साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन तथा आज की साहित्यिक सम्भावनाओं द्वारा निश्चित किया जा सकता है।

आज का हिन्दी साहित्य संक्रमणकाल की स्थिति से गुजर रहा है। प्राचीन साहित्यिक मूल्य और तत्कालीन पूर्ण साहित्यिक रचनाओं की पद्धति का आज के मानव विकास मे अधिक स्थान रहा और उस रिक्त स्थान पर कोई नवीन विचार धारा अथवा सबल चेतना पूर्ण व्यक्तित्व का विकास नहीं हो सका।

हिन्दी साहित्य विश्रामसा करता प्रतीत होता है। वह दीपक जो भारतेन्दु युग ने सजोया था शनैः २ भाषा व व्याकरण के कठोर नियमों से प्रतिबन्धित होता हुआ। द्विवेदी काल में अधिक उपदेश प्रधान होता हुआ— प्रसाद, पन्त की कविता में रीति भाव धारा का मन धरातल लेकर उपस्थित हुआ। मनोविज्ञान के विकास ने नखशिख की सीमाओं से साहित्य बाहर ला पटका। कवियों की अनुभूति और कल्पना के सूक्ष्म से सूक्ष्मतर हृदय तन्त्री के सुनने की आतुरता आई। मनोविज्ञान प्रबल विचारोत्तेजक भावना ने गद्य और पद्य दोनों को प्रभावित किया।

तत्कालीन साहित्य में प्रधानता दो साहित्यिक समूह बन गये हैं। एक समूह मनोविज्ञान के विश्लेषण को अति तक ले गया है तथा दूसरा समूह साहित्य की अर्थभित्ति के महत्व को दूसरी ओर ले गया। वास्तव में आर्थिक आधार व मनोविज्ञान का सम्बन्ध अन्योन्याश्रय और पूरक है। किन्तु दोनों के आधारभूत बौद्धिक तर्कों में विरोध ही नहीं एक दूसरे के विपरीत लगने लगते हैं। किन्तु प्रमुखता के कारण इन दोनों का भविष्य ही आज हिन्दी साहित्य की भावी मार्ग दिशा की ओर संकेत कर सकता है।

इसी बीच में एक और साहित्यकारों का समूह है। यह साहित्यकार प्राचीन और नवीन की खोज में लगे रहते हैं। आदर्शात्मक रचनाओं तथा कला के स्वरूप में सौन्दर्यात्मक पूर्णता लाने का श्रेय इस समूह को है। अपने युग के कवि मैथोलीशरण गुप्त, उदयशंकर भट्ट गुलाबराय आदि प्राचीन के असीम मोह से नवीन के मेघाच्छन्न नभ में पर फैलाने में असमर्थ हैं। यह समूह साहित्य की भविष्य की गतिविधी से उत्साहित न होकर अधिक उदासीन ही रहता है। गतिरोध की चिन्ता के स्वर भी इन्हीं के हैं। किन्तु युग परिवर्तन हो चुका— युग के मानसिक तत्वों में परिवर्तन आ चुका—साहित्यि शैलियों में आमूल-चूल परिवर्तन आ चुका—अब पीछे लौटने की प्रवृत्ति में शक्ति नहीं है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी वृद्ध होते हुए भी और प्राचीन के आग्रह होने पर भी मैंने इस समूह में नहीं लिया-क्योंकि उनकी दृष्टि जहाँ अतीत के उद्रास की ओर है वहां भविष्य की ओर निरंतर संकेत करती है। उनका प्रेरणा श्रोत परम्परा से आविर्भूत होकर भविष्य के चित्र में अनुभव की प्रौढ़ता, ज्ञान की सफलता और विषय के आवेग को सतत् प्रगतिशील बनाता है। गतिरोध की चिन्ता को उनका उत्तर है प्राचीन नवीन को नहीं समझ पाया। आज के साहित्य में गतिरोध नहीं, साहित्य की गति ही बदल गई है। (कल्पलता) में अपने 'समालोचक की डाक' निबन्ध में युवक की प्रेम भावना को पितृतुल्य समझते हुए—प्रेम गाथा से झुँझलाकर लिखते हैं —

"केवल प्रेम की बातों का कोई कहां तक विवेचन करे-प्रत्येक व्यक्ति अपनी स्थिति के अनुसार प्रेम के दांव पेच बदलता रहता है। समालोचक विश्लेषण कर के कहां तक सिर खपायें, वह अब से इस उत्तरदायित्वपूर्ण पद से इस्तीफा दे देगा।"

प्रेम के दांव पेंच में आचार्यजी को स्नेहमयी झुँझलाहट अवश्य है। किंतु वे चिन्तित नहीं है-यह अवस्था ही ऐसी है-मानव प्रगति में विश्वास है तभी तो लिखते हैं—

"प्रेम का बीहड़! ठीक है, प्रेम के ये काव्य अनन्त शक्ति के प्रतीक हैं जिसे मानव अपनी युवावस्था में संचित कर रहा है। प्रौढ़ होते ही जवानी का यह खेल काम में, कल्पना बुद्धि में; कला उद्योग में, आशावाद समन्वयवाद में, साहस दूरदर्शिता में उदासता मर्यादा में बदल जायेंगे-यह निश्चित है, ऐसा ही होता है-जहां ऐसा नहीं होता वहीं सोचने की बात है।"

इसी दृष्टिकोण से आचार्यजी इस समूह से पृथक हो जाते हैं। आज के आर्थिक-संकट-ग्रस्त समाज में चारों ओर फैली हुई अराजकता का साम्राज्य साहित्य-संसार में भी अपना प्रभाव दिखा रहा है। सेठ के हथकंडे साहित्य में भी अपनाये जाने लगे हैं। यथार्थ चित्रण के नाम पर सत्यता को तिलांजली दे दी प्रतीत होती है। भगवती चरण वर्मा जिनका हिन्दी साहित्य की गति-विधि में विशिष्ट स्थान है वे भी अपनी ईमानदारी की न्यूनता में कोरे रह गये। 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' से अपने असफल उपन्यास में परिस्थिति व चरित्र के विकास को गह उड़े नहीं दे सके। ऐसा प्रतीत होता है कि उनका यह निश्चय कि राजनीति का मार्ग अन्त में निश्चित रूप से टेढ़ा मेढ़ा प्रमाणित करना है-ठीक रेखा गणित की थ्योरम की याद दिलाता है जहां प्रमाण के पश्चात् Q. E. D. लगा दिया जाता है। श्री गुरुदत्त के बृहत्काय उपन्यास भी राजनैतिक दलों से चरित्र चुनकर अपनी मनगढ़न्ती का पुट देकर साहित्य के सत्य की मांग को ठुकरा रहें हैं। उनके 'उन्मुक्त प्रेम' में समाजवादी प्रेम भावना की खिल्ली उड़ाने की मंशा ने अनोखा रंग दे दिया है। प्रेम-भावना का सम्बन्ध समाजवाद से नहीं है-किन्तु तीन सौ चारसौ पृष्ठ में बराबर झूठ को दोहरा कर सत्य मनवाने का यह कार्य गोयबल्स के प्रयत्न से कम नहीं है। यह उपन्यास व्यापारिक प्रयास है। दूसरे प्रकार के उपन्यासकार जो कलम के धनी है-जिनके पास अभिव्यंजना की अपार शक्ति किन्तु सामाजिक असंगतियों से भयभीत होकर आज के मानसिक दुर्गुणों की खोज बीन में लगे रहते हैं। अज्ञेय व इलाचन्द्र जोशी के ये Psycho Pathetic चरित्र मनुष्य की दुर्बलता के प्रतिक है उसको सबल, उन्नत उत्कर्ष में प्रेरणा देने

वाले नहीं। तीसरा स्वर कथा-साहित्य में अर्थ को महत्व देने वालों का है। यशपाल, रांगेयराघव, भगवतरण आदि प्रमुख हैं। उन्हें भविष्य के समाज के प्रति प्रगाढ़ स्नेह है वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाने को तत्पर ज्ञात होते हैं। उन्होंने कोई विशेष सफल अथवा शक्ति शाली चरित्र का निर्माण नहीं किया, ये ही कथाकार आज के जीवन का सच्चा व गहराई से चित्रण करने में प्रयत्नशील है। 'मनुष्य के रूप' के यशपाल हतप्रभ चरित्र ही निर्मित कर सके। मानस विश्लेषण को महत्व देकर दुर्बल पक्ष उभर आया है।

प्रेमचन्दजी के मौलिक उपन्यासों के पश्चात सही माने में तो हिन्दी उपन्यास अभी शून्य ही है। उनके होरी से चरित्र का सहानुभूति पूर्ण चित्र अभी नहीं आये। 'होरी' के मनोविज्ञान की खोज पीन हुई— होरी के मनोविज्ञान में बद्धमूल आर्थिक कारणों पर भी विवाद हुआ पर होरी एक और वृद्द-मानव बनकर—जीवन का सन्देश लेकर—संघर्षो के इतिहासों में निर्मित नायक बनकर नहीं आया।

शक्ति, कर्त्तव्य, स्नेह, मर्यादा, आशा, जीवन की प्यास, संघर्ष की विजय कामना, इतिहास पर सही विषय प्रधान दृष्टि, सच्चाई और नव-निर्माण की भावना से परिपूर्ण प्रेरणामय कथा में समाहित है। भौतिक आधार पर निर्मित विचार-भौतिकता को स्वयं बदल देते हैं। और पुन विचारों में भी परिवर्तन आता है।

वर्तमान हिन्दी कविता की स्थिति भी सन्तोष जनक नहीं है। पन्तजी की कविता बौद्धिकता से इतनी बोझिल है कि स्थान स्थान पर दर्शन का रूपान्तर मात्र हो गई है। विचारों की अत्यधिक प्रधानता के कारण कविता का सम्बन्ध हृदय की कोमल-तर भावनाओं से पृथक पड़ जाता है। कुछ प्रतीक वादी कवितायें अज्ञेयजी कर रहे हैं जो सामान्य रूप से जटिल है।

प्रान्तीय भाषाओं की रचनाओं में अधिक शक्ति आई है जिसको हिन्दी में समाहित करना अभी शेष है। हिन्दी यदि प्रान्तीय साहित्य के कल्पना कोष और भाव व्यंजना के साधन-कोष से लाभ उठाने का प्रयत्न करे तो भविष्य की हिन्दी कविता का स्वरूप शक्तिशाली होगा। प्रगतिशील लेखकों की रचनाओं में न तो कला सौष्ठव ही आ पाया है और न हथियार का वह पैनापन ही आया है जो संघर्ष तीव्र कर सके पिछले वर्षों में कवियों की नयी पीढ़ी ने कविता से लय को बिल्कुल निकाल अतिशय गद्यात्मक स्वरूप दे दिया था—अब यह प्रवृत्ति हट रही है छन्द की ओर से अब उदासीनता दूर हो रही है। लयमयता के कविता

के स्वभाविक गुण को स्वीकार किया गया है। यह हिन्दी कविता का शुभ भावी लक्षण है।

हिन्दी की गहरी कमी यह अनुभव होती है कि आलोचना के क्षेत्र में तो अबाध प्रगति हुई है किन्तु रचनात्मक साहित्य पिछड़ा हुआ रहा है। संसार की आलोचनाओं की श्रेष्ठता से हिन्दी पीछे नहीं रह सकती किन्तु रचनात्मक साहित्य से वह पीछे रह जावेगी।

हिन्दी आलोचना के स्वर गम्भीर, चेतन और सधे हुए हैं। इसका श्रेय श्री रामचन्द्रजी शुक्ल को है जिन्होंने आधुनिक आलोचना का आरम्भ शुभ मूल्यों द्वारा किया आलोचना के क्षेत्र में भी आज परम्परावादी, फ्रायडवादी और मार्क्सवादी आलोचक हैं। इन आलोचनाओं का झुकाव मत-पुष्टि की ओर अधिक है-रचना साहित्य को रचनात्मक सुझावों और गुण-दोष विवेचना पर कम। सैद्धान्तिक भिड़न्त अधिक है। परम्परावादी रस सिद्धान्त के संकीर्ण दायरे से निपटना चाहते हैं-कहीं कहीं विवेकशील बुद्धि अथवा व्यापारिक बुद्धि की कुशलता से पश्चिमी मतों के उद्धरणों के साथ पूर्वीय साहित्यिक मानों का असफल समन्वय कराने का प्रयास किया जाता है। मत के अनुसार रचनात्मक साहित्य को समझने के कारण रचना की कतरब्यौंत करनी पड़ती है। गुलाबराय ऐसे ही लेखक हैं। फ्रायडियन आलोचक मस्तिष्क के प्रत्येक ज्ञान-तंतु पर माइक्रोस्कोप लगा कर चेतन, अर्धचेतन और अवचेतन को समझने में उलझ जाते हैं। यह निष्कर्ष हीन होने से निष्क्रिय आलोचना है। मार्क्सवादी आलोचना में आक्रमण -प्रवृति अधिक होने के कारण रचना में श्रेष्ठता न्यून हो जाती है। श्री रामविलास शर्मा का रांगेयराघव पर ऐसा ही खण्डानात्मक और आक्रमणकारी निबन्ध 'हँस' में आया था। यह हर्ष की बात है कि हिन्दी के योग्य मार्क्सवादी आलोचकों ने इस प्रवृति को सुधारने के प्रयत्न आरम्भ कर दिये हैं।

हिन्दी साहित्य की आलोचना में एक निकृष्ट तम प्रवृत्ति घरकर रही है-वह है परीक्षा पास करने की प्रवृत्ति। यह दुःख की बात है कि 'साहित्य सन्देश' हिन्दी आलोचना का आरम्भ से ही प्रमुख पत्र रहा है किन्तु उसकी मौलिक आलोचनाओं और गम्भीर लेखों के छापने की प्रवृत्ति अब नहीं रही। सस्ते परीक्षांक निकालकर वह आलोचना में गन्दगी और नकली का बेहूदा उदाहरण पेश कर रहा है। इससे भी अधिक दु:ख गुलाबराय जैसे प्रतिभा सम्पन्न विद्वान भी जब विद्यार्थियों के Short-cuts की खोज करने निकल जाते हैं-तब होता है। इसका दूसरा उदाहरण श्री डॉक्टर साहब रामरतन भटनागर है। और उनके तीन चार वर्षों के पचीसों

'एक अध्ययन'। यह अध्ययन के सस्ते नोट्स की प्रवृत्ति का अन्य सुन्दर नामकरण मात्र है। कम अध्ययन और पैसे कमाने की इस निकृष्ट प्रवृत्ति को जितना कम हो सके निरुत्साह किया जाना चाहिये।

हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में अभी ऐसा युग चल रहा है जब उसका निश्चित स्वरूप तो तय नहीं हुआ है किन्तु प्रबल वेग से साहित्य उस ओर अग्रसर हो रहा है। मतवादों के इन बीहड़ वर्तों के मध्य से जो पुष्प विकसित होगा वही साहित्य की सुन्दरतम कृति भी हो सकेगा। टेगौर की उक्ति स्मरण हो आती है-लुहार की दुकान पर लोहे के अस्त-व्यस्त ढेर को देख कर भयभीत होने की आवश्यकता नहीं-इसी लुहार की दूकान मे वीणा के तारों का निर्माण होगा।

साहित्य का स्वामी मनुष्य है-साहित्य मनुष्य की पाशविक प्रवृत्तियों को अपने सूक्ष्म और कोमल-तम हाथों से रोकता है। अपनी गोद में मनुष्य का सर रख कर, उसको लोरी सुनाकर, मुग्ध कर, आह्लादित कर, जीवन में नवीन प्रेरणा देकर, जीवन की कटुता छीन कर केवल उसे मधुमय ही रहने देना चाहता है। कुरूपता, हिंसा, दुष्टता, शत्रुता, नाश और आत्महनन की प्रवृतियों को साहित्य सुन्दरता, अहिंसा, दयालुता, मित्रता, निर्माण और आत्म उन्नयन में लगा देना चाहता है। यही साहित्य का साध्य है-साधन है। मनुष्य ही सर्वोपरि है। चण्डीदास की यह उक्ति मानो साहित्य की वाणी है।

शोबार ऊपर मानुष भाई।
बोमार ऊपर कोई नाई॥

हमारे साहित्य की भावी मार्ग-दिशा

(श्री कन्हैयालाल ओझा एम० ए० सा० रत्न)

किसी भी देश का साहित्य उसके जीवन का प्रतिफलक होता है। अतः साहित्य की गतिविधि के अनुशोधक को अनिवार्यतः तत्कालीन-समाज की चिन्ता-धाराओं का अनुसन्धान करना पड़ता है। और इन्हीं चिन्ताधाराओं की उपत्यका में चलकर वह साहित्य की उपज का उसके विकास का और उसके भविष्य का लेखा-जोखा कर सकता है। आज के जीवन की संकुल अवस्था के अनुरूप यह आशा करना कि किसी समाज का साहित्य केवल उसी समाज की मान्यताओं पर अवलम्बित होकर विकसित हो सकता है, नितान्त भ्रमास्पद है। देश और समाज की दीवारें आज संकुचित नहीं रह गई, काल की अनतिक्रम्य दूरी को भी बहुत कुछ अतिक्रमण कर लिया गया है। अतः दूसरे विदेशी या विभाषीय समाजो और इनके द्वारा उनके साहित्यो के प्रभाव क्षेपण से हिन्दी-साहित्य या कोई भी दूसरा साहित्य अछूता नहीं रह सकता। संक्षेप में, यह समझे बिना कि अद्ययुगीन साहित्य की सामाजिक एवम् सांस्कृतिक पृष्ठभूमि विश्व साहित्य की ऐसी ही पृष्ठभूमि से प्रथक करके कभी नहीं देखी जा सकती, हम हमारे विषय के प्रतिपादन मे किसी भी अंश तक आगे नहीं बढ़ सकते।

युद्धोत्तर काल में मनुष्य के मन में एक विराट क्रान्ति ने करवट बदली है यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है। वस्तु और विषय के मूल्यों में अभूत पूर्व परिवर्तन हुआ है। युद्ध शांति, विनाश और निर्माण, की अतियों के बीच जीवन का झूला लम्बे लम्बे पैंग मार रहा है। युद्ध की विभीषिकाओं से संत्रस्त मानवता शान्ति की मरीचिका में भटक रही है और राजनीति की भूल-भुलैयाँ में चक्कर

काटता हुआ जन जीवन अभी तक ठीक मार्ग तक पहुंचा दिखाई नहीं देता।

स्वाभाविक है कि उसकी विचार-सरणियाँ भी उतनी ही बिखरी हुई निर्ग्रस्त और प्रयोगात्मक हो, उसके सामाजिक जीवन के मानदंड चञ्चल, उद्वेगशील, और अनियंत्रित, उसकी सांस्कृतिक पीठिका में परंपरा की पकड़ शिथिल, रूढि की आसक्ति दुर्बल और प्राचीनता का मोह बोझ-सा गिना जाए, वह दौड़े, पर लड़खड़ाते पैरों, वह हँसे किन्तु रोरुद्यमान नेत्रों से, वह जिये, किन्तु मृत्यु की भीषण आशंका का भार लिए। और इन सबकी समष्टि को लेकर वह मनुष्य कहलाए आनन्द और अमृत की सन्तान।

सच तो, यह भूमि है जिसमें साहित्य का बीज आकार धारण करने की चेष्टा करता है, और यहाँ से पोषण पाकर वह विकास पाता है आँधी के थपेड़ों से संघर्ष करने के लिए। हमारे साहित्य की विरासत कुछ और भी विशिष्ट रही है। 'हमारे साहित्य' से मेरा तात्पर्य वस्तुतः हिन्दी-भाषा का साहित्य है। अब से कुछ वर्ष पूर्व तक वह केवल पराधीन जाति का साहित्य था। उसके शैशव के कुछ वर्षों को छोड़ दिया जाए तो उसमें सचमुच ही विजित का उत्पीड़न, निराश्रित की उदासीनता, निरुपाय का पलायन, दुर्बल की तितिक्षा, शोषित की जड़ता और अगति की स्थिरता मात्र मिलेगी। मैं जानता हूँ, मेरे इस कथन को विज्ञ एकान्त मन से स्वीकार न करेंगे। मैं मानता हूँ कि इस साहित्य ने आधिभौतिक सीमा के परे, स्थूल जीवन की भौतिकतामय प्रस्तर भूमि के नीचे सजल करुणा की शीतलतामई आध्यात्मिक छाया भी हमें दी, भक्ति और प्रेम के प्रगाढ़ स्वरों ने हमारे स्थूल जीवन के क्षतों पर मरहम प्रलिप्त कर जीवन की रंगीनियों की और अपवर्ग की हमारी दृष्टि को आरोपित किया, पर स्पष्ट ही मानों संघर्ष की लम्बी राह चल कर थके हुए हम अनायास ही किसी सघन शीतल सजल अमराई में बैठ कर वसन्त के कोकिल का विश्रब्ध-स्वर सुन रहे थे। आगे चलने का हममें उत्साह नहीं रह गया था, चेष्टा नहीं रह गई थी। सोकर हम स्वप्न देखना चाहते थे। हमने शृंगार के स्वप्न देखे। हिन्दी साहित्य का स्वप्न दर्शन किसी अतृप्त इच्छा का विकृत प्रदर्शन था, इसे कोई अस्वीकार न करेगा।

किन्तु रात्रि के बाद दिन का उदय होता ही है। अँगड़ाई लेकर जब यह जाति हड़बड़ा उठ बैठी, तब नई अनुभूति से, नई प्रेरणा से, नए उत्साह से साहित्य के स्पन्दन में जागरण का नन्निद्रस्वर प्राण भरने लगा, और एक दिन मस्त गगन के नीचे पैंतीस कोटि भारतवासी की सांस्कृतिक-पीठिका पर हमारे साहित्य की भारती का मुर्द्धाभिषेक हो गया। यह तो कल की बात है, जब कि

रहे जन की भाषा का गौरव होने पर भी राज्य की भाषा के अधिकार को प्राप्त करने के लिए कशमकश करना पड़ी है।

इस चौखट के भीतर हिन्दी साहित्य को देखे बिना उसके सर्वांगीण, प्रगति का उसकी सीमाओं का और उसकी शक्ति का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। युद्धोत्तर कालीन हिन्दी साहित्य की विभिन्न विचारधाराओं के मूल में भी जो प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं वे इस पृष्ठ भूमि को ध्यान में रखे बिना स्पष्ट नहीं हो सकतीं। इस प्रकार के विकास के लिए यही सब कुछ इस साहित्य की शक्ति है, और यही सब कुछ उसकी दुर्बलता भी। आज जिस तरह पश्चिमी पाठकों [illegible] के बल पर हिन्दी साहित्य को दोष दिया करते हैं कि उसमें पढ़ने लायक कुछ नहीं है। उसमें पढ़ने लायक कुछ हो या न हो, किन्तु यह बात अस्वीकार नहीं की जा सकती, कि जो कुछ है वह उसकी यथार्थ सही भावना का प्रतीक है।

उत्तरदायित्व के सिंहासन पर हिन्दी भाषा को अभी आए अभी ही कितना हुआ है। इतनी सदियों तक पराधीन देश और जाति की भाषा रह कर भी यह अपना अस्तित्व बनाए रख सकी, उसे साम्प्रदायिकता के सघन जंगल में अपना मार्ग बनाना पड़ा, राजनीति की उलझनपूर्ण ग्रंथियाँ उसे झुलसाती रहीं, किसी भाषा के लिए इससे अधिक बड़ी कठिनाई क्या हो कि वह शिक्षितों की भाषा नहीं थी, और कई प्रान्तों में आज तक नहीं गिनी जाती। अवश्य ही उसके सर्वांगीण विकास में ठेस लगने के कारण थे, और यदि वे कारण दूर हो गए हैं तो कोई कारण नहीं कि उसका भविष्य उज्ज्वल क्यों न हो, और यदि वे कारण विद्यमान हैं तो उसके भविष्य को उज्ज्वल करने के लिए उसका पथ हमें निष्कण्टक करना है।

प्रस्तुत प्रश्न के स्पष्ट ही दो पहलू हैं। एक तो किस मार्ग पर हमारा साहित्य जा रहा है, और वह हमें कहाँ तक पहुँचाएगा, तथा दूसरे, किस लक्ष्य की सिद्धि के लिए किस मार्ग पर उसे जाना चाहिए। इसी वस्तु को दूसरी तरह प्रगट करने के लिए हमें साहित्य के द्विधा-दायित्व पर दृष्टि आरोपित करनी पड़ेगी। कहा जा चुका है कि साहित्य समाज का प्रतिफलक होता है, यानी समाज की क्रियात्मक-प्रकृति का शाब्दिक-भाष्य। यही नहीं, बहुधा साहित्य को समाज का दर्पण तक कहा जाता है, जिसका यही तात्पर्य है कि वह समाज का सीधा-सादा सच्चा अपार्थिव-रूप-प्रतिबिम्ब है। यानी समाज की घटनाओं के द्वारा उसका रूप निर्माण होता है। इसमें दो मत नहीं हो सकते कि सचमुच ही साहित्य का बहुत कुछ अंश समाचार पत्रों के कालमों में अंकित सनसनी खेज घटनाओं का आकलन-मात्र होता है। किन्तु युग-द्रष्टा साहित्य समाज की घटनाओं

से प्रभावित होकर भी उसमें प्रवाहित नहीं होता। यह उससे केवल उत्सा हित होकर उस प्रवाह को संयत करने के लिए या उसे उचित-दिशा में मोड़ने के लिए, कई नहरें काट कर कहीं बाँध बाँध कर, उस शान्ति का अनुसंधान करता है जो समाज की कायापलट कर देती है। ऐसे साहित्य को हम युग प्रवर्तक साहित्य कहते हैं, और ऐसे साहित्यकार को युग-द्रष्टा साहित्यकार।

बिलकुल सोलह आने तो नहीं, किन्तु बहुत कुछ पहले प्रकार के साहित्य से उसका बाह्य आवरण शैली और तनदुरु टेकनीक अभिप्रेत है, तथा दूसरे प्रकार से उसकी अन्तरात्मा उसकी प्रकृति तथा प्रवृत्ति और उसकी चिन्तात्मक-अनुभूति। पहले प्रकार के साहित्य को हम सर्वानुभूतिपरक (Objective) साहित्य कहते हैं, और दूसरे प्रकार को स्वानुभूति परक (Subjective)।

इतनी लम्बी अवधि तक 'शिक्षितों' की भाषा न मानी जाने के कारण हिन्दी साहित्य में बहुतेरे अभाव रह जाना स्वाभाविक है, और स्वतन्त्र भारतवर्ष में जब कि उसे सिद्धान्ततः यह मान्यता मिल चुकी है, उसे अपना यह सर्वांगीण विस्तार न केवल लम्बाई चौड़ाई में किन्तु गहराई में भी, करना है, कि उसे प्रकृत्या शासकीय मान्यता मिल सके। ललित साहित्य से आगे की सारी भूमि इसे पार करना है। ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में, शास्त्रों के क्षेत्र में, आधुनिक युग के समस्त जीवन में हिन्दी-साहित्य का स्पन्दन अनुप्राणित होना आवश्यक है। यदि इस युग के जीवन की आवश्यकताओं को उसने पूरा न किया, और आने वाली क्षिप्रगति के कदम न मिलाए, तो यह स्पष्ट है कि राष्ट्र इस भाषा को पीछे छोड़ देगा, या यह भाषा राष्ट्र को पीछे धकेल देगी। हिन्दी के हामियों को, और हिन्दी की संस्थाओं को इस ओर ध्यान देने की बड़ी आवश्यकता है। वर्तमान परिस्थितियों में मैं चेतावनी देना चाहता हूँ कि इस दिशा में सरकार का मुँह देखने से कोई लाभ न होगा। पन्द्रह वर्ष की अवधि जो हिन्दी को दी गई है, संरक्षण की अवधि नहीं अपितु परीक्षण (Probation) की अवधि मानी जानी चाहिए। हिन्दी के किस हिमायती को दुःख न होगा कि हमारे श्रद्धास्पद अमित-शिक्षा सम्पन्न लोक नेता जब अँग्रेजी में भाषण देते हैं तो उसके शील-काव्य को व्याकरण की अन्तिम-सीमा तक शुद्ध करके 'राजा की भाषा' (Kings English) बोलने में एड़ी-चोटी एक कर देते हैं, किन्तु जब वे हिन्दी में बोलते हैं, तो मालूम देता है, मानों उन्हें तकलीफ हो रही है। मुर्गी को दाना डालते समय उन्हें बुलाने के लिए हम बहुधा उन्हीं के स्वर में गटर गूँ करते हैं, या घोड़े गाय आदि को पानी पिलाते समय मुँह से कुछ विचित्र प्रकार का स्वर करते हैं, जिसका कोई अर्थ नहीं होता केवल जिसको द्व्यर्थक आवाज मात्र होती है उसी प्रकार का यह प्रयत्न होता है।

दृष्टि से नहीं देखते। इस भाषा में वे साँस नहीं लेते; मालूम पड़ता है एक ऐसे विश्व के प्राणी हैं कि हमारे और उनके बीच केवल इस टट-पूँजी विकृत भाषा के अतिरिक्त साम्य का कोई माध्यम ही नहीं।

विद्यालयों में शिक्षा देने के लिए हिन्दी की पुस्तकों का अभाव है। अंग्रेजी में विषय को पढ़ कर कोई व्यक्ति हिन्दी में इतनी व्युत्पत्ति नहीं प्राप्त कर लेता कि भाषा का आवरण उसकी अभिव्यक्ति में बाधा न बने। हम भूल जाते हैं कि भाषा न केवल भावों की अभिव्यक्ति का एक साधन मात्र है प्रत्युत वह उनका सच्चा विधायक भी है। भाषा के अभाव में अनुभूति बन सकती है पर विचार नहीं बन सकते। प्रत्येक भाषा की एक परम्परा, एक संस्कृति भी होती है। हिन्दी ही का कोई विद्वान लेखक जब उर्दू में लिखना चाहता है, तो कोयल उसे एकाएक याद नहीं आती, वह स्वभावतया बुलबुल ही को याद करता है। यदि हम सोचें एक भाषा में, और अभिव्यक्त करें दूसरी में, तो वह भावों का यथावत् परिचय नहीं हो सकता।

अतः कुछ अंशों तक काम चलाने के लिए यह ठीक है कि हमें अनुवाद चाहिए, हमें पाठ्यक्रम तैयार करने के लिए उस विषय के विद्वान चाहिएँ, किन्तु इससे भी बड़ी आवश्यकता है इस बात की-हमें हिन्दी में प्रथम श्रेणी के चिन्तक प्राप्त हों। अँग्रेजी के ढंग पर राजनीति, इतिहास; भूगोल, गणित, अर्थशास्त्र आदि के ग्रन्थ तैयार कर देने मात्र से न राष्ट्र का कल्याण हो सकता है, न साहित्य का ही। भद्दी नकल की अपेक्षा मौलिक बदशकल बुरी नहीं हो सकती।

भद्दी नकल की बात मेरा और मेरे पाठकों का ध्यान भी, उस त्रुटि की ओर बरबस ही खींच ले जाती है, जिसके वशीभूत होकर कई वादों के नाम पर हम अपनी मौलिकता गँवा कर एक लँगड़ी चाल चलते पाए जाते हैं। नकल की यह फैशन इतनी बढ़ गई है कि हम प्रस्तुत वाद के प्रेरणा-स्त्रोत को बिलकुल ही भूल कर केवल उसकी ऊपरी सतह को पकड़ लेते हैं। परिणाम यह होता है, कि भलाई के स्थान पर वह हमें विकृत करके ही दम लेती है।

भारत में यों तो शिक्षा का अभाव है ही; अध्यापकों और चिन्तकों की संख्या और भी विरल है-और इनमें भी हिन्दी के तो अँगुली पर गिने जा सकते हैं। पठन और अध्ययन से जो रस ग्रहण शक्ति किसी पाठक में प्राप्त हो जाती है, वह हिन्दी के औसत पाठक में नहीं मिलती। इस स्थिति में एक अन्योन्य प्रक्रिया का सूत्रपात होना स्वाभाविक है। रस-ग्रहण शक्ति नहीं होने से उसे पढ़ने में

उत्साह नहीं होता, और अधिक नहीं पढने से उसमें रस-ग्रहण शक्ति परिपक्व नहीं होती। यहाँ तक कि दूसरे दर्जे में यात्रा करने वाला सम्पन्न व्यक्ति भी अपना अखबार न खरीद कर अपने सहपाठी के खरीदे हुए अखबार को पढ कर अपनी उत्सुकता या ज्ञान-पिपासा शमन कर लेने का आदी है। तब भी हम आशा करते पाए जाते हैं कि हिन्दी में एकदम वे प्रयोग चलें जो दूसरे साहित्य में कई वर्षों तक पाठकों को रस-ग्रहण करने के योग्य बना चुकने के अध्यवसाय के बाद, आज एक नया रूप ग्रहण कर रहे हैं। अमेरिका के पठित समाज में—और आप जानते हैं 'पठित' विशेषण यहाँ पर सर्वथा अनावश्यक है – आज लम्बा समय लेने वाली वस्तुओं की माँग नहीं है, वे छोटे उपन्यास, छोटी कहानियाँ, छोटे नाटक, छोटी कविताएँ, छोटे सिनेमा आदि ही देखने का आग्रह करते हैं। जीवन की सकुलता का ढिंढोरा पीट कर हम भी वही लकीर पीटना चाहते हैं। मूल की पकड यहाँ पर भी हम खो बैठे हैं। सभी जानते हैं कि– उपन्यास तो लम्बा पढना शायद वे नहीं चाहते किन्तु जिन्दगी तो वे लम्बी ही जीना चाहते हैं। उनके सकुल जीवन में बेकारी का शायद हम इलज़ाम लगाने के आदी नहीं हैं, परन्तु कितने जानते हैं कि इसी को कम करने के लिए कई संस्थाओं में सप्ताह में दो दिन का अवकाश दिया जाने लगा है, और काम के घण्टे कम करने पडे हैं। सही बात तो यह है, और जो सर्वत्र समान रूप से लागू होती है, कि वे किसी एक ही वस्तु पर अपने मन को इतनी देर तक लगाना नहीं सहन करते, कि वह उकता जाए। मनोरंजन के वहाँ पर अमित साधन हैं भी। उनकी रस साहित्य-शक्ति का उद्गम केवल पठन या अध्ययन ही नहीं, और अन्य कई साधन हैं। मैं इस मतवाद के द्वारा अपनी लम्बी रचना की वकालत नहीं करना चाहता, परन्तु यह अनुभव करता हूँ कि क्षिप्रता जैसी ये बनावटी माँगें न लेखक के साथ न्याय करती हैं, न पाठक के साथ, लेखक में इससे एक ओर अस्पष्टता, उच्छृ खलता और मिथ्या अहंकार पैदा होते हैं, पाठक को मिलती है, निराशा, क्षोभ, और उदासीनता। यह लेखक पर छोडिए कि वह क्या करना चाहता है, और कितना करना चाहता है। जिसमें प्रतिभा है, और लेखन शक्ति है, वह छोटी से छोटी वस्तु उसी सौंदर्य और सफलता के साथ कह सकता है, जितनी बडी से बडी वस्तु। सभी बडी बडी रचनाएँ लिखते हैं, और छोटी से छोटी भी।

कहा जा चुका है कि हिन्दी में मौलिकता का प्राय अभाव है। नाटक, कहानी, उपन्यास, लगभग सभी ओर हम अंग्रेजी, आदि भाषाओं की ओर नई फैशन के लिए मुँह ताका करते हैं। हमारी स्वतन्त्र उद्भावना का कौनसा अंश आज इनमें रह गया है? विविधता तो हमें कहीं मिलती ही नहीं। हिन्दी के ढेर के ढेर उपन्यास पढ जाइए, मानों कथानक के चन्द, नए-पुराने सिक्के, कभी

इसकी मुद्रा के नाम से, कभी उसकी मुद्रा के नाम से-एक ही कीमत पर यसाहत करते चले जा रहे हैं। कोई कहानी उठा लीजिए, कोई कविता उठा लीजिए, अतृप्त-वासनाओं का अम्बार का अम्बार आपको मधुर-मृदु कोमल शब्दों के लिफाफों में सजा सजाया मिलेगा। मानो सारा हिन्दी-समाज परित्रस्त (Frustrated) जीवन की एक इकाई मात्र हो। आवश्यक नहीं कि यह परित्रस्त (Frustration) केवल मात्र सेक्सुअल हो, वह राजनैतिक आर्थिक या बौद्धिक भी हो सकती है।

मालूम देता है, जैसे हमारी कोई संस्कृति ही नहीं, कोई साहित्यक परम्परा ही नहीं। मैं अवश्य ही यह नहीं कहना चाहता कि प्राचीनता का पल्ला हम छोड़े ही नहीं; मैं तो केवल यह कहता हूँ कि हम आँखें बन्द करके दूसरे का पल्ला न पकड़ लें। हमें चाहिए कि हम अपने आपको अपनी नवीनता में प्रतिष्ठित करें।

पर यह सब बातें फिर भी साहित्य के मूल को, उसके अभ्यंतर को नहीं छूती। साहित्य की वास्तविक संसिद्धि क्या है, उसकी लब्धि की दिशा में हमारा साहित्य कहाँ तक प्रयत्नवान है, कितनी मंजिल उसने तै करली है, और कितना क्षेत्र उसे सर करना शेष है? यह सब कुछ देखे बिना हमारे अध्ययन की दिशा स्पष्ट नहीं हो सकती।

शास्त्रों में मनुष्य जीवन की चरम-लब्धि को 'मोक्ष' में माना है। उसके समस्त ऐहिक और आयुष्मियक प्रयत्न इसी लक्ष्य के लिए प्रयुक्त होने चाहिये? मुक्ति के उसी निर्विकल्प श्रेयस को प्राप्त करके वह पूर्ण शान्ति, पूर्ण उत्कर्ष और पूर्ण-विकास प्राप्त करता है: उसी को शास्त्र 'पूर्णमिदम्' की संज्ञा देता है।

इस मुक्ति का अधिकारी व्यक्ति होता है, समष्टि नहीं। 'मुक्ति' यानी व्यक्तित्व का विकास, और समूहत्व का विनियोग! जीवात्मा, शेष जीवात्माओं से सार संग्रहित करके परमात्मा के रूप को प्राप्त होता है, बूंद शेष जल से अपना विस्तार सम्पन्न करती हुई सिन्धु में परिणित हो जाती है, कई इकाइयों का समाहार प्राप्त करके एक पूर्णत्व का विधान होजाता है! यह तो उद्धृत शास्त्रों की बात!

इधर अमेरिका में अवस्थित (Statue of liberty) मुक्ति की देवी का नाम किसने नहीं सुना होगा, और किस महाभाग ने उसके चित्र को न देखा होगा। उसी में अमेरिका के आदर्श की चित्रात्मक छवि अंकित है। इस आदर्श ने इतिहास बनाया है! पाश्चात्य देशों की प्रबुद्ध चेतना ने इसी आदर्श को केन्द्र मान कर क्रान्ति के आश्रय से अपनी समाज व्यवस्था निर्मित की है। जैसा कि स्पष्ट है, यह आदर्श भी मुक्ति का आदर्श है। अन्तर है तो केवल इतना सा कि भारतीय मुक्ति में धर्मप्राण आध्यात्मिकता का आग्रह है, तो पाश्चात्य-मुक्ति में सामाजिक भौतिकता का।

और साहित्य,समाज की इसी सांस्कृतिक चेतना का साध्य या साधक होना चाहिये। हम देखते हैं कि हमारे साहित्य ने हमें इस दिशा में धोखा नहीं दिया है। हमारे साहित्य से इस प्रसग पर मेरा तात्पर्य अवश्य ही उस विशाल जन समूह के साहित्य से है, जो मुक्ति के इस आदर्शवाद का अनुगामी है।

पर बात यहीं तक होती तो अलम् था। हम इतिहास के एक बड़े ही अभिनव किन्तु कोमल क्षण में जीवित हैं। —यह क्षण सचमुच एक संकट का क्षण है। आध्यात्मिक और भौतिक-जीवन की प्रत्येक स्वयम् सिद्धि' मानों अपने अविश्वास में चतुष्पथ पर खड़ी हुई है। जीवन की अवयुगीन बहुमुखी धाराएँ ही नहीं, अपितु व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन के मौलिक मूल भी इसी चुनौती पर खड़े हुए हैं। मनुष्य न प्रगति की है विज्ञान के द्वारा यह प्रकृति पर अभूतपूर्व विजय पाता चला जारहा है। पर क्या उतने ही अन्शों में वह अपनी ही प्रकृति से पराजित नहीं होता चला जारहा? यह प्रगति यदि उसके विनाश का मार्ग ही स्पष्ट करती है तो क्या वह प्रकृति के प्राणान्तक जाल में नहीं फँसता माना जाएगा? यह उन्मुक्त सफलता ही क्या मनुष्य की मुक्ति को सम्भव कर सकेगी? या यह सब कुछ एक भ्रम-मात्र है?—

स्पष्टइतिहास के प्रारम्भ में मनुष्य सामन्तवादी शासन-प्रणाली का शिकार था तब व्यक्ति का व्यक्तित्व बिलकुल ही पगु था। सदियों का इस गुलामी को फ्रांस की राज्यक्रान्ति ने अपने जादू के स्पर्श से छुड़ा दिया। सामन्त वादी बधनों से स्थापित स्वार्थों एवम् एकाधिकारों से मुक्ति दिलाना ही फ्रांस की पुनर्जागृति-आन्दोलन की नीति थी। व्यक्ति की स्वतत्र-सत्ता को तब प्रमुख मान्यता दिलाना ही उसका ध्येय था, मनुष्य 'नैसर्गिक मनुष्य' हो सके, उसके ऊपर दूसरे सबन्धों का कोई बधन न रह जाए। मनुष्य अपनी इच्छा का अनुवर्तन करता हुआ, एक मुक्त व्यापारी, मुक्त श्रमिक, या मुक्त चिंतक बन सके और यह विश्वास किया गया कि प्रत्येक व्यक्ति के इस प्रकार मुक्त-स्वतत्र-निबध होने से, उन सब का समूह समाज भी वैसा ही हो सकेगा। इसकी आन्दोलन ने इसकी सफलता की प्रतीति कराही।

हिन्दी साहित्य को यदि हम देखते हैं तो छायावाद की प्रवृत्ति में व्यक्तित्व की यह निरपेक्ष स्थिति बड़ी ही पुष्ट रेखाओं द्वारा चित्रित की गई मिलती है। छायावाद के सीमांत उत्कर्ष में न केवल अनुभूति व्यक्तिगत है, किन्तु अभिव्यक्ति तक व्यक्तिगत रह जाती है। यहाँ प्रकृति की स्वतन्त्र संस्कृति को भी मानवीय-चेतना के संस्पर्श द्वारा मनुष्य के व्यक्तिगत अनुभावों का सम्बल बन जाना पड़ता है। इससे भी आगे आत्मा स्वरस्यमय काव्य रहस्यवाद में यह सम्बल भौतिक न रह कर केवल मात्र आध्यात्मिक रह जाता है। इस दूरी पर अनुभूति और अभि-

व्यक्ति न केवल व्यक्तिगत (Praivato) रहे जाती हैं, प्रत्युक आध्यात्मिक परिवेश में वे गोपनीय (Confveuhil) भी हो उठती हैं !

नैसर्गिक और मुक्त होने के इसप्रयत्न में ही मनुष्य को प्रगोगत्तम(Empirical) वैज्ञानिक विकास सापेक्ष्यतावादी और परिमाणवादी पदार्थ तत्व, आनुवंशिकता, मनोविज्ञान की सूक्ष्म विश्लेषण-शक्ति, नर-विज्ञान से संभव न हो सके ऐसे सामाजिक सम्बन्ध, विज्ञान के कई नवीनतम उपकरण आदि आदि प्राप्त हुए हैं, और होते जा रहे हैं ! तब भी इतिहास का यह क्षण संकट का क्षण क्यों ?

मनुष्य की निर्विशेषक-मुक्ति के पक्षपातियों का मत है कि प्राणी जगत में मनुष्य की विशिष्टता उसकी मिलन-शक्ति के कारण है; उसका मानस (Mind) वह विशिष्ट उपकरण है जिसके द्वारा सोचने की क्रिया सम्पन्न होती है। यानी वह अपने 'कार्य' (Aefion) के द्वारा नहीं, अपने 'विचार' (Thosghts) के द्वारा विशिष्ट है ! वह क्या करता है यह महत्व का नहीं; वह क्या सोचता है, यह महत्व का है। कानून तक मनुष्य के इरादों की तह मे पहुंच कर ही दण्ड का विधान करता है। हमारी संस्कृति का हमारे साहित्य का सम्पूर्ण ताना-बाना इसी नाभि पर स्थिर हुआ है।

इस विचार-शीलता के द्वारा ही वह व्यक्ति (Infiridual) है ! मन की यह चेतना ही उसकी नैसर्गिक (Nafrality) है। इसी की क्षमता में वह 'मुक्त' (Free) है हमे अब की बात चीत से स्पष्ट हो जाना चाहिये कि मनुष्य की इस निरपेक्ष स्वतन्त्रता का यह सिद्धान्त एकांगी है ! स्वतन्त्रता' स्वयम् एक सोपक्ष्य शब्द है; वह सहज सस्सकारों (Insfinets) की उपज नहीं, प्रत्युत सामाजिक बंधनों से उत्पन्न पारस्पारिक-सम्बन्धो के ताने बाने में कमी हुई एक भावना है। अतः मुक्ति का जो स्वरूप हम देख आए हैं, वह वास्तव में अलाभनीय है। व्यक्ति होते हुए भी, मनुष्य सामाजिक प्राणी है। वह अपने पारस्परिक सामाजिक सम्बन्धों को उच्छिन्न करके फिर 'मनुष्य' नहीं रह सकता तानेबाने के सूत को निकाल कर उसे वस्त्र नहीं कहा जा सकता।

दार्शनिक शब्दावलि में यह संघर्ष 'भाव' और 'ज्ञान'(Being of Knowing) के बीच प्राथमिकता (Prionity) का है। परम-विज्ञान को सम्पूर्ण सृष्टि का विधायक मानना हमारे ज्ञानमार्ग की विशिष्ट प्रतिपत्ति है तदनुसार विकास की श्रेणी में 'भाववाद' (Existentialiom) का स्थान बाद में आता है।

इन सिद्धान्तों के परिणाम जीवन और साहित्य में बड़ा ही पुष्ट रेखाओं में मिलते हैं। एक ओर तो ज्ञान-मार्गी जिज्ञासु हिमालय की गहन कन्दरा

में समाधि लगा कर शेष कर्ममय-सृष्टि से अपने समस्त रागात्मक सम्बन्ध समेट लेता है, दूसरी और कर्ममय जगत में 'मुक्ति' कामी व्यक्ति अपने चारों ओर के सामाजिक सम्बन्धों को अपनी ही आँखें बन्द करके टूटा हुआ समझ लेता है। एक संघर्ष की सृष्टि, स्पर्द्धा और प्रतियोगिता की आड़ में हम पर हावी होती चली जा रही है। हमारा साहित्य हमें इसी दिशा में आगे ढकेलता है, हमारे आलोचक चरित्र चित्रण की तराजू में इकाइयों को परखते रहते हैं; और नतीजा यह होता है कि समाज में 'प्रेत और छाया' के अतिरिक्त कुछ दिखाई नहीं देता।

'विचार' वस्तुत. परिस्थितियों से बनते हैं। बहुत-कुछ उनका निर्माण भाषा द्वारा संभव होता है, भाषा स्वयम् एक सीमित और सापेक्ष्य वस्तु है। अत विचार अपने किसी भी रूप में निरपेक्ष नहीं हो सकते। यह सत्य हो सकता है कि 'कार्य' के लिए 'कारण' या 'विचार' हो, किन्तु यह आंशिक सत्य है। 'कार्य' के लिए 'कारण' उत्तरदाई होता है, 'फल के लिए भी 'कार्य'। उतना ही उत्तरदायी होता है।

मैंने लिखा कि यह युग बड़े ही कोमल क्षण में का बना हुआ है आज कोई वस्तु स्वयमृसिद्ध नहीं मानी जाती। आप्त वचनों का महत्व नहीं रह गया, तर्क-विवाद-शास्त्रार्थ आदि व्यर्थ हो गए हैं, आज तो प्रयोग, सत्य घटनाओं की समष्टि ही प्रधान कसौटी है। समस्त आदर्श इस कसौटी पर खरे उतरने ही चाहिए। आदर्शवाद के तमाम प्रकारों को आज प्रयोग की चुनौती है।

मनुष्य मनुष्यके आपसी संबंध विछिन्न होते चले जा रहे हैं मानों दूसरा मनुष्य बाजार की कोई जिन्स हो, परिचय की मिलन-भूमि हाट हो गई है, और उसकी अनुभूति नकद कीमत में। सम्बन्ध की सफलता मानों सौदा पटजाने में रह गई है। एक को मजदूर मिल जाए और दूसरे को मजदूरी, तो मानों जीवन की सार्थकता हो गई।

मनुष्य कोई स्वयम् चालित यंत्र, भाग्य या किसी दूसरी शक्ति के द्वारा खींची किसी लकीर का फकीर, नहीं है। वह फ्रायड के साँचों में कभी अँट नहीं सकता। एक माने में समान होने पर भी वह दूसरे माने में विषम है। शरीर विज्ञान ने प्रत्येक मनुष्य को लगभग समान बनाया है, दो आँखें दो कान, दो हाथ, दो पैर, एक मस्तिष्क, एक नाक एक मुँह, एक पेट—शरीर-यंत्र का एक जैसा विकास एक जैसी क्रिया, किन्तु तब भी शारीरिक-प्रकृति में भी सृष्टि के दो व्यक्ति सभी गुणों में समान नहीं मिलते। और उसके अस्तित्व तथा चेतना के बीच की

विषमता ही मनुष्य की स्वयम् की सुख या दुःख की भावना है। यह सुख-दुःख की भावना समाज के द्वारा उत्पन्न होती है, और यही जीवन को जीने योग्य बनाती—है।

आधुनिक साहित्य में मनुष्य का जो चित्र मिलता है, उसको जरा वास्तविक-जगत के व्यक्ति से तुलना कीजिये ! वह अपनी माँ से पैदा हुआ व्यक्ति नहीं दिखाई देता, वह लेखक के दिमाग से पैदा हुआ व्यक्ति दिखाई देता है, भले ही वह दिमाग भ्रम से भरा हुआ हो। किसी उपन्यास को ले लीजिए— उपन्यास के पात्रों से आपका परिचय होने की आवश्यकता नहीं, लेखक से आप परिचय कर लीजिए; वह एक साँचा है, उसकी कल्पना से प्रसूत सभी पात्र एक ही ढाँचे के पाइएगा, उनमें रंग का अन्तर हो सकता है, वेश का हो सकता है, वाणी का हो सकता है ! वे सब सजी हुई लकड़ी की पुतलियां हैं, खाट पर चद्दर डाल कर पीछे पुतली गला सूत्र पकड़े हुए उन्हें हिला रहा है, पास में डुगडुगी बज रही है, एक बड़े अच्छे तमाशे को देख कर हम हँस लेते हैं, आँसू बहा लेते है, और (किताब की कीमत देकर) खेल का चन्दा देकर धूल झाड़ते हुए घर लौटे जाते हैं !

साहित्य को मानवता की स्वस्थ, पुष्ट और बलवान् झलक देती है। उसे शक्ति का साहित्य बनना है। यदि वह दर्पण है तो समाज को अपने अभावों से परिचित कराए, कि मनुष्य अपने गुलाबी स्वास्थ्य में महकता हुआ, समाज का पृष्ठ भूमि में चहकने लगे। यदि वह प्रतिफलक है तो विषण्ण-स्वर की झंकारें उसके कर्ण-रन्ध्रों में भर कर उसकी संगीत-ध्वनि को कोमल और एक स्वरता में ले आए। वह अपने मूल-स्वस्थ संबन्धों में मूर्त्त हो, केवल मात्र बुद्धि की निष्प्राण काष्ठ-यष्टि न होकर, कर्ममय सचेष्ट प्राणवान-प्रतिमा हो, जो लेखक को व्यक्त करने की अपेक्षा अपने आप को व्यक्त करे। अपनी भावना से उत्पन्न अपनी ही सन्तान को अपने ऊपर विजय पाते देख कर लेखक स्वयम् मैदान छोड़ देगा। तब हम गाँधी का भारत न कह कर कहेंगे भारत का गाँधी।— साहित्यकार का वही महत्व, सचमुच महत्व होगा। साहित्यकार को यह न भूलना चाहिए कि साहित्यकार नहीं, किन्तु साहित्य दीर्घ-जीवी होता है।

———

संस्कृति परिषद् के अध्यक्ष प्रो० श्रीशान्तिप्रसादजी वर्म्मा के भाषण का संक्षेप

' भारतीय संस्कृति और जन तंत्र" यह प्रत्येक देशवासी के लिये बड़े महत्व का विषय है हर एक व्यक्ति को इस पर बड़ी गम्भीरता पूर्वक विचार करना चाहिये। जैसा कि संयोजक महोदय ने बताया। संस्कृति पर हम किसी विशेष परिधि, चक्कर या संकीर्ण दायरे में न घूम कर विशाल दृष्टिकोण को लेकर विचार करें तो अच्छा होगा संस्कृति का प्रश्न किसी देश, राष्ट्र या जाति के लिये मूल भूत प्रश्न ही है यह एक उलझन से पूर्ण प्रश्न है। भारतीय संस्कृति और इसका इतिहास एक सजीव कहानी है, जिसे हमें जनतन्त्र के प्रकाश में देखना है पर जनतन्त्र का भी तो कोई एक रूप नहीं। प्रधानतया भारत का वर्तमान जनतन्त्र तो पश्चिम की जनतान्त्रिक विचारधाराओं से प्रभावित है, हमें उसको दृष्टिगत रखते हुए देखना चाहिये कि क्या भारतीय संस्कृति उसके अनुसार है और इस जनतन्त्रात्मक आधार को पनपने और समृद्धि शाली बनाने में हमारी यह संस्कृति कहां तक उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से देखने पर हमें विदित होता है कि भारतीय संस्कृति किसी काल विशेष जैसे वैदिक काल, उपनिषद् काल प्राचीन काल या अन्य किसी काल की उपज नहीं युग की संस्कृति का नाम ही भारतीय संस्कृति है, जिसका विकास मार्ग में आते हुए कई प्रवाहों को अपने में सम्मिलत करते हुए क्रमशः हुआ है। यद्यपि कई रूढ़िवादी, परम्परावादी लोग इसे एक दायरे में बांधने का प्रयत्न करते हैं, किन्तु मुझे यह उचित नहीं लगता। आर्यों की प्राचीन संस्कृति उत्तर में गंगा यमुना के मैदान में विकसित होकर कई अन्य देशी विदेशी

प्रभावों और समस्याओं को अपने में बहाती, सहलाती; और मिलाती हुई सारे भारत की संस्कृति बन गई। संस्कृति सदागतिमान होती है। जडवत् नहीं। प्राचीन काल की आर्य संस्कृति को भारतीय संस्कृति की संज्ञा देना मेरे मत से ठीक न होगा। संस्कृति विशेष काल की विशेष परिस्थितियों से निर्मित हुई थी। किन्तु भारतीय संस्कृति देश में हुऐ कई उत्थान-पतन शासन-परिवर्तन, विदेशी प्रभाव आदि होते आये युगों के असंख्य परिवर्तनों की उपज है। कहने का तात्पर्य यह है कि आज भारतीय संस्कृति से जो तात्पर्य हम लेते हैं वह भारत में प्राचीन काल में आई हूण आदि अनेक जातियां, मुगल कालीन सभ्यता और अंग्रेजी हूकूमत के प्रभाव से बनी एक मिली जुली संस्कृति है। मिश्रण भी इसमें पूर्ण रूप से विद्यमान है। तथापि भारतीय संस्कृति को आर्य संस्कृति नाम से ही सम्बोधित करना अन्यायपूर्ण होगा। इस प्रकार भारत में मुस्लिम सभ्यता और संस्कृति, अंग्रेजी सभ्यता और संस्कृति, भारतीय प्राचीन सभ्यता और संस्कृति के मूल रूपों को आधुनिक भारतीय संस्कृति से भिन्न करना संभव नहीं है। प्राचीन भारतीय संस्कृति का आधुनिक समय राष्ट्रीय उत्थान के कर्णधारों और सर्व साधारण पर कम प्रभाव नहीं पड़ रहा है, जैसे महात्मा गांधी और तिलक आदि स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानियों के विचारों से है। इसी आधार पर हमें भारतीय संस्कृति में जनतन्त्र का रूप देखना और निर्धारित करना है।

संस्कृति के प्रश्न पर आज भारत में अनेक मत-मतान्तर और विवाद चल पड़े हैं। कुछ लोगों के मतानुसार विशुद्ध प्राचीन आर्य संस्कृति के तत्व ही हमारी संस्कृति में रखने चाहिये, बाकी प्रभावों, हलचलों और तत्वों को जो विभिन्न कालों में, भिन्न परिस्थितियों में, कई जातियों द्वारा भारतीय संस्कृति में मिलजुल गये हैं; उन्हें काट-छांट कर अलग कर देना चाहिये। पर क्या संस्कृति भी कभी विशुद्ध होती है? संस्कृति के आत्मसात की प्रक्रिया तो निरन्तर चलती ही रहती है, श्री मुंशीजी के "अधिक अन्न उपजाओ" के प्रचार मात्र से कोई प्राचीन भारतीय आर्य-संस्कृति का स्वप्न लौटाया जा नहीं सकता। प्राचीन आर्य संस्कृति का स्वप्न चाहे कितना ही सुन्दर, रमणीय और मन मोहक क्यों न हो; किन्तु अब तो वह कल्पना लोक की नीरव और जड़-मूर्ति की भांति ही हमें कल्पना लोक का आनन्द प्रदान कर सकती है।

दूसरी ओर सन् १६५१ के बाद जिस वेगवती धारा के प्रभाव में मानव की चेतना शक्ति प्रवाहित हो रही है उसने विश्व की सभी संस्कृतियों में स्पन्दन और नव-चेतना का स्फुरण कर विकास मार्ग की ओर अग्रसर किया है। जैसे रूस की संस्कृति जो विकास शील एवम् "मानवीय-संस्कृति" के नाम से पुकारी जाती

है। उस कसौटी पर ठीक उत्तर न दे सकने वाली संस्कृति में परिवर्तन वाञ्छनीय हैं, जो संस्कृतियां इनके विपरीत जाती हैं—समाप्त कर देना चाहिये। इस प्रकार की विचारधारा के कायल प्राचीन विद्वानों और विचारकों का कोई मूल्य नहीं समझते। परन्तु बाहर की संस्कृतियों पर, चाहे वे कैसी भी हों, किसी देश की संस्कृतिका भव्य भवन निर्मित करना कदापि सभव नहीं, किसी अन्य देश की संस्कृति की विचारधारा, परम्परा, दृष्टिकोण के आवरण में भारतीय संस्कृति को ढक लेना कोई अच्छी बात नहीं।

ऐसे मोड़-जोड़, तोड़ और परिवर्तन किसी देश की संस्कृति में तब ही आते हैं, जब वहाँ एक नवयुग का प्रादुर्भाव होता है। आधुनिक भारतीय नवयुग का प्रारम्भ भी उसकी राष्ट्रीय भावनाओं की जाग्रति से हो जाता है। परिणाम स्वरूप देश भर में सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक सुधारों की प्रेरणा और भावनाओं के रूप में देश में सर्वत्र राष्ट्रीयता की लहर स्पन्दित हो पड़ती है। चाहे किसी भी क्षेत्र में सुधार की लहर फैले उसका प्रभाव समाज की इकाई पर पड़े बिना नहीं रह सकता और फल स्वरूप समाज के अन्यान्य क्षेत्रों में भी सुधार की प्रवृत्ति स्वत जागरूक हो उठती है, इसी समय में युग पुरुष गांधी समाज में एक नव परिवर्तन का सन्देश ले आ पहुंचता है। सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक सभी क्षेत्रों में एक हलचल सी हो पड़ती है, तो क्या इस प्रकार की लहर का भारतीय संस्कृति पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक नहीं है? युग पुरुष ने राष्ट्रीय चेतना के उत्थान काल में भारत ही नहीं विश्व के लोगों को कहा "व्यक्ति जितना ऊँचा उठेगा उतनी ही प्रगति करेगा।" यही एक मार्ग है जो समन्वया त्मक आधार पर किसी भी संस्कृति को उन्नति के पथ पर ले जा सकता है।

विश्व की दृष्टि में मानवीय सभ्यता का जो नया दौर आरम्भ हो चुका है, उसे रोका नहीं जा सकता। फ्रान्स की राज्य क्रान्ति, रूस की राज्यक्रान्ति आदि जो पूँजीवादी ढाँचा को समाप्त कर समाजवादी ढाँचे का निर्माण करना चाहता है। यही इस समय की मानवीय और अमानवीय संस्कृतियों का संघर्ष है। बीसवीं सदी की संस्कृति साम्यवादी संस्कृति ही समझी जायगी। इस सामाजिक क्रान्ति का बिगुल सर्व प्रथम रूस ने बजाया था, जिसका प्रभाव आज पूर्व के अधिकांश देशों पर है। पर अमेरिका पूँजीवादी देश है, पूँजीवाद की सड़ी-गली संस्कृति, इस परिवर्तन का विरोध करती है।

परिणाम स्वरूप सभी जगह एक गलत धारणा और विश्वास फैला हुआ है कि भारतीय संस्कृति साम्यवादी विचार धारा के विपरीत पड़ती है, और इस बात का प्रचार किया जा रहा है कि अगर प्राचीन आर्य संस्कृति की ओर पुन

मोड़ लिया जाय तो साम्यवाद के प्रभाव से बचाया जा सकता है । इनके विपरीत कुछ लोग कहते हैं हमें प्राचीन संस्कृति से कोई सरोकार नहीं, उससे अब देश का कल्याण नहीं हो सकता ।

माअत्सेतुन्ग के कथनानुसार "चीनका साम्य-धाद चीन की परम्पराओं और संस्कृति से अपना सम्बन्ध विच्छेद कभी नहीं कर सकता"। जिस प्रकार भारत की अपनी संस्कृति है, अपनी धार्मिक मान्यतायें और परम्परागत विश्वास है, तो क्या वे चीन में नहीं थे ? और अभी नहीं है ? चीन के साम्यवाद के अनुसार साम्यवादी तत्व का संस्कृति में जो अभाव है, उसे दूर करना है और क्षेत्रों में में जहाँ पूजीवाद का कोई सवाल नहीं आता, वहाँ व्यर्थ बवण्डर खड़ा करना नहीं । तो क्यों न हम भी हमारे देश की परम्परा, संस्कृति, विचारधारा और मूल्यों के आधार पर नवीन जनतन्त्रात्मक संस्कृति के निर्माण के लिए प्रयत्नशील हो जायें ।

जिस प्रकार राजनीतिक जनतन्त्र का मतलब ही सच्चा जनतन्त्र नहीं है । जब तक देश में आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक तीनों क्षेत्रों में पूर्ण जनतन्त्र की स्थापना नहीं हो जाती, जनतन्त्र का वास्तविक रूप सामने आना सम्भव नहीं । अगर जनतन्त्र राजनीतिक क्षेत्र मे ही रहा तो वह पूँजीवाद के हाथ की कठपूतली बन जायगा । आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र में जनतन्त्र की स्थापना जब तक नहीं होती, जनतन्त्र का पूर्ण और सच्चा स्वरूप नहीं मिल सकता । अतः सांस्कृतिक दृष्टि से अपनी समस्या को समझते हुऐ बाद की हुई क्रान्तियों के आधार पर समन्वयात्मक दृष्टिकोण से समस्या का हल निकालना ही महत्व का विषय है ।

शोध-पत्रिका

भाग २, वर्ष २ (वि० सं० २००७)

विषय-सूची



सम्पादकीय—

तृतीय वर्षः—

शोध-पत्रिका के तृतीय वर्ष प्रवेश पर हम अपने सहयोगियों और सह-कर्मियों का स्वागत करते हैं, पिछले वर्षों की अवस्था अत्यन्त ही संघर्षपूर्ण रही। अत. हम चाहते हुए भी आप लोगों की इतनी प्रचुर सेवा न कर सके। राजस्थान की राजनैतिक परिस्थितियों ने सभी के मनको एक बारगी ही विचलित कर दिया सभी को अपने अपने कर्त्तव्य में अविश्वास और निराशा अनुभव होने लगी। शिक्षा संस्कृति और साहित्य के क्षेत्र में तो इससे भी अधिक संताप दिखाई पड़ा। राजस्थान के रचनात्मक कार्य की धरती उपजाऊ होने की अपेक्षा ऊसर होने लगी जो लोग वर्षों से इस कार्य की सराहना करते आरहे थे। वे भी डिग मिगाने से लगे। सच तो यह था अपने मूक उद्देश्यों के प्रति उनके साधन स्पष्ट नहीं थे न राजस्थान के लोक जीवन को उच्च स्तर पर लाने की उनकी स्प० घोषणा ही थी। फलत केवल बौद्धिक निदर्शन के अतिरिक्त उनमें बौद्धिक निरुपण के प्रति तनिक भी भाव न रहा। तब प्रश्न उठता है राजस्थान का रचनात्मक कार्य जो वर्षों से आगे बढता आ रहा था। वो विगत तीन वर्षों में क्यों हतचेत सा हुआ? स्पष्ट था लोक नेताओं के उद्देश्य अस्पष्ट थे।

तीन वर्षों की कशमकश के बाद आज वे लोग जो केवल रचनात्मक कार्य में विश्वास करते थे। फिर से अपने क्षेत्र में लौटने लगे हैं। राजस्थान की प्राचीन गरिमा की चादर ओढे यहाँ की उपत्यका, और हरिद्रुमों की छाया पहने धरती की सुनहरी रत्न राशि फिर से अपने रजत कणों के साथ जगमगाने लगी है। छोटे २ नम्र प्रयत्न इस आशा के प्रतिफलक हैं। भारत सरकार की प्राचीन सांस्कृतिक और ऐतिहासिक संरक्षणता की घोषणा तथा तदनुकूल की कार्य योजना निश्चय ही हमारे इस कथन का परिचायक है।

राजस्थान के अनेक प्राचीन खण्डों में बिखरे हुए ऐतिहासिक वैभव को फिर से बटोरना है और इसके लिए अल्प प्रयत्न मात्र ही पर्याप्त नहीं है। गत अगस्त मास में इतिहास के पुनर्निर्माण पर आवश्यक प्रभाव डालते हुए ओझा आसन के प्रथम अभि भाषक डा० श्री रघुबीरसिंहजी ने इस ओर संकेत किया था। तब अनेकों लोगों के सामने राजस्थान के इस प्राचीन वैभव को प्रकट में लाने का विचार उत्पन्न हुआ। विद्यापीठ का नम्र प्रयत्न चाहे जितना ही व्यापक हो फिर भी राजस्थान जैसे प्रान्त के लिये स्वल्प ही है। अत सरकार और

जनता का इसमें सम्मिलित सहयोग अनिवार्य होना चाहिये। शिक्षा के क्षेत्र में भी इस दिशा की ओर भी सम्यक ज्ञान मिलना राजस्थान के जीवन को सामने लाना आवश्यक होगा। बीकानेर के श्री अगरचन्दजी नाहटा ने श्री माल नगर की खुदाई के लिए आवश्यक विचार किया है। राजस्थान के इस प्राचीन देश की भूमि में अनेकों ऐसे नगर भूमिसात् हैं–जिनका आज कोई नामों निशान नहीं, पर उनकी आवश्यक खुदाई से राजस्थान के इतिहास पर विशद प्रकाश पड़ने की संभावना है। इसी तरह उदयपुर के पास एक आयड़ ग्राम्य है। उसके समीप छोटी २ पहाड़ियां हैं। ऐसी किंवदन्ती है कि इन पहाड़ियों के मध्य प्राचीन काल में एक ताम्रावती (ताम्रवती) नगरी थी। जिस पर राजा गन्धर्व सेन राज्य कर रहा था। प्राचीन वस्तुओं के साथ उसमें अनेकों प्राचीन वैभव की आशा की जाती है। भूतपूर्व मेवाड़ सरकार से हमने उसकी खुदाई के सम्बन्ध में निवेदन किया था। किन्तु प्रचुर द्रव्य व्यय के कारण यह प्रयत्न संभव न हो सका।

मेरा ऐसा खयाल है। राजस्थान के भीतर प्राचीन साहित्य पुरातत्व। एवं इतिहास के भीतर रुचि रखने वाले महानुभावों को संगठित होकर इस कार्य में जुट जाना चाहिये और सरकार से यह अपेक्षा की जायगी कि इस कार्य को आगे बढाने के लिए अपना पूर्ण योग दें।

मेरा ऐसा खयाल है राजस्थान के भीतर प्राचीन साहित्य पुरातत्व एवं इतिहास के भीतर रुचि रखने वाले महानुभावों को संगठित होकर इस कार्य में जुट जाना चाहिये। और सरकार से यह अपेक्षा की जायगी कि–इस कार्य को आगे बढ़ाने के लिए अपना पूर्ण योग दें।

हमने अब तक जिन कठिनाईयों में रह कर पत्रिका एवं संस्थान के कार्य को किया है, उसमें अनेक त्रुटियाँ हुई होंगी, फिर भी पूर्ण शक्ति से आज कुछ कह सकने और आगे के लिये विश्वास देने की स्थिति में हम अपने आपको पाते हैं। राजस्थान के साहित्य, शिक्षा और संस्कृति के क्षेत्र में इस पत्रिका का उपयोग होना चाहिये।

राजस्थान सरकार ने भी इसे सभी शिक्षा के विद्यालयों, स्कूलों और कॉलेजों के लिये स्वीकार कर इसकी उपयोगिता बढ़ाई है। हम सभी बन्धुओं को इसके लिए धन्यवाद देते हैं तथा आगे पूर्ण सहयोग मिलने की अपेक्षा करते हुए इस तृतीय वर्ष प्रवेश पर उनका स्वागत करते हैं।

भगवतीलाल भट्ट सा० रत्न,
प्र० सम्पादक

पत्रिका-परिचय और नियम

१—यह साहित्य-संस्थान राजस्थान विश्व विद्यापीठ की त्रैमासिक पत्रिका है।

२—इसमें १-प्राचीन साहित्य मुख्यतः प्राचीन राजस्थानी साहित्य, २-लोक साहित्य, ३-इतिहास, ४-पुरातत्व, ५-वनस्पति शास्त्र और ६-कला, भाषा शास्त्र आदि विविध विषयों के शोध-पूर्ण निबन्ध रहेंगे। साथ ही शोध समाचार, साहित्य समीक्षा आदि का भी समावेश होगा।

३—राजस्थान इसका प्रमुख क्षेत्र रहेगा।

४—निबन्ध में प्रकट किये गये विचारों के लिये उनके लेखक ही उत्तरदायी होंगे।

५—लेखकों को प्रकाशित निबन्धों के २५ रीप्रिन्ट सम्बन्धित प्रति के अतिरिक्त भेंट किये जाएंगे।

६—समालोचनार्थ पुस्तकों की दो प्रतियां आनी आवश्यक होंगी। एक प्रति आने पर उसके लिये धन्यवाद देने के साथ प्राप्ति स्वीकार की जायगी।

७—पत्रिका का वार्षिक मूल्य १०) रु० तथा एक प्रति का २॥) रु० है।

८—किसी भी अंक से ग्राहक बनाये जा सकेंगे, किन्तु वर्ष से कम के लिये नहीं।

९—पत्रिका का प्रति वर्ष-चैत्र, आषाढ, आश्विन और पौष (मार्च, जून, सितम्बर तथा दिसम्बर) में प्रकाशित हो जाया करेगी।

साहित्य संस्थान, राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर

प्रकाशित साहित्य—

१ राजस्थानी भाषा

श्रीयुत डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, एम०ए०,डी०लिट्०, मूल्य २॥)

२ राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज भाग- १

श्रीयुत पं० मोतीलाल मेनारिया एम०ए०, मूल्य ३)

३ राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज भाग- २

श्रीयुत अगरचन्द नाहटा, मूल्य ४)

४ मेवाड़ की कहावतें भाग- १

श्रीयुत पं० लक्ष्मीलाल जोशी, एम०ए, एल-एल०बी०, मूल्य २)

५ मेवाड़-परिचय

श्रीयुत विपिनविहारी वाजपेयी, एम०ए०, साहित्य रत्न, मूल्य ॥)

६ मालवी कहावतें भाग-१

श्रीयुत रतनलाल मेहता बी० ए० एल-एल० बी०, मूल्य २)

७ पूर्व आधुनिक राजस्थान मूल्य अ० जि० ६) रु० स०जिल्द ७)

श्रीयुत महाराज कुमार डॉ० रघुबीरसिंह, एम०ए०, डी०लिट्०, एल-एल०बी०

८ शोध-पत्रिका भाग- १ मूल्य ६) रु०, भाग- २ मूल्य ८) रुपया

शीघ्र ही प्रकाशित होने वाली पुस्तकें—

१ राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज भाग-३

श्रीयुत अगरचन्द नाहटा

२ आदि निवासी भील

श्रीयुत जोधसिंह मेहता बी० ए० एल-एल० बी०

३ राजस्थानी लोकगीत भाग-१

श्रीयुत जनार्दनराय नागर एम० ए०, साहित्यरत्न

४ चारण गीतमाला भाग-१

श्रीयुत पुरुषोत्तम मेनारिया, साहित्यरत्न। सहायक सम्पादक श्रीयुत सांवलदान आसिया

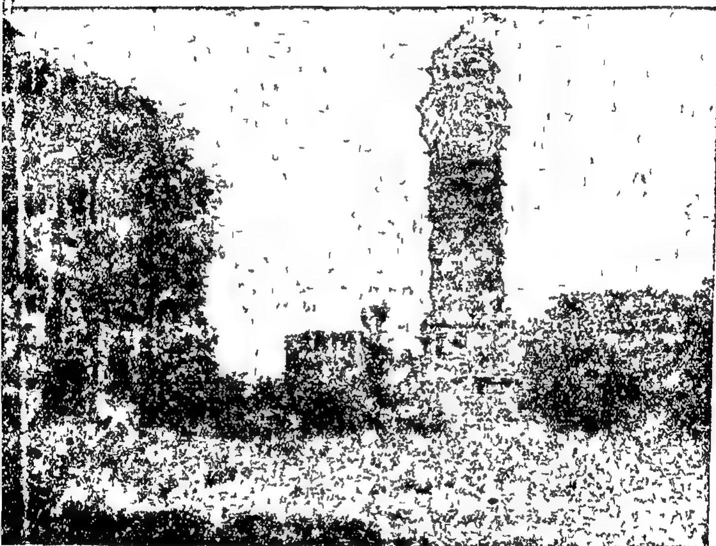
५ राजस्थानी वातां भाग-१

श्रीयुत नरोत्तमदास स्वामी, एम० ए०

मुद्रक—विद्यापीठ प्रेस, उदयपुर

शोध-पत्रिका

राजस्थान सरकार द्वारा स्वीकृत



भाग ३ अङ्क २

पौष वि० सं० २००८
दिसम्बर १९५१

इस अंक में—

(१) राजस्थानी साहित्य-भारत की आवाज

(ले० मनोहर शर्मा एम० ए० साहित्य रत्न, काव्यतीर्थ)

(२) राजस्थान में रचित हिन्दी का सब से बड़ा संगीत ग्रन्थ

(ले० अगरचन्द नाहटा)

(३) कवि पद्मनाभ के कान्हड़ दे प्रबन्ध का संक्षिप्त वृत्त और ऐतिहासिक दृष्टि से समीक्षा

(ले० डॉ० दशरथ शर्मा)

(४) सम्पादकीय

(ले० भगवतीलाल भट्ट साहित्य रत्न)

"सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते"

शोध-पत्रिका

[साहित्य संस्थान, राजस्थान विश्व विद्यापीठ
की प्रमुख त्रैमासिक पत्रिका]

भाग ३	उदयपुर, पौष सं० २००८	अंक २

राजस्थानी साहित्य–भारत की आवाज

(लेखक – मनोहर शर्मा एम०ए०, साहित्यरत्न, काव्यतीर्थ)

राजस्थानी साहित्य आर्यजनों के ओजपूर्ण इतिहास का एक अतीव उज्ज्वल अध्याय है। पिछले एक हजार वर्षों में तो उसने भारतीय साहित्य का वास्तविक अर्थ में प्रतिनिधित्व किया है। आदि काल से प्रवाहित तेजस्विता की तीव्रधारा को इस वीर भूमि ने ही पिछले समय में वेग दिया है। वस्तुतः राजस्थानी काव्य उस वीर गर्जना के साथ एक प्राण है जिसने भारतवर्ष के गौरव को दृढ़ता प्रदान की। जो अदम्योत्साहमयी विचारधारा वैदिक साहित्य में है उसी की प्रेरणा जातीय महाकाव्यों में पाई जाती है। आगे चलकर यही सार तत्व राजस्थानी साहित्य में विकसित हुआ। वैदिक वीर गर्जना सुनिए—

प्रेता जयता नर इन्द्रोव शर्म यच्छतु।
उग्राव सन्तु वाहवोऽनाधृष्या यथासथ॥

ऋग्वेद १०-१०३-१३

(हे वीरो, आगे बढो, विजय प्राप्त करो। इन्द्र तुम्हें सुख देवे। तुम्हारी भुजायें पराक्रमयुक्त हों जिससे कि तुम अपराजेय हो जाओ।)

विरक्षो विमृधो वि वृत्रस्य हनु रुज।
विमन्युमिन्द्र वृत्रहन्नमि त्रस्याभिदासत॥

ऋग्वेद १-१५२-३

(राक्षस को मार दे। हिंसकों को कुचल दे। दुष्ट शत्रु की दाढ़ों को तोड़ डाल। वृत्रहा इन्द्र तुझे दास बनाने की इच्छा करने वाले शत्रु के क्रोध को चूर चूर करदे।)

ममपुत्राः शत्रुहणोऽथो मे दुहिता विराट् ।
उताहमस्मि संजया पत्यौ मे श्लोक उत्तमः ॥

ऋग्वेद १०-१५६-३

(मेरे पुत्र शत्रुहन्ता हैं। मेरी पुत्री तेजस्विनी है। मैं शत्रु को पूरी तरह जीत लेने वाली हूँ। मेरे पति में उत्तम कीर्ति का निवास है।)

इसी विचारधारा के दर्शन महाभारत में होते हैं। तेजोमयी विदुला अपने पुत्र से कहती है—

यस्य वृत्तं न जल्पन्ति, मानवा महदद्भुतम् ।
राशिवर्धनमात्रं स नैव स्त्री न पुनः पुमान ॥
यस्य शूरस्य विक्रान्तैरेधन्ते बान्धवा सुखम् ।
त्रिदशा इव शक्रस्य साधु तस्येह जीवितम् ॥
एक शत्रुवधेनैव, शूरो गच्छति विश्रुतिम् ।
इन्द्रो वृत्रवधेनैव, महेन्द्रः समपद्यत ।

महाभारत उद्योग पर्व

(लोग जिसके चरित्र की भारी अद्भुत कह कर चर्चा नहीं करते यह केवल जनसंख्या बढ़ाने वाला ही है न तो वह स्त्री है और न पुरुष ही।)

जिस वीर के पराक्रम से, इन्द्र से देवताओं की तरह बान्धव सुख प्राप्त करते है, उसी का जीवन धन्य है।

एक शत्रु का वध करने से ही वीर को यश मिल जाता है। एक वृत्र का वध करके ही इन्द्र को महेन्द्र पद प्राप्त हुआ। यही विचार धारा हजार वर्ष पहिले के लोक प्रचलित राजस्थानी दोहों में है—

हिअड़ा जइ वेरिअ घणा तो किं अभ्रि चडाहुं ।
अम्हाहिवे हत्थडा जइ पुणु मारि मराहुं ॥

(हृदय, यदि वैरी अधिक है तो क्या आकाश मे जा चढ़ें। हमारे भी तो दो हाथ हैं, मार कर मरें।)

जहिं कप्पिज्जइ सरिण सरु छिज्जइ खग्गिण खग्गु ।
तहिं तेहइ भडघड निवहि कन्तु पयासइ मग्गु ॥

(जहाँ तीर से तीर कटता है और तलवार से तलवार टूटती है ऐसे वीर-सेना समुद्र मे मेरा पति अपना रास्ता निकालता है।)

माणि पणट्ठइ जइ न तणु तो देसडा चइज्ज।
मा दुज्जन कर पल्लविहिं दंसिज्जंतु भमिज्ज॥

(मान नष्ट होने पर यदि शरीर न छुटे तो वह देश तो अवश्य ही छोड़ देना चाहिए। दुष्टों की अगुली का इशारा बन कर घुमते रहना अच्छा नहीं।)

यही वीर भावना समस्त राजस्थानी साहित्य का प्राण है। यही वह प्रधान स्वर है जो राजस्थानी वीणा में अनुरणित होता आया है। इसी अनुरणन की लय पर पद ताल मिलाते हुए यहाँ के ऐतिहासिक पात्र चले हैं और उन्होंने अपने शौर्य से आकाश पाताल को एक कर दिया है। कहना न होगा कि राजस्थान का इतिहास और यहाँ का साहित्य एक प्राण है। और यह बहुत लम्बे समय तक एक रूप रहा है। सही रूप में राजस्थान का इतिहास भारतीय स्वाधीनता के लिए किए गये प्रयत्नों की एक लम्बी कहानी है और इसी तरह राजस्थानी का साहित्य इस मुक्ति-यज्ञ में बलिदान होने के लिए वीरों का आह्वान करने वाला महा मंत्र है।

भारतीय इतिहास का नया पर्दा उठता है तो हम अर्थ लोलुप सुलतान महमूद गजनवी को इस धन धान्य सम्पन्न वसुन्धरा में लूट मार करते हुए देखते हैं। यह ईस्वी सन की ग्यारहवीं शताब्दि का प्रारम्भ है। सुलतान ने भारत को लूटा परन्तु वह शाकम्भरीश्वर चौहानों के डर से इससे ज्यादा और कुछ न कर सका। इसके बाद बारहवीं सदी के अंत में मुहम्मद गोरी ने हिन्दुस्तान से लोहा लिया। पृथ्वीराज चौहान ने विदेशी आक्राता को रोका। पृथ्वीराज शाकम्भरीश्वर मात्र न था, वह भारत का जन नायक और सही रूप में भारत का हृदय सम्राट् था। विदेशी आक्राताओं का पूरी ताकत से भारत ने सामना किया और त्याग तथा शौर्य का असाधारण प्रदर्शन करके भारतीय स्वाधीनता के सूर्य ने अपना मुख छिपाया। यह दिन भारत के लिए बड़ा ही दुर्भाग्यपूर्ण था। इस स्वाधीनता संग्राम की गौरव गाथा तत्कालीन कवि चंदबरदाई पृथ्वीराज रासौ के रूप में छोड़ गया है जिसका कि वह स्वयं भी एक आदरणीय पात्र था। रासौ एक साधारण महाकाव्य नहीं है बल्कि यह तो रामायण और महाभारत की तरह एक जातीय महा काव्य है। इसको राष्ट्र कवि चन्दबरदाई ने खून से अपनी तलवार द्वारा कर लिया था। आगे चल कर बहुत से काव्य मर्मों ने रामायण महा-

भारत की तरह ही स्याही में डुबा कर अपनी कलम से इसे बढ़ाया और इस ग्रन्थ का कलेवर हद से ज्यादा भारी हो गया। यही कारण है कि शोध करने वाले लोगों को इसकी प्रामाणिकता पर संदेह पैदा हुआ और कई इतिहास के पंडितों ने भी इसकी सच्चाई के लिए भारी वाक् कलह किया। परन्तु कोई नतीजा नहीं निकल सका क्यों कि इसके पीछे भारतीय लोक समाज में जो अनुश्रुति है वह रामायण और महाभारत की अनुश्रुतियों के समान अत्यधिक भारी वजनदार है। इस काव्य की सचाई का दूसरा अकाट्य प्रमाण यह भी है कि इसके विषय के अनुरूप ही इसमें भारी वेग है जो उस कार्य की महत्ता का प्रत्यक्ष दृष्टा सा ज्ञात होता है।

महाकवि चन्दबरदाई की गौरव गिरा भारत के राष्ट्रीय इतिहास में सदैव गुंजायमान रहेगी:-

हिन्दुवान थान उत्तम सुदेश। तहँ उदित द्रुग्ग दिल्ली सुदेस ॥
संभरिनरेस चहुआन थान। प्रथिराज तहाँ राजंत भान ॥
संभरि नरेस सोमेस पूत। देवत्त रूप अवतार धूत ॥
जिहि पकरि साह साहाब लीन। तिहुँ वेर करिय पानीप हीन ॥
सिंगिनि-सुसद्द गुनि चढ़ि जंजीर। चुक्कइ न सबद वेधत्त तीर ॥

महाकवि चन्दबरदाई की वाणी ने भारतीय राष्ट्र के भक्त-हृदय पर आधिपत्य जमा लिया और बहुत लम्बे समय तक यहाँ की जनता कवि के शब्दों में राष्ट्र गीत गाती रही। लोक-हृदय मे घर कर लेने वाली कविता का जितना प्रचार होता है, उतना ही उसका रूप परिवर्तन भी होता है। परन्तु इससे राष्ट्र दूत चन्दबरदाई की महत्ता थोड़े ही कम हो सकती है। भारतीय लोक हृदय उस अमर गायक को भुला नहीं सकता पृथ्वीराज चौहान के स्वर्गारोहण के बाद दिल्ली अजमेर पर विदेशी झण्डा लहराने लगा। परन्तु इसके बाद भी राजस्थान में काफी समय तक रणथंभौर, जालौर, एवं चित्तौड़ आदि स्वाधीन राज्य चलते रहे।

तेरहवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में दिल्ली की गद्दी साम्राज्यवादी अलाउद्दिन खिलजी के अधिकार में आई तो राजस्थान की राजनीति में काफी उथल पुथल हुई। दिल्ली पति का सर्वग्रासी पंजा इधर बढ़ा सबसे पहले रणथंभौर नरेश

'हम्मीर' ने दरयुदल की बाढ़ को रोका। उनको सफलता नहीं मिली परन्तु वे "हठी-हम्मीर" के रूप में अपना चिरस्थायी विरुद इतिहास में छोड़ गए जो आज तक आर्यवीरों को प्रेरणा देता आया है। राजस्थानी में "हठी" का अर्थ अंतिम दम तक सत्य पर डटे रहने वाला अर्थात् सत्याग्रही होता है। हमीर के बाद चित्तौड़ के वीरों ने डट कर शत्रुओं का मुकाबला किया परन्तु साम्राज्यवादी शक्तियों के सामने उनका टिक सकना कठिन था। वीरों के असि धारा तीर्थ में स्नान करने के बाद वीरांगनाओं ने महाव्रत जौहर के रूप में आर्य जगत को अद्वितीय प्रकाश प्रदान किया। इसके बाद जालौर के वीरमदेव की तलवार चमकी। उन्हें भी सफलता न मिली और धीरे धीरे समस्त राजस्थान पर विदेशी अधिकार हो गया। राजस्थानी जन साधारण उस संकटकाल को कभी भूल न सका और हम्मीर, पद्मिनी, वीरमदेव आदि के जीवन की घटनाओं को अब तक राजस्थानी गावों के रूप में आपस में बड़े ही उत्साह के साथ यह कहता सुनता चला आ रहा है। इन वीरों का बलिदान व्यर्थ नहीं गया। भारी विनाश के बाद भी कवि शार्ङ्गधर की वाणी सुनिए जिसमें वही तप तेज विद्यमान है जो उन स्वतन्त्रताप्रिय शहीदों की तलवारों में था—

पिंधउ दिढ सन्नाह बाह उप्पर पक्खर दइ।
बन्धु समदि रण धसउ साहि हम्मीर वअण लइ।
उड्डउ णाहपह भमउ खग्ग रिउ सीसहि झल्लउ।
पक्खर पक्खर ठेल्लि पेल्लि पव्वअ अप्फालउ।
हम्मीर कज्जु जज्जल भणइ कोहाणल महमइ जलउ।
सुलतान सीस करवाल दइ तज्जि कलेवर दिअचलउ।

(दृढ़ कवच धारण करके, घोड़े पर पाखर डालकर, बंधुजनों को आश्वासन देकर, शाह हमीर के वचन ग्रहण कर, मैं रण में धंसता हूँ। खड्ग से शत्रुओं के सिर काटता हूँ। पाखर से पाखर ठेल पेल कर पर्वतों को हिलाता हूँ। जज्जल कहता है कि हमीर के कार्य के लिए मैं कोपानल में जलता हूँ। और सुलतान के सिर पर तलवार देकर इस शरीर को छोड़ मैं स्वर्ग को जाता हूँ।)

इस छप्पय में रणथंभौर के चौहान राजा हमीर के सेनापति महावीर जज्जल की प्रतिज्ञा वर्णन है। शब्दों से वीर रस टपका पड़ता है। वास्तव में ऐसी

कविताओं ने ही इस देश मे स्वाधीनता की ज्योति को जागृत रखा था।

भारत में एक कोने से दूसरे कोने तक विदेशी साम्राज्य के छा जाने पर भी भारतीय आत्मा सोई नहीं। उसके अन्दर एक प्रकार की आग जलती रही। उधर दिल्ली में राज्यलक्ष्मी नाटक सा कर रही थी। चौदहवीं शताब्दि के प्रथमार्द्ध में विदेशी सत्ता में शिथिलता आई तो हमीर के नेतृत्व में मेवाड़ फिर स्वतन्त्र होगया चित्तौड़ से विदेशी हुकुमत के निशान मिटा कर हमीर ने महाराणा का पद प्राप्त किया जिस का अर्थ उस समय सम्राट था। इस मुक्तियज्ञ के लिए हमीर की मूल प्रेरक चारणी शक्ति थी। तत्कालीन कवि बारूजी सौदा का डिंगल गीत सुनिए—

ईला चीत्तौड़ सहू घर आसी

हूँ थारा दोखिया हरूँ । जणनी इसौ कहूं नह जायौ ॥
कैवै देवी धीज धरूँ ॥ १ ॥ रावल बापा जिसो राइ गुर ।
रीझ खीझ सुरपति रो रूँस। सगती करै गला रा सूंस ॥२॥
मन साचै भाखै मह माया । रसण सेती बात रसाल ॥
सिरज्यौ है अडसी सुतसरिखौ। पकड़े लाऊँ नाग पयाल ॥३॥
आलम कलम नवौ खण्ड ईला । कैलपुरारी भीढ़ किमौ ॥
देवी कहै सुण्यौ नह दूजौ। अवर ठिकाणे भूप इसौ ॥ ४ ॥

(चित्तौड़ की समस्त धरती तुम्हारे अधिकार से आवेगी। मैं तुम्हारे शत्रुओं का नाश कर दूँगी। देवी शपथ पूर्वक कहती है कि किसी माता ने हम्मीर सरीखा पुत्र नहीं पैदा किया। वह बापा रावल के समान राजाओं का भी राजा है। उसकी रीझ और कोप इन्द्र के समान है। देवी अपने गले की शपथ लेकर कहती है कि दस सहस्र गाँवों के पति हमीर के समान दूसरा कोई नहीं है॥ २ ॥ महामाया सच्चे मन से जीभ को शोभा देने वाली सरस वार्ता कहती है कि अरिसिंह के पुत्र हमीर के समान ईश्वर ने किसी को बनाया हो तो मैं उसे पाताल लोक से भी पकड़ कर ले आऊँ॥ ३ ॥ मुसलमानों की दुनिया मे अथवा पृथ्वी के अन्य नवों खण्डों में केलपुरे के सरदार की बराबरी करने वाले कौन है । देवी कहती है कि दूसरे किसी राज्य में ऐसा राज नहीं सुना ॥ ४ ॥

इस समय चित्तौड़ एक राष्ट्रीय तीर्थ बन गया। दूर दूर के राजपुत्र उसके भण्डे की छाया में आने लगे। दिल्ली साम्राज्य अयोग्य शासकों के हाथ में विघटित होता गया और मेवाड़ की शक्ति दिनों दिन वृद्धि को प्राप्त होती गई। पन्द्रहवीं सदी में महाराणा कुम्भा के राज्यकाल में राजस्थान पूर्ण स्वतन्त्र होकर उत्तर भारत की एक जबरदस्त हस्ती बन गया। उन्होंने विदेशी सत्ता को करारी हार दी और अपनी विजय का स्मारक कीर्तिस्तम्भ बनवाया जो उस युग का बोलता हुआ इतिहास है। कुम्भा ने "हिन्दुवा सुलतान" का विरुद धारण किया जिसका अर्थ उस समय राष्ट्रपति था।

कलहेवा चूक कुम्भ क्रन राणा। जगत तणा गुर दुरग जुल ॥
काढ्या अचरज किसो कटारो। काढ्यां जिण पैंतीस कुल ॥ १ ॥
समियै जिसम लगै सुरताणा। राव मेवाड़ो चढै रिण ॥
वांक पड़ै किम तिण बाढाली। जग भय पाधारिया जिण ॥ २ ॥
सुतही मोकलसीह सम्रोभ्रम। मई दुरग गिर वडा मह ॥
जिण वीनडिया किम वीसारै। प्रिथमीलव राह तणा पह ॥ ३ ॥
करत नहीं राणा कुम्भ क्रम। जो नू भ्रलगत थाय जम ॥
मानव देव दईत न मानत। कलह कटारी तणौ क्रम ॥ ४ ॥
थाणी अमह जडालो आहव। फुटनी चौह में फर ॥
हुय तो कलह कुम्भ क्रम होवै। न तो असुर सुरनर अवर ॥ ५ ॥

(महाराणा कुम्भाजी, युद्ध में ऐसी भी चूक होती है कि जिससे संसार के बड़े बड़े दुर्ग अलग हो जाया करते हैं तो जिसने पैंतीस कुलों को निकाल भगाया उसके लिए कटारी निकालने में क्या आश्चर्य ॥ १ ॥ जिस समय मेवाड़ का राणा युद्ध के लिए बढ़ता है तो बादशाहों को भी भय लगता है। जिस कटारी ने तीनों लोकों को सीधा कर दिया है उस कटारी में वक्र कैसे पड़ सकता है ॥ २ ॥ हे मोकलसी के पुत्र तुम्हारी कटारी ने बड़े २ वीरों के और गढ़ों के घमण्ड को हर लिया है। इस कटारी ने नवों खण्डों के राजाओं को विनयी बना दिया है वे तुम्हें कैसे भूल सकते हैं ॥ ३ ॥ महाराणा कुम्भाजी यदि यमराज के समान तेरी भुजाएँ नहीं होती तो मनुष्य, देव और दैत्य युद्ध में कटारी के क्रम को कैसे प्राप्त पाते ॥ ४ ॥ युद्ध में तेरी कटारी को कोई सहन नहीं कर सकता। वह ढाल को

फोड़ कर पार निकल जाती है। युद्ध में राणा कुम्भाजी जैसा असुर, सुर या नर कोई भी दूसरा नहीं हुआ ॥ ५ ॥

महाराणा कुम्भा के बाद भारतीय राजनीति में भारी परिवर्तन हुआ। दिल्ली दरबार में अब कोई दम न था। नए नए स्वाधीन राज्य खड़े हो गए थे। उनकी गद्दी पर या तो पठान थे या भारतीय मुसलमान अथवा हिन्दू। विदेशी सत्ता भारत से लगभग उठ सी गई थी। ऐसी स्थिति में भारत का नेतृत्व महाराणा सांगा के हाथ में आया। जब विदेशी मुगल भारत में आये तो भारतीय हिन्दू और मुसलमान सभी ने इस लोकनायक की प्रधानता में तलवार उठाई। उस समय महाराणा सांगा के पीछे भारत का भारी जनबल था और सबका उद्देश्य यही था कि विदेशी मुगल तुर्कों को यहाँ से खदेड़ा जाय। केन्द्रीय राजधानी दिल्ली मुगलों के अधिकार में थी। दिल्लीपति बाबर स्वयं महाराणा का भय खाता था। परन्तु युद्ध का परिणाम भारत के विपरीत हुआ और भारी बलिदान करने पर भी भारतीय दल मुगलों के आगे टिक न सका। महाराणा स्वयं घायल हुए। उनको भारी खेद हुआ। ऐसी हालत में राष्ट्र कवि जमणाजी बारठ ने महाराणा को यह अमरगीत सुनाकर फिर तलवार उठाने के लिये तैयार किया:—

सत बार जरासंघ आगल़ स्रीरंग विमुहा टीकम दीध वग।
मेलि घात मारे मधुसूदन असुर घात नाखे अलग ॥ १ ॥
पारथ हेकरस्यां हथणा पुर हटियौ त्रिया पड़ंतां हाथ।
देख जका दुरजेधण कीधी पछै तका कीधी कांई पाथ ॥ २ ॥
इकरा राम तणो तिय रामण मंद हरे गौ दहकमल।
टीकम सोहि ज पथर तारिया जगनायक ऊपरां जल़ ॥ ३ ॥
एक राड भव मांहि ओहथी औरस आणौ केम उडर।
माल तणा, केवा कज मांगा सांगा, तूँ सालै असुर ॥ ४ ॥

(आप उदास क्यों होते हैं– सौबार जरासंघ से विमुख होकर श्रीकृष्ण भागे थे परन्तु फिर उन्होंने शत्रु की घात मिटा कर उसे अंत में मार ही डाला ॥ १ ॥ अर्जुन एक बार द्रौपदी का दुःख देखकर हस्तिनापुर से हट गया था। वहाँ दुर्योधन ने जो कुछ किया सो सब जानते हैं परन्तु फिर अर्जुन ने क्या

किया ॥ २ ॥ एक बार मद दशमुख रावण सीताजी को हर कर ले गया था। इसके बाद जगनायक रामचन्द्रजी ने समुद्र पर पत्थर तैराकर कैसा काम किया ॥ ३ ॥ आप एक युद्ध में हार कर खेद क्या करते हैं, महाराणा सांगा, आपतो शत्रुओं के हृदय में खटकते रहते ही हैं ॥ ४ ॥ गीत मे कविने पुरावृत्त के जो उदाहरण दिए उन्होंने इसमें जान फूंकदी है। कवि ने महाराणा सांगा को राम कृष्ण और अर्जुन की पंक्ति में लाकर बड़ी ही श्लाघ्य रचना की है। प्राचीन विपत्ति को नई विपत्ति से तुलना करके मार्ग प्रदर्शन करना ही राष्ट्र कवि का काम है।

इस गीत की प्रेरणा से सांगाजी फिर युद्ध के लिए सनद्ध हुए। परन्तु भारत के भाग्य में इस लोकनायक का नेतृत्व और ज्यादा नहीं लिखा था। उनके इह लीला संवरण करने पर देश ने इन शब्दों में विलाप किया—

उगा विण सूर जेहवौ अंबर, दीपक पारै जिसौ दुवार।
पावस बिना जेहवी प्रथमी सांगा विण जेहो संसार ॥ १ ॥
विण रवि व्योम, कसण जोती विण धाराहर विणजसी धर।
जैसी हरा, जिमी जाणेवी तो विण प्रथमी कलपतर ॥ २ ॥
जलहर गयौ दुनो जीवाडण पवै नहीं दीपक फरक।
साहा ग्रहण भोलणौ सांगौ आथमियौ मोटौ अरक ॥ ३ ॥

(सूर्य उदय हुए बिना जैसा आकाश, दीपक बिना जैसा घर, वर्षा बिना जैसी पृथ्वी, उसी तरह सांगाजी बिना यह संसार ॥ १ ॥ हे कल्पवृक्ष जैसे सूर्य बिना आकाश, ज्योति बिना अग्नि और मेघ बिना पृथ्वी, उसी तरह तेरे बिना यह संसार शून्य हो गया है ॥ २ ॥ हा, संसार को जीवन देने वाला मेघ चला गया। प्रकाश देने वाला दीपक बुझ गया। बादशाहों को पकड़ कर छोड़ देने वाला प्रचण्ड सूर्य सांगा आज अस्त हो गया ॥ ३ ॥ एक ही भाव को शब्दान्तर से कई बार कहना डिंगल गीतों की एक अपनी विशेषता है। इस गीत में गजब की स्वाभाविकता है। यह दिमाग की उपज नहीं दिल का दर्द है। हिन्दुस्तान का सूर्य अस्त हो गया। कवि के साथ ही सारा देश शोकमग्न है। कवि के शब्द शोक की प्रति मूर्ति हैं।

महाराणा सांगा के स्वर्गारोहण के बाद शेरशाह ने मुगलों को भारत से मार भगाया और दिल्ली पर पठाणों की सत्ता स्थापित हुई। राजस्थान भी कुछ समय के लिए उनके अधीन हो गया। परन्तु जल्दी ही शेरशाह के मरने के बाद वही मुगलिया झण्डा दिल्ली पर फिर लहराने लगा और साम्राज्यवादी अकबर ने राजस्थान की राजनीति में एक नया दौर प्रारम्भ करके राजपूत नरवीरों को दूर दूर के इलाकों में साम्राज्य की सेवा में खून बहाने के लिए अपनी तरफ मिला लिया। परन्तु मेवाड़ ने मुगलों की अाधीनता स्वीकार न की। अकबर बड़ी भारी सेना लेकर चित्तौड़ पर चढ़ आया। महाराणा उदयसिंह आवश्यक सामान लेकर पहाड़ों में चले गये और पीछे से जयमल और फत्ता के अधिनायकत्व में रण यज्ञ रचा गया। इन वीरों ने संसार की स्वाधीनता के इतिहास को गौरवमय करने वाला युद्ध किया जिसके वर्णन में अब भी राजस्थान इनके गीत गाता है—

चवै एम जैमाल चीत्तौड़ मत चल चले		हेड़हूँ अरि दल न दूं हाथै।
ताहरे कमल पग चढ़ै नह ताइयां		माहरै कमल-जां खवां माथै ॥१॥
धडकमत चीत्रगढ़ जोधहर धीखै		गंज सभा दला करूं गजगाह।
भुजा सू मूक जद कमल करालां मिलै		पछै तो कमक पग देह पतसाह ॥२॥
दूदकुल आभरण धुहड़हर दाखवै		धीर मंड डरै मत करै धोखो।
प्रिथी पर माहरो सीस पडियां पछै		जाणजै ताहरै सीस जोखो ॥३॥
साच आखो कियो वीर रै सीचणी		हाम चित पूरवै काम हथवाह।
पुर अमर कमंध जैमाल पाधारियौ		पछै पाधारियौ कोट पतसाह ॥४॥

(जयमल कहता है-हे चित्तौड़, तूँ विचलित न हो। मैं शत्रुदल को भगा दूँगा। तेरे सिर पर शत्रुओं के पैर तब तक नहीं पड़ सकते जब तक कि मेरे कंधो पर मेरा सिर है ॥१॥ जोधा का वंशज धैर्य धारण करवाता है—हे चित्तौड़ तूँ डर मत। मैं शत्रुदलों को हाथियों से रौंदवाकर नष्ट कर दूँगा। भुजाओं से अलग होकर जब मेरा सिर शिवजी की मुण्डमाला में मिल चुकेगा तभी बादशाह तेरे सिर पर पैर रख सकेगा ॥ २ ॥ दूदाजी का कुल भूषण, धूहड़जी का पौत्र कहता है-तूँ धैर्य धारण कर, डरमत, किसी प्रकार का खेद न कर। तेरे सिर पर आँच तभी आयेगी जब कि मेरी सिर पृथ्वी पर गिर चुकेगा ॥ ३ ॥ हे नरसिंह जयमल, तूँ

ने अपने वचनों को अच्छी तरह पूरा कर दिखाया। अपने हाथ चला कर तूने मन की इच्छा पूरी की। राठौर वीर जयमल जब स्वर्ग सिधार गया, तब बादशाह किले में प्रविष्ट हो सका ॥ ४ ॥

वीररस के परिपाक में वीरों की उक्तियों का बड़ा महत्व है। इस गीत में जयमल के मुख से कवि बोलता है। और कवि मुख से देश बोलता है। डिंगल में सिर के लिए कमल शब्द का प्रयोग गजब का लाक्षणिक है जिसके लिए लम्बी व्याख्या चाहिए। जयमल कवियित्री मीरा के भाई का लड़का था। फत्ता का गीत इस प्रकार है—

बूझे पतसाह पता दे कूंची धरा पलटी न कीजे धोड़ ।
गढरो धणी कहे गढ मारो चुडाहरो न दिय चित्तौड़ ॥ १ ॥
गोलया नाल यन्त्र कोट गाजे हिन्दू तुरक आवटे घणा ।
जग्गा सुत न दोये जीवतो बीजा लोचन प्रथी वणा ॥ २ ॥
झटका झँड़ा औझड़ा झाडे अटका अर्भा रोके अमराह ।
ऊभे पते चढयो नहि अकबर पड़िये पते चढयो पतसाह ॥ ३ ॥
पतसाह नाल राण घर आडो मुगला मारण कियो मतो ।
उदयासिंघ राणो इडम आखे धरा पलटी' धणी पतो ॥ ४ ॥

इस गीत का भाव भी लग भग वही है जो पूर्वोक्त जयमल सम्बन्धी गीत का है।

जयमल और फत्ता के शौर्य से अकबर इतना प्रभावित हुआ कि उसने अपने रक्त की अंतिम बूंद तक लड़ने वाले इन महावीरों की गजारोही प्रतिमाएँ आगरे में अपने महल के सामने स्थापित करवाई। जैसा इन नरसिंहों का व्यक्तित्व था, वैसे ही प्रभावपूर्ण इनके गीत हैं। ये गीत लम्बे समय तक योद्धाओं को अपनी मातृभूमि पर बलिदान होने के लिए प्रेरित करते रहे। ऐसी कविताओं का इतिहास निर्माण या यों कहिए राष्ट्र निर्माण में ऊँचा स्थान है। ऐसी वेगमयी सम्पत्ति से राजस्थानी साहित्य गौरवमय है। ऐसे गीतों को सुनकर ही, विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा था—'मैं तो उनको (गीतों को) सुन कर सुध खो गया। इन गीतों में कितनी सरसता सहृदयता और भावुकता है। वे लोगों के स्वाभाविक उद्गार हैं। ये गीत संसार के किसी भी साहित्य और भाषा का गौरव बढ़ा सकते हैं।"

भारी जनसंहार के बाद चित्तौड़ का पतन हुआ और समस्त राजस्थान पर मुग़लों का साम्राज्यवादी झण्डा फहराने लगा। परन्तु फिर भी भारत की स्वाधीनता-प्रिय आत्मा नहीं मरी। इस समय भारत को प्रभात स्मरणीय लोक-नायक मिला। जितना बड़ा संकट था, उतना ही ऊँचा भारतीय हृदय-सम्राट का व्यक्तित्व था। मुग़लों की दुर्दान्त सेना के आगे माग देश दब गया परन्तु असीम कष्ट उठाकर भी महाराणा प्रताप ने अकबर के आगे सिर नहीं झुकाया। वह पहाड़ों में भटकता रहा। जन साधारण हर बलिदान के लिए उसके साथ था। तत्कालीन कवियों ने इस स्वाधीनता के पुजारी के गीत गाकर अपनी वाणी को धन्य किया है। उनमें दुरसाजी और पृथ्वीराज प्रमुख हैं। भारत में स्वाधीनता की ज्योति जागृत रखने वाले अमर कवियों के साथ सदैव इनका नाम बड़े आदर के साथ लिया जायगा। महाकवि दुरसाजी की वाणी सुनियेः-

अकबर समँद अथाह, तिंह डूबा हिन्दू तुरक।
मेवाड़ो तिण मांह, पोयण फूल प्रतापसी॥ १॥
अकबर घोर अँधार, ऊँघाणा हिन्दू अवर।
जागै जगदातार, पोहरै राण प्रतापसी॥ २॥
थिर नृप हिन्दुस्थान, लातरगा मग लोभ लग।
माता भूमि मान, पूजै राण प्रतापसी॥ ३॥
सेला अणी सिनान, धारा तीरथ में धसै।
देण धरम रणदान, पुरट सरीर प्रतापसी॥ ४॥
अकबर जतन अपार, रात दिवस रोकण करै।
पूगी समँदा पार, पंगी राण प्रतापसी॥ ५॥
अकबर जासी आप, दिल्ली पासी दूसरा।
पुनरासी परताप, सुजस न जासी सूरमा॥ ६॥

इसके बाद महाकवि पृथ्वीराज की वाणी सुनिए:—

धर बाँकी दिन पाधरा, मरदन मूकै माण।
घणां नरिंदाँ घेरियो, रहै गिरंदा राण॥ ७॥
माई एहड़ा पूत जण, जेहड़ा राण प्रताप।
अकबर सूतौ ओझकै, जाण सिराणै साँप॥ ८॥

अकबर समँद अथाह, सूरापण भरियो सजल ।
मेवाड़ो तिण मांह, पोयण फूल प्रतापसी ॥ ६ ॥
पातल जो पतसाह, बोलै मुख हूँता बयण ।
मिहर पछम दिस माह, ऊगै कासिबरावउत ॥ १० ॥

(अकबर अथाह समुद्र के समान है जिसमें हिन्दू और मुसलमान डूब गए परन्तु मेवाड़ पति महाराणा प्रतापसिंह उसमें कमल के फूल की तरह है ॥ १ ॥ अकबर घोर अँधकार है जिसमें अन्य सभी हिन्दू राजा तद्रित हो गए परन्तु जगत का दातार महाराणा प्रतापसिंह पहरे पर चौकस जाग रहा है ॥ २ ॥ हिंदुस्थान के स्थिर राजा लोभ के वशीभूत होकर मार्गभ्रष्ट हो गए परन्तु पृथ्वी को माता मान कर महाराणा प्रताप उसकी पूजा कर रहा है ॥ ३ ॥ महाराणा प्रतापसिंह भालों की नोक से स्नान करते हुए, तलवार की धारा रूपी तीर्थ में प्रविष्ट होकर स्वधर्म के लिए युद्धक्षेत्र में स्वर्ण रूपी शरीर का दान देते हैं ॥ ४ ॥ अकबर दिन रात रोकने की चेष्टा में लगा रहा है परन्तु महाराणा प्रताप की कीर्ति तो समुद्रों के पार भी पहुच गई ॥ ५ ॥ स्वय अकबर चला जायगा और दिल्ली पर दूसरों का अधिकार हो जाएगा परन्तु शूरवीर एवं पुण्य राशि प्रताप तुम्हारा यश नहीं जायगा ॥ ६ ॥ जिसकी भूमि विकट है, जिसके दिन अनुकूल है, और जो वीर स्वभिमान को नहीं छोड़ता वह महाराणा बहुत राजाओं से घिरा हुआ पहाड़ों में विश्राम करता है ॥ ७ ॥ माता, पुत्र पैदा करे तो ऐसा कर, जैसा महाराणा प्रतापसिंह, जिसका ध्यान आते ही सोया हुआ अकबर भी सिरहाने सॉप आया समझकर घबराकर उठता है ॥ ८ ॥ अकबर अथाह समुद्र है जिसमें वीरता का जल भरा हुआ है परन्तु मेवाड़ पति महाराणा प्रतापसिंह उसमें कमल के फूल के समान है ॥ ९ ॥ यदि महाराणा प्रतापसिंह अकबर को अपने मुख से "बादशाह" कह दे तो कश्यप पुत्र भगवान सूर्य पश्चिम दिशा में उदय होने लगे ॥ १० ॥

इन दोहों में अकबर को समुद्र और अंधकार के समान बताकर उसकी साम्राज्यवादिता की तरफ लक्ष्य किया गया है। "जिंद डूबा हिन्दू तुरका" के अनुसार उसको भारतीय हिन्दू और मुसलमान दोनों सत्तापहारी बतलाया गया है। कवियों ने इन दोहों के द्वारा मानों महाराणा के व्यक्तित्व का चित्र सा

उतार दिया है। महाराणा प्रताप ने विदेशी मुगलों के आगे कभी सिर न झुकाया और आयु पर्यंत उन्होंने छापा मार युद्ध जारी रक्खा। उनके बाद भी यह लड़ाई चलती रही परन्तु इतने लम्बे समय तक पूरे दिल्ली साम्राज्य के आगे स्वाधीनता के पुजारियों का यह छोटा सा दल कितने दिन खड़ा रह सकता था। अंत में जहाँगीर के साथ महाराणा अमरसिंह का सलम्मान समझौता हो गया और मुगल बादशाह राजस्थान का भी सम्राट माना गया। महाराणा प्रताप के समान ही जोधपुर नरेश राव चन्द्रसेन ने भी मुगलों की आधीनता स्वीकार नहीं की।—

पमंग अदग पड़ियाखग खरहँड तणी न लगी खेह।
राण उदैसी तणो अरेहण राव मालदे तणो अरेह ॥
तुरियै विरात खत्रिवट त्रजड़े असपत दल रहिया अगिण।
कलँक बिना कुंभेण कलो धर बाघ कलोधर कलंक बिण ॥
अस बालाद साह धर असमर दियो न दुहुवै हीणो दाव।
रवि सिरखौ मेवाड़ो राणो रवि सिरखौ जोधाणो राव ॥

(इन्होंने अपने घोड़ों के दाग नहीं लगने दिया और न इनकी तलवार के ही दाग (जंग) लगा। ये कभी युद्ध से भगे नहीं। इसलिए सैन्यदल के प्रयाण की धूल भी इनके नहीं लगी। उदयसिंह का पुत्र प्रतापसिंह और राव मालदेव का पुत्र चन्द्रसेन, ये दोनों कभी शत्रु से दबे नहीं ॥ १ ॥ बादशाह की सेना असंख्य होने पर भी इनके घोड़े उसी स्थिति में रहे और तलवार के बल से इन्होंने क्षत्रियत्व की रक्षा की। कलंक रहित या तो कुंभा का वंशज प्रतापसिंह रहा, या बाधा का वंशज चन्द्रसेन ॥ २ ॥ घोड़ों को दगवा कर या बादशाह के पैरों में तलवार रखकर इन दोनों वीरों ने कभी हीन भाव नहीं दिखलाया। मेवाड़ का राणा प्रतापसिंह और जोधपुर का राव चन्द्रसेन ये दोनों सूर्य के समान हैं ॥ ३ ॥)

मुगलों में अपनी सेना के घोड़ों को दागने का नियम था जिससे कि कोई सामन्त कमजोर घोड़ों से अपने घुड़सवारों की गिनती पूरी न कर सके। कवि ने दाग लगाने का लाक्षणिक प्रयोग करके भारतीय मर्यादा पालन का उज्वल रूप दिखाया है।

मुगलों ने समय को पहिचान कर, राज्य शासन में समानता के सिद्धांत को व्यवहारिक रूप दिया और एक सुदृढ़ साम्राज्य की स्थापना की। इन्होंने पूरी तरह भारतवर्ष को अपना घर बना लिया और इस देश की हर तरह से उन्नति करने में ही अपना गौरव समझा। परन्तु सत्तरहवीं शताब्दि के उत्तरार्द्ध में फिर समय ने पलटा खाया और धर्मान्ध औरंगजेब की अनीति के विरुद्ध समस्त भारत में भारी विद्रोह उठ खड़ा हुआ। जिसमें भारतीय मुसलमान भी शामिल थे। इस विद्रोह में राजस्थान का भी बड़ा हाथ है। इस समय मेवाड़ के समान ही मारवाड़ ने भी दिल्ली साम्राज्य के विरुद्ध तलवार उठाई।

इस युग में महाराणा प्रताप के समान ही महावीर दुर्गादास ने अपूर्व त्याग एवं साहस का प्रदर्शन किया। महाराणा राजसिंह का दुर्गादास को सहयोग मिला। महाराजा जसवतसिंह की हाड़ीराणी जसमादे ने मुगलों के विरुद्ध तलवार उठाई। सारा राजस्थान विद्रोह की आग में जल उठा। उस समय भारी कड़े प्रतिरोध की आवश्यकता थी और वैसा ही राजस्थान ने किया। महावीर दुर्गादास के अप्रतिम शौर्य प्रदर्शन को इस दोहे में कितनी असाधारण कुशलता के साथ व्यक्त किया गया--

माई एहड़ापूत जण जेहड़ा दुर्गादास।
बाँध मुड़ासो राखियो बिन खम्भे आकास॥

(माता, पुत्र पैदा करे तो ऐसा करे जैसा दुर्गादास, जिसने सिर पर मुड़ासा बाँध कर आकाश को बिना खम्भे रोक लिया।)

महावीर दुर्गादास के विषय में राजस्थानी में बहुत कुछ लिखा गया है। परन्तु यह दोहा सर्वोपरि है। दोहे के दूसरे भाग में कवि ने दुर्गादास की भार-क्षमता और उस समय की विपन्नता का थोड़े से शब्दों में गजब का वर्णन किया है। दुर्गादास ने सचमुच गिरते हुए आकाश को रोक लिया था। महाराणा राजसिंह के विषय में तत्कालीन कवि कल्याजी नाई की रचना सुनिए--

अजे गग खलहलै, अजे मांजलै हुतासण।
अजे सूर भलहलै, अजे सामत इन्द्रासण॥

अजे धरणी अहमंड, अजे फल फूल धरत्ती ।
अजे नाथ गोरकूख, अजे अहमात सकत्ती ॥
पवन हिलोहल धू अचल, वेद धरम वाराणसी ।
पतसाह हूँत चीतोडपति, राण मिलें किम राजसी ॥

(अभी गंगा बह रही है, अभी अग्नि में दाहकता है, अभी सूर्य ज्योतिर्मय है; अभी इन्द्रासन स्थिर है, अभी पृथ्वी और ब्रह्माण्ड अपनी सीमा पर हैं, अभी पृथ्वी पर फल फूल विद्यमान हैं, अभी गुरु गोरखनाथ वर्तमान हैं, अभी माता शक्ति मौजूदा है, अभी पवन गतिशील है, ध्रुवतारा अटल हैं, वेद-धर्म और काशी वर्तमान है, तो फिर चित्तौड़पति महाराणा राजसिंह बादशाह से क्योंकर मिल सकते हैं ।

इस छप्पय की मार्मिकता गजब की है इसकी अभिव्यंजना बड़ी गहरी है। कवि ने भारतीयता का बड़ा भव्य वर्णन किया है। खलहलै, प्राजल, मलहलै आदि शब्द ध्वनीमय एवं चित्रोपम हैं ।

हाडीराणी जसमोद का डिंगल-गीत सुनिए:—

दिन माचै द्वन्द खूदणै दमगल । पतसाही चढ़ जलल पड़ै ॥
हाडी चढ़ फौजा हलकारै । लाडी जसवंत तणी लडै ॥ १ ॥
ऊगै दीह जवन चढ़ आगै । सुहड़ाँ भड़ाँ लियाँ बहु साथ ।
औरंगसाह धसै किम आघो । भागो ही सुणजे भाराथ ॥ २ ॥
भाऊ जिसा अरोड़ा भाई । भड़ जसवंत जेहा भरतार ॥
खिगधां खड़ण चलाणै चोटां । सत्रसल सुता बजाणै सार ॥ ३ ॥
पख दोवँ विमल सासरो पीहर । जेठ अमर सत्रसाल जणो ॥
राणी पाणी धरम राखियो । तागो हिन्दुस्थान तणा ॥ ४ ॥

(उस दिन घमासान युद्ध हुआ । घोड़े पर चढ़कर हाड़ी रानी ने शत्रु-सेना को ललकारा। महाराज जसवन्तसिंह की प्रियतमा ने शत्रुओं से खूब लोहा लिया ॥ १ ॥ सूर्य के उदय होने पर बहुत से योद्धाओं को लेकर औरंगजेब चढ़ आया। वह आगे कैसे बढ़ सकता था, उसे तो युद्ध स्थल से भागना ही पड़ा ॥ २ ॥ जिसका भावसिंह हाड़ा जैसा वीर भाई हो, जिसका जसवन्तसिंह राठौर

जैसा पति हो, और जिसका छत्रसाल जैसा योद्धा पिता हो, वह हाड़ी रानी रणक्षेत्र में तलवार के हाथ क्यों कर न दिखलावे ॥ ३ ॥ जिसके दोनों पक्ष पीहर और ससुराल निर्मल हैं। अमरसिंह जिसका जेठ है और छत्रसाल जिसका पिता है। उस हाड़ी रानी ने हिन्दुस्थान का मान, उसका धर्म और उसकी परम्परा को बचा लिया ॥ ४ ॥

जैसी हाड़ी रानी थी, वैसा ही उसका यह गीत है। इस काव्य का वेग देखने लायक है। कवि ने इस में वीर क्षत्राणी का पूर्ण चित्र उतारा है। वह इस गीत के द्वारा साक्षात् शक्ति का दर्शन करने में सफल हुआ है। जन विद्रोह के आगे औरंगजेब मुगल साम्राज्य को न रोक सका। उसके जीते जी ही साम्राज्य को घुन लग गया और, मरने के बाद तो मुगल भारत की प्रमुख शक्तियों की गिनती में भी नहीं रह सके। दिल्ली दरबार का कोई बादशाह दमदार न निकला। दक्षिण में मराठों की शक्ति आँधी के समान उठी और वह समस्त भारत में छा गई। अठारहवीं शताब्दि के प्रारम्भ में आमेर का सवाई जयसिंह और बाजीराव पेशवा भारतीय राजनीति के दो प्रकाशमान नक्षत्र थे। इनकी पारस्परिक सहानुभूति भी थी। इन्होंने मुगल सम्राट की परम्परा को समाप्त न करके उसको अपनी मुट्ठी में रखना ही ज्यादा उचित समझा।

सवाई जयसिंह के बाद राजस्थान के किसी राजा ने भारत के राजनैतिक मंच पर प्रमुखता के साथ स्थान ग्रहण नहीं किया। वे अपने राज्य तक को समुचित तौर पर नहीं संभाल सके। सारा राजस्थान आन्तरिक कलह में जर्जरित होगया। मराठा सेनापतियों की अर्थलोलुपता ने इस भूभाग को अपना क्रीड़ा क्षेत्र बनाया। फलस्वरूप राजस्थान से मराठों का विश्वास उठ गया। भारत वर्ष के सामने अफगानों की विकट समस्या आई। यहाँ की प्रजा नादिरशाह और अहमदशाह के हमलों में बुरी तरह लुटी और कटी। दिल्ली की दुर्गति हुई। जब पानीपत के मैदान में मराठे और अब्दाली भिड़े तो राजस्थान के राजा दूर बैठे तमाशा देखते रहे। भारी जन संहार हुआ। मराठे हारे और अब्दाली चला गया। दिल्ली के तख्त पर मुगल बादशाह विराजमान था। मराठों ने फिर ताकत पकड़ी। और इन्होंने राजस्थान को अपने शिकंजे में कस लिया—

सींहाँ सिर नीचा किया, गाडर करै गलार।
अधपतियाँ सिर ओढणी, तो सिर पाघ मलार॥

(सिंह कहलाने वाले राजपूत सरदारों ने अपने सिर नीचे कर लिए और भेड़ चराने वाला मल्हारराव होलकर आज बड़ी बड़ी बातें बना रहा है। अधिपतियों के सिर पर तो जनाना वेष ओढ़णी है और मल्हारराव, तेरे सिर पर मर्दानगी की निशानी पगड़ी है॥

तत्कालीन परिस्थिति का इस दोहे में अच्छा विवरण दिया गया है। सिंह, गाडर, गलार, अधपतियाँ, ओढ़णी और पाघ शब्द लाक्षणिक हैं। मुहावरों का प्रयोग उत्तम है। इस दोहे पर "गागर में सागर" वाली कहावत चरितार्थ होती है। राजस्थान पर मराठा-आधिपत्य इस दोहे में मानो मुख से बोल रहा है।

राजस्थान मराठों के आधिपत्य में चला गया। अब यहां के राजाओं की तलवार में ताकत नहीं रही। दिल्ली में भी मराठे ही सब कुछ थे। यद्यपि मुगल बादशाह मौजूद था फिर भी असल में इस समय भारत की राजधानी पूना थी और पेशवा ही भारत का सम्राट था। मुगल बादशाह को बनाए रखने की बाजीराव की नीति पूर्ववत चालू थी।

अफगान समस्या पानीपत की लड़ाई के साथ समाप्त हो गई। अब मराठों के सामने फिरंगी समस्या आई। पुर्तगाली, फ्रांसीसी अंग्रेज आदि पश्चिमी जातियाँ इस देश मे फिरंगी कहलाती थी। यह शब्द भारतीय जन साधारण मे बहुत लम्बे समय तक प्रचलित रहा। शुरू शुरू में इन्होंने दक्षिण भारत में अपने व्यापार केंद्र स्थापित किए। इन्होंने यहीं से धन कमाया और भारतीय सिपाही को भोड़ पर लड़ाकर व्यापार के साथ साथ राजनीति में भी एक ताकत बन बैठे। फिरंगियों ने भारतीय राजनीति में धोखा, दगा, छलकपट, हत्या, खून आदि दुर्गुणों का प्रवेश करके उसे दूषित कर दिया। उनका मुख्य हथियार भारतीय रजवाड़ों में गृह-कलह पैदा करवा देना था। दुर्भाग्यवश यह हथियार चला भी खूब। अठारहवीं शताब्दि के उत्तरार्द्ध का भारतीय इतिहास उनकी काली करतूतों से भरा पड़ा है।

उनको भारत में मराठों से मुकाबिला करना था। अठारहवीं शताब्दि की समाप्ति पर जब महामन्त्री नाना फड़नवीस ने इहलीला सवरण की, तो फिरंगियों की बन आई और वे मराठा रजवाड़ों पर हावी हो गए। अब भारत की मुख्य राजधानी पूना से उठकर कलकत्ते चली गई और अंग्रेज इस देश की प्रमुख शक्ति बन बैठे। इस समय स्वतन्त्रता का उपासक जसवन्तराव होलकर भारतीय राजनैतिक मन्च का एक देदिप्यमान नक्षत्र था। राजस्थान उसके अधिपत्य में था। यहाँ के राजा कौटुम्बिक कलह से जर्जरित हो रहे थे। फिर भी राजस्थानी जनता की आवाज कवि बांकीदास के मुख से सुनिए—

आयो इंगरेज मुलक रै ऊपर, आहसलीधा खांच उरा।
घणिया मरया नहीं धरती, घणियां ऊभागई धरा॥
फौजां देखन फौजां कीधी, दोयण करधान खलोड़ला।
रावाँ खाच चूड़े लाणदरैं, उपाहिज चूड़े गई पला॥
पल नह कर्या बापड़ा बोता; जोतां जोतां गई जमी।
द्विसत्रमास बादियो निसणी, भोम गयी सो लिखितभवेस॥
पूगां नहीं चाकरी, पकड़ी दीधो नहीं मडैठो देस।
बजियो भलो भरतपुर वालो, गाजे गजर धजरनभ गोम॥
पहलाँ सर साहिबरी पड़ियो, भड़ ऊभैं नहिं दीधी भोम।
महि जातां चीचातां महिला, ए दुय मरण तणा अवसाण॥
राखो रे किंहिक रजपूती मरद हिन्दु के मुस्सलमाण।
पुरजोधाण उदयपुर जयपुर, पहुथारा खूटया परियाण॥
आंके, गयी आवसी आंके बांको आसल करे बखाण।

(अंग्रेज इस देश में आया। उसने भय का पराक्रम तो मानों खैंच कर निकाल लिया। पुराने जमाने में यहाँ के भूस्वामी मर कर भी अपनी धरती दूसरे को नहीं लेने देते थे। अब तो उनके खड़े रहते उनकी धरती चली गई॥ १॥ शत्रुओं की सेना चढ़ आने पर भी उन्होंने सेना नहीं सजाई और उसका सहार नहीं किया। यह धरती अपने स्वामी के सुहाग चिन्हों समेत नव बधू के समान हरण करली गई॥ २॥ छत्रपतियों को लाज नहीं लगी। गढ़ पतियों पर शोक

छा गया। उन बेचारों ने कोई ताकत नहीं दिखलाई। बिना हाथ पैर हिलाये ही डूब गए। उनकी धरती उनके देखते देखते ही पराई हो गई॥ ३॥ दक्षिणी सरदार जसवंतराव होलकर दो चौमासों तक डटा रहा फिर भी धरती उसके अधिकार से निकल गई। यह तो विधाता का लेख था। पर उसने विदेशी की गुलामी स्वीकार नहीं की। मराठे ने देश को शत्रु के हाथ स्वयं नहीं सौंपा॥ ४॥ भरतपुरवाला भी खूब लड़ा। आकाश में उसकी तोपें खूब गरजी। जब तक अँग्रेज का सिर कट कर नहीं पड़ गया तब तक उसने खड़े खड़े अपनी धरती नहीं दी॥ ५॥ धरती जब जा रही हो, महिलाएँ जब सहायता के लिए पुकार कर रही हो, तो ये दोनों अवसर आदमी के लिए बिना आगा पीछा विचारे मर मिटने के हैं। अरे हिन्दू या मुसलमान कोई भी मर्द रजपूती की मर्यादा को रक्खो॥ ६॥ जोधपुर उदयपुर, जयपुर आदि के प्रभुवों तुम्हारे पूर्वजों का मार्ग अर्थात स्वाधीनता के लिए मर मिटने की परिपाटी अब बंद हो चुकी। भाग्य से यह धरती गई है और भाग्य से ही वापिस आएगी॥ ७॥

यह एक गीत ही बांकीदास को भारत के महाकवियों की श्रेणी में सम्मान प्राप्त करवाने के लिए काफी है। देश की पराधीनता के लिए कवि के दिल का दर्द देखिए। चारण परिपाटी के अनुसार वह राजाओं को कैसी फटकार सुनाता है और मृत्यु के मंगल मार्ग का उपदेश देता है। परन्तु अंत में खेद के साथ गीत समाप्त होता है। गीत में धणी चूके, बोतां, बजियां, चीचाता रजपूती, परियाण आदि शब्द लाक्षणिक हैं। कवि साम्प्रदायिकता से एकदम परे है।

जसवंतराव होल्कर के बाद अंग्रेजों के गुप्तमित्र अमीरखाँ के हाथ में राजस्थान का आधिपत्य आया। इस दस्यु ने इस ऐतिहासिक प्रदेश पर जो जुलम किए उनकी एक घटना कृष्णाकुमारी का विष पान है। इसके अलावा अंग्रेज भेदिए जेम्स टाड ने भी राजस्थान में आकर यहाँ के राजवंशो की कहानियों की कूटनीति की कलम से इस रूप में लिखा कि मुसलमान और मराठे मानों राजपूतों के जानी दुश्मन है। फलस्वरूप राजस्थान के रजवाड़े विदेशी अंग्रेजों की शरण में चले गए।

अंग्रेज अब हिन्दुस्तान के मालिक बन बैठे। जिस तरह उन्होंने यह देश

हथियाया। उसी तरह यहाँ राज करने लगे। उनकी साम्राज्य बुभुक्षा बढ़ती ही गई। हिन्दुस्तान ने अभी तक अपनी तलवार अपने हाथ से छोड़ी न थी। वह हाथ फिर उठा। यद्यपि व्यवहारतः दिल्ली का बादशाह कुछ भी न था, मगर सिद्धान्ततः वह भारत का सम्राट था। इसी तरह मराठा मण्डल का अग्रणी पेशवा बिठूर में बैठा था। सन् १८५७ में दोनों गरज उठे। उन्होंने स्वतन्त्रता के के पुजारियों का नेतृत्व सँभाला। देश भर के रजवाड़ों के पास बादशाह की अपील पहुँची कि फिरंगियों को हिन्दुस्तान से निकालने में सब एक हो जावें। मगर, कोई नतीजा नहीं निकला। राजस्थान के राजाओं ने सिपाहियों का नेतृत्व करना तो दूर रहा उल्टे अंग्रेजों का साथ देने में अपना लाभ समझा। परन्तु राजस्थान की प्रजा की सहानुभूति भारतीय नरसिंहों के प्रति ही थी। बस उस समय के कवि सूर्यमल की वीर सतसई के ये दोहे सुनिए।—

बीकम बरसा बीतियाँ, गण चौचन्द गुणीस।
बिसहर तिथ गुरु जेठ वदि, समय पलट्टी सीस ॥१॥
इण वेला रजपूत कौ, राजस गुण रजाट।
सुमिरण लगा वीर सब, वीरा रौ कुलवाट ॥ २ ॥
नथी रजोगुण ज्यां नरां, वा पूरौ न उफाण।
वै भी सुणता ऊफणैं, पूरा वीर प्रमाण ॥ ३ ॥
जे दोही पख ऊजला, जूझण पूरा जोध।
सुणवा वै सब सौ गुणा वीर प्रकासण बोध ॥ ४ ॥

(विक्रम संवत् के १९१४ साल बीतने पर जेठ वदि पंचमी गुरुवार को जमाने का दिमाग बदला ॥ १ ॥ इस समय वे राजपूत जो रजोगुण में सने हुए थे, वीरों के कुल मार्ग की याद करने लगे ॥ २ ॥ इस सतसई को सुनते ही वे पुरुष भी पूरे वीर के समान जोश में उबल पड़ते है जिनमें न तो रजोगुण ही है और न पूरा उफाण ही है ॥ ३ ॥ फिर उनका तो कहना ही क्या जिनके दोनों पक्ष उज्वल हों और जो जूझने वाले पूरे योद्धा हों। ऐसे भटों को तो इसके सुनते ही अपने में सौ गुनी वीरता अनुभव होगी।)

भारी बलिदान के बाद स्वातन्त्र्य संग्राम विफलता के साथ समाप्त हुआ।

आतंक जमाने के लिये अंग्रेजों ने निरीह प्रजा पर अमानवीय अत्याचार किए। बरतानिया की रानी भारत की सम्राज्ञी घोषित की गई। हिन्दुस्तान के हाथ से तलवार छीन ली गई। अंग्रेजों को भारतीय धनबल और जनबल की मनचाही लूट मिली फलस्वरूप वे संसार में कभी सूर्यास्त न होने वाले साम्राज्य के स्वामी बन बैठे।

राजस्थान के राजा पहिले मराठों के अधीन हुए और फिर अंग्रेजों के संरक्षण में चले गए। फिर भी 'हिन्दुआ सूरज" के लिए भारतीय लोक हृदय से सम्मान की भावना मिटी न थी। महाराणा को भारतीय जनता अब भी गौरव का प्रतीक मानती थी। जब महाराणा फतहसिंह सन् १६०३ के दिल्ली दरबार में शामिल होने के लिए चले तो राष्ट्रीय यज्ञ में अपना सर्वस्व होमने वाले क्रांतिकारी कवि केसरीसिंह सौदा ने उनको एक पत्र लिख भेजा जो राजस्थानी साहित्य में "चेतावनी का चूंगट्या" नाम से प्रख्यात है—

पग पग भम्या पहाड़, धरा छाड़ राख्यो धरम।
महाराणा र मेवाड़, हिरदै बसिया हिन्द रै॥ १॥
घण वलिया घमसाण, राण सदा रहिया निडर।
पेखन्तां फुरमाण, हलचल किम फतमल हुवै॥ २॥
नरियँद सह नजराण, झुक करसी सरसी जिका।
पसरेलो किम पाण, पाण छतां थारो पता॥ ३॥
सिर झुकिया संहसाह, सिंहासण जिण साम्हनै।
रलणा पंगत राह, फावै किम तोमें फता॥ ४॥
देखेला हिन्दवाण, निज सूरज दिस नेह सूँ।
पणतारा परमाण, निरख निसासा न्हांकही॥ ५॥
देखे अंजस दीह, मुलकेलो मन ही मनां।
दम्भी गढ़ दिल्लीह, सीस नमन्तां सीसवद॥ ६॥
अन्तवेर आखीह, पातल जे वातां पहल।
राणा सह राखीह, जिणरी साखी सिर जटा॥ ७॥

(पैदल पहाड़ों में भटकते फिरे, धरती छोड़कर धर्म को बचाया, इसीलिये महाराणा और मेवाड़ दो शब्द हिन्दुस्तान के हृदय में बस गए है॥ १॥ अनेक

युद्ध हुए तब भी महाराणा सदा निर्भय रहे। हे फतहसिंह, अब फरमान को देखते ही यह हलचल कैसे मच गई ॥ ३ ॥ दूसरे सब राजा झुक झुक कर नजराना दिखलाएँगे, यह उनके लिए तो सहज होगा, परन्तु हे फतहसिंह तेरे हाथ में तो तलवार रहती है। उसके रहते नजराने का हाथ आगे कैसे फैलेगा। जिसके सिंहासन के सामने बादशाहों के सिर झुके हैं, फतेहसिंह, आज उस पंक्ति में मिल जाना तुझे कैसे भावेगा ॥ ४ ॥ सब हिन्दुस्तान वाले अपने सूर्य की ओर स्नेह पूर्वक ताकेंगे परन्तु जब उनको तुम तारा (स्टार आफ इण्डिया) बने हुए दिखाई दोगे तो वे अवश्य ही निश्वास छोड़ेंगे ॥ ५ ॥ हे शीशोदिया, दिल्ली का दम्भी किला तुझे सिर झुकाते हुए देखकर मन ही मन हँसेगा और उस दिन को अपने लिए अभिमान का दिन समझेगा ॥ ६ ॥ पहले महाराणा प्रताप ने अंतिम समय में जो प्रतिज्ञाएँ की थी उनको आज तक सब महाराणाओं ने निभाया है और उसकी साक्षी खुद तुम्हारे सिर की जटा है।)

सन् १८५७ तक भारतीय जनता का नेतृत्व यहाँ के राजा महाराजाओं या बादशाहों ने ही किया परन्तु इसके बाद यह परम्परा समाप्त होगई और लोकनायक जन साधारण में से तैयार होने लगे। भारत का बीसवीं सदी का इतिहास इन जननेताओं के त्याग और बलिदान से ही तैयार हुआ है। जब तक राजाओं के हाथ जननेतृत्व रहा अंग्रेजों ने उनमें कौटुम्बिक कलह पैदा करवाया। इसके बाद जब नेताओं ने देश की बागडोर अपने हाथ में ली तो उन्होंने इस इस पवित्र भूमि में साम्प्रदायिकता का विषवृक्ष लगाया। परन्तु वे जनसाधारण को हर प्रकार का अनैतिक प्रयोग करने पर भी रोक न सके और भारत छोड़ो की सामूहिक आवाज़ के आगे इस देश को हर तरह से बरबाद करके छोड़ देने में ही उन्होंने अपना कल्याण समझा। फिरंगी चले गये परन्तु एक की जगह दो हिन्दुस्तान पैदा कर गए। भारत ने सार्वभौम सत्तात्मक गण राज्य होने की घोषणा की और एकीकृत राजस्थान का उदय हुआ। बीसवीं सदी का राजस्थानी कवि इस प्रकार गाता है—

"जय जन नायक"

बिजली चिमकी तेज की, आग्या नया विराण ।
भारत मा के भाल पर, मलक्यो तिलक सुजान ॥

निज हंसो मोती चुगै, मान सरोवर पाल ।
भारत को सेवक भयो, कृष्ण वीर गोपाल ॥
मालवीय कुलपत भयो, और देसपत मोय ।
गंगा जमना को भलो, पावन संगम होय ॥
मस्तक तो गिरिराज भो, हिय रत्नाकर रूप ।
आप समाई नाम में, मोतीलाल अनूप ॥
तूँ हिव धरती को धणी, थो सूँ मन आबाद ।
थेरै सिर परताप को, म्हारो गुण आजाद ॥
पूत जणै तो यो जणै, वीर जवाहरलाल ।
रात दिनां बस एक धुन, कद काटूँ जंजाल ॥
वल्लभ भाई नाम सूँ धरयां निरमल भेस ।
सत आयो संसार में, नरसीजी के वेस ॥
या धरती अमरतमयी, राजा इन्द्र प्रसाद ।
नीले चुअंता खेत ये, नित सरसै आजाद ॥
जीवन जोवट त्याग तप धीर गभीर सुहास ।
भारत मा को च्यानणो, धन धन वीर सुभास ॥
कोटि कोटि कलकंठ में, एक तान रस पूर ।
खाँ अब्दुल गफ्फार बस, देख्यो साचो नूर ॥
राजस्थानी च्यानणो, जमनालाल बजाज ।
रूपनयो किरणो नई, नया रंग रस साज ॥
कर्मयोग श्रीकृष्ण को, धारयो नर को रूप ।
गोतम की वाणी विमल, गांधी ओप अनूप ॥

मेवाड़ की पूर्वीय पर्वत माला–

(एक ऐतिहासिक और कलात्मक चित्रण)

(ले० श्री जोधसिंह मेहता, बी ए एल एल बी)

प्राचीन समय में, मेवाड की यात्रा करते हुए, किसी कवि ने काटा, भाटा, (पत्थर) पर्वत, राज दड और वस्त्र लोचन को मेवाड़ के पाँच रत्न बतलाए हैं। सारे राजस्थान में, मेवाड़ प्रदेश ही एक ऐसा प्रदेश है जहाँ कि पर्वतमालाओं की प्रचुरता है। इन पर्वत श्रेणियों में सुरम्य सघन वन और कल कल नाद करती हुई नदियां दृष्टि गोचर होती हैं। नैसर्गिकसौंदर्य, ऐतिहासिकसामग्री और कला पूर्ण पदार्थों की इन पर्वतमालाओं में न्यूनता नहीं है, आवश्यकता है सिर्फ इनके शोध करने की। पश्चिम की पर्वत पंक्तियाँ, पूर्व की पर्वतमालाओं से अधिक ऊँची हैं। पश्चिम के पहाड़ ३००० से ४५०० फीट तक समुद्र की सतह से ऊँचे हैं। सब से बड़ा पर्वत "जर्गा" का है जो सायरा तहसील जिला उदयपुर में है इसकी ऊँची चोटी ४३१५ फीट समुद्र की सतह से है। जर्गा का पर्वत बड़ा हरा भरा और रमणीक है। बनास नदी का उद्गम स्थान भी इन्हीं पर्वतों से है। फाल्गुन कृष्णा अमावस्या को यहां पर प्रतिवर्ष मेला भरता है। पूर्वीय पर्वत माला, २००० फीट समुद्र सतह से अधिक ऊँची नहीं है किंतु पश्चिमीय पर्वत श्रेणियों से अधिक सजल और सुन्दर है, पूर्वीय पर्वत माला को चार श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं। पहली श्रेणी देवली से जहाजपुर चँवलेश्वर और भीलवाड़ा तक चली गई है, दूसरी पंक्ति बसी से कनेरा तक पहुच गई है, जिसको "अरवा-

पनिया मगरा" कहते हैं-और तीसरी कतार जहाजपुर से निकल कर शकरगढ़, मांडलगढ़, होते हुए बेगूं तक चढ़ गई है, और चौथी कतार मांडलगढ़ से प्रारम्भ होकर बिजोलियां, भैंसरोड़ गढ़ होती हुई कोटा तक आगई है। अंतिमश्रेणी को 'ऊपर माल' कहते हैं। इन पर्वतों में झाड़ियाँ बहुत हैं। सिंह, रीछ, और बंदर बहुत रहते हैं। बनास नदी पहली श्रेणी के बराबर में बहती है-और चंबल नदी भैंसरोड़गढ़ के पास आगई है, माहाणी नदी बेगूं के पास से निकली है। इन तीन बड़ी नदियों के अतिरिक्त छोटी नदियाँ और नाले भी वर्षाऋतु में बहते रहते हैं। पर्यटन करने का मार्ग बड़ा दुष्कर है।

इस प्रकार पूर्वीय पर्वत मालाओं की भौगोलिक परिस्थिति को दिखलाने के बाद, हम अपने मूल विषय ऐतिहासिक और कलात्मक वर्णन पर आ जाते हैं-और उत्तर से यात्रा प्रारम्भ कर दक्षिण तक समाप्त करते हैं। वेस्ट रेल्वे का भीलवाड़ा स्टेशन से ५० मील के लगभग उत्तर में जहाजपुर नामी स्थान है-जहाँ मोटर बस जाती है। दूसरा मार्ग नसीराबाद स्टेशन से देवली होकर भी जाता है, यह मार्ग लम्बा है परन्तु सड़क ठेट तक बनी हुई है।

जहाजपुर—यह मेवाड़ का एक प्राचीन और प्रसीद्ध स्थान है। कहा जाता है कि राजा जनमेजय ने इस स्थान पर नागों (सर्पों) को होमने का यज्ञ किया था, जिससे इसका नाम 'यज्ञपुर' पड़ा और यज्ञपुर का अपभ्रंश 'जाजपुर' 'जहाजपुर' है। मूल स्थान जहाँ कि यह यज्ञ किया गया-था। जहाजपुर कस्बे से करीब १॥ मील दूरी पर अग्निकोण में है। नागेला तालाब के बाँध पर नागों के नौ कुलों (नौ कुली नाग) का होम यहाँ पर हुआ था। एक कुल अवशेष रह गया था, जो पृथ्वी पर विद्यमान है। इस तालाब से जो नदी निकली है उसका नाम 'नागदी' है जो कस्बे के पूर्व और उत्तर की सीमा बन गई है। इस नदी का जल सदैव बहता ही रहता है और लोग इसको पवित्र मान कर इसमें स्नान करते हैं। पुल और "खाकीजी के मन्दिर" के पास मे एक गर्म पानी का स्रोत (सोता) है जिसका पानी गर्म रहता है। जहाजपुर की कचहरी की इमारत बड़ी भव्य है। मुगल बादशाही तर्ज पर 'बारादरी' बनी हुई है, और उसके पीछे सुन्दर वाटिका है। कस्बे के उत्तर की पहाड़ी पर 'पावूजी' का छोटा सा मन्दिर है

जिसकी, मोटिस मीने मिन्नत करते हैं और दक्षिण बाजू महाराज 'गधेर' के महल भग्नावस्था में पड़े हुए हैं, जहाँ से आसपास का दृश्य नजर आता है। नागदी नदी के पूर्वीय किनारे पर, कस्बे के उत्तर-पूर्व की ओर 'बारह मन्दिर' एक स्थान में बने हुए हैं, जिसको 'बारा देवला' बोलते हैं। इन मन्दिरों की कारीगरी बड़ी सुन्दर है। दन्त कथा यह है कि राजा जनमेजय ने यहाँ सोमनाथ की मूर्ति की प्रतिष्ठा की थी। इन देवालयों की प्राचीनता, ऐतिहासिक दृष्टि से गोहिल नामक पुरुष के स्मारक स्तम्भ से जानी जा सकती है जो विक्रम सम्वत् १०८१ फाल्गुन वदि १३ स्वर्गवास तिथि का है।

जहाजपुर के आस पास में मीनों की बस्ती है। मीनें भीलों से भिन्न हैं और अपनी उत्पत्ति मंडोवर के पड़िहार राजपूतों से मानते हैं। इनमें से मोटिस मीने जिनका वर्णन ऊपर आया है, पँवार राजपूतों से अपने को निकले हुए बतलाते हैं। जहाजपुर के नजदीक का प्रदेश 'खेराड़' कहलाता है, और लुहारी, गाड़ोली, चौड आदि गावों में मीनों की बस्ती अधिक है। इस खैराड प्रदेश में कई प्राचीन स्थान हैं, जहाँ कि चौहान राजाओं के शिलालेख खुदे हुए हैं। जहाजपुर से ७ मील की दूरी पर चौड़ महादेव का प्राचीन मन्दिर है, और एक विशाल सूर्य भगवान का मन्दिर भी बना हुआ है। यहाँ पर रूठी राणी के मन्दिर के एक स्तम्भ पर वि०स० १२२५ ज्येष्ठ कृष्णा १३ का अजमेर के चौहान राजा पृथ्वीराज दूसरे (पृथ्वीभट) का लेख खुदा हुआ है उक्त लेख में पृथ्वीराज की राणी का नाम सुहव देवी लिखा है जो रूठी राणी के नाम से प्रसिद्ध है। दूसरे स्तम्भ पर चौहान राजा सोमेश्वर के दो लेख वि०स०१२२८ ज्येष्ठ सुदी १० और वि०स०१२२६ श्रावण सुदी १२ के हैं।

जहाजपुर से ८ मील दूरी पर, लुहारी गांव के नजदीक 'भूलेश्वर' महादेव का मन्दिर है। मन्दिर स्तम्भ पर चौहान राजा बीसलदेव (विग्रह राज चौथे) के समय का वि० स० १२११ का स्तम्भ खड़ा है। लेख ? पाया जाता है कि वि०स०१२३६ अषाढ़ वदि १ (२) को पृथ्वीराज (चौहान पृथ्वीराज तीसरे) के राज्य समय में बागडी रसखण के पुत्र जलसल का यह स्मारक उसकी माता काल्ही ने स्थापित किया था। (यह स्तम्भ उदयपुर के विक्टोरिया हॉल म्यूजियम में सुरक्षित है।)

जहाजपुर से दक्षिण पश्चिम २३ मील की दूरी पर, आँवलदा गाव के

बाहर एक कुंड के पास सती के स्तम्भ पर दो लेख हैं। एक वि०सं०१२३४ भाद्रपद सुद ४ का महाराजाधिराज श्री सोमेश्वर देव के राज, समय का है-इसमें डोड (डोडिये राव या राजा) सींगरा (सिंहराज) के पुत्र सिंहराउ (सिंहराज) की मृत्यु का लेख है। दूसरा वि०सं० १२४५ फाल्गुन सुदी ११ का महाराजा धिराज पृथ्वीराज (पृथ्वीराज तृतीय) के समय का है जिसमें डूड (डोडिया) रा जेहड की मृत्यु का उल्लेख है।

आंवलदा से उत्तर पूर्व करीब १ मील की दूरी पर चँवलेश्वरजी का पर्वत दृष्टिगोचर होता है। जहाँ पर प्राचीन समय की बालू (रेत) की पार्श्वनाथजी की प्रतिमा है। पौष कृष्णा १० (पौष कृष्णा ६ रात्रि से) को यहाँ पर मेला भरता है। मन्दिर की कारीगरी भी अति सुन्दर है। यह विशाल मन्दिर पर्वत की शिखर पर स्थित है और पत्थर की सीढ़िएं प्राचीन समय से बनी हुई हैं। आँवलदा से करीब ३ मील दक्षिण पूर्व में अमरगढ़ का किला नजर आता है। इसके सन्निकट ही महाराणा अरसीजी की उम्दा संग मरमर की छत्री है-जहाँ पर बूँदी के राव ने इनको सन् १२७३ ईस्वी में मारा था (देखो टॉड राजस्थान अध्याय १६ पृष्ठ ७३ जिल्द १) यहाँ पर समवाड़ और बावलास ठाकुर की छत्रियाँ भी बनी हुई हैं।

अमरगढ़ से दो मील दूर काछोला गांव है, जो पहले मेवाड़ की ओर से शाहपुरा नरेश के जागीर में था। यहाँ से लगभग १६ मील की दूरी पर मांडलगढ़ का मशहूर दुर्ग है। जन श्रुति यह है कि इसको मांड़िया भील के नाम पर गूजर चांदणा ने बसाया था। जब मांडिया भील बकरियाँ चरा रहा था, तब उसे पारस पत्थर प्राप्त हुआ जिससे उसका तीर सुवर्ण का हो गया। इस पत्थर को चांदणा ने भील से छीन कर पर्याप्त धन कर लिया और इस किले को बनाया। स्व०प्रसिद्ध इतिहासकार पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने शृंगीऋषि के स्थान का वि०सं०१४८५ के अप्रकाशित शिलालेख के आधार पर इस दुर्ग की आकृति मंडन वृत्त) * के समान होने से मंडल गढ़' (मांडलगढ़) माना है। यह दुर्ग

* सोपि क्षेत्र मही भुजा, निज भुज प्रताप दहो, भग्नो विश्रुत मंडलाकृत गढ़ो जित्या समस्त नारीन॥ ७॥ --शिला लेख।

कई बार मेवाड़ से चला गया और कई बार वापस आया है। पहले अजमेर के चौहानों के राज्य में था और शायद उन्होंने बनवाया हो। जब कुतुबुद्दीन ने अजमेर का राज्य सम्राट पृथ्वीराज के भाई हरिराज से छीना तब इस किले पर मुसलमानों का अधिकार हुआ। थोड़े दिनों के बाद हाड़ोती के चौहानों ने मुसलमानों से छीन लिया और फिर हाड़ों से महाराणा खेता (क्षेत्रसिंह) ने ले लिया। इसके पहले गुजरात के बादशाह मुजफ्फर शाह ने जीता और उससे मालवा के महमूद खिलजी ने पन्द्रहवीं शताब्दि के मध्य में दो बार धावा किया जिसके पश्चात् मुगल सम्राटों के आधीन हो गया और उनसे वापस सन् १७ ६ ईस्वी में मेवाड़ के राणा के कब्जे में आया।

यह दुर्ग समुद्र की सतह से १८५० फीट ऊँचा है और करीब आधा मील लंबा है इसके चारों ओर कोट बनी हुई है जिनके बड़ी २ बुर्जें हैं। यहाँ पर दो जलाशय सागर और सागरी के नाम से पुकारे जाते हैं। जिनका जल घुटी हुई भंग के समान हरा है। इस कुंड को महता अगरचन्द (किले के पुराने अध्यक्ष) ने बनवाया था। जिसका पानी दुष्काल में भी नहीं सूखता। इस किले में ऋषभ देव का जैन मन्दिर उंडेश्वर और जलेश्वर के शिवालय अलाउद्दीन के मुसलमान हाकिम की कब्र और किशनगढ़ के राठौड़ रूपसिंह के महल बने, हुए हैं।

मांडलगढ़ तहसील में भणाय नामक प्राचीन स्थान है। पुरातत्ववेत्ताओं तथा इतिहास प्रेमियों को यह स्थान अवश्य देखना चाहिए। प्राचीन नगर के चिन्ह बाजार, महल, गजशाला, (हाथियों को बांधने के खूंटे) आज भी दिखाई देते हैं। यहाँ पर एक बड़ी अदभुत बावड़ी बनी हुई है जिसमें १०८ कमरे हैं। इन बावड़ी की सीढ़ियाँ सुन्दर और घुमावदार है। शिल्पकला की दृष्टि से भी यह बावड़ी देखने योग्य है। भणाय की बावड़ी कहलाती है क्योंकि पास का गाँव भी भणाय के नाम से विख्यात है (गाँव और बावड़ी दोनों का जलेश्वर महादेव की (जिनका यहाँ मन्दिर है) दंत कथाओं से सम्बन्ध होना कहा जाता है।

बेगू—मांडलगढ़ से बेगू १४ मील की दूरी पर है। यह मेवाड़ के चूंडावत सरदार (चूंडा के वंशज) के ठिकाने का कस्बा है। इसके पास ही ब्राह्मणी नदी निकली है। बेगू में रावत जी के महल और बगीचा किले पर बना हुआ है। महलों में एक अनोखो शिला है जो पानी पर तैरती है। यह पत्थर नाव की

शक्‍ल का होकर वज़न में पांच छः मन है। चार व्यक्तियों से यह पत्थर उठ नहीं सकता। कहा जाता है कि रावत जी के पूर्वज देवीसिंहजी की दैविक शक्ति से यह पत्थर की नाव पानी में नहीं डूबती। लेखक ने पानी के हौज में इस बड़े पत्थर को तिराते हुए देखा है। जब जमीन से उठा कर, पानी में यह पत्थर रखते हैं तब पत्थर को उठाने वाले स्नान कर और धूप देकर निम्नांकित दोहा बोलते हैं पानी पत्थर के किनारे तक बना रहता है और वह जल मग्न नहीं होता। दोहा—

"देवा थारी देवगत; हरि आए इक होद॥
पाणी पर पत्थर तिरै; सत राखे सीसोद॥"

गाँव के सन्निकट दो मन्दिर एक समान के बने हुए हैं। और किले के सामने एक भव्य कुंड भी दृष्टिगोचर होता है। यहाँ की रंगाई और छपाई भी बड़ी सुन्दर होती है। इस तरफ धाकड़ जाति के कृषक बहुत हैं जो बड़ी मेहनत के साथ खेती करते है।

बेगूं से करीब १० मील की दूरी पर ऊंचे पहाड़ चढ़ कर 'जोगनियां माता' नामी स्थान आता है जहाँ का प्राकृतिक सौंदर्य्य निहारने योग्य है। एक छोटीसी नदी इस स्थान से नीचे दर्रे में गिरती है जिससे जल प्रपात होता रहता है। भूगर्भ से भी पानी, कृत्रिम गौमुख द्वारा बाहर निकलता है और वह दो कुण्ड में गिरता है। ऐसा कहा जाता है कि इस स्थान की देवी के मन्दिर में बहुधा लोग अपनी जिह्वा को काट कर चढ़ाते थे जो फिर दो महीने में वापस नई आजाती थी। सिंह चीतें और भालुओ का यहाँ निवास स्थान है और चौर भी चोरी करने के के पहिले इस मन्दिर में आकर मिन्नत करते हैं, इसके सामने की पहाड़ी पर बंबोदा नाम का गढ़ है जिसके कोट और मन्दिरों के कुछ चिन्ह दूर से दिखाई देते हैं। एक दो मंजिली ऊँची मीनार भी मौजूद है जहाँ से आस-पास के प्राकृतिक दृश्य बड़े सुहावने दिखाई देते है

मैनाल—जोगनिया माता से उत्तर पूर्व में ४ मील के फासले पर 'मेनाल' नाम का प्राचीन और प्रसिद्ध स्थान है जहाँ से मैनाली नदी १०० फीट ऊँचे से बड़ी वेग के साथ पहाड़ों के बीच में गिरती है। जल प्रपात वर्षाकाल में जब जोर से होता है तब दृश्य बड़ा मनोहर हो जाता है और पानी मोतियो की मालाओं

के रूप में दिखाई देने लगता है। मैनाल महानाल (बड़े नाल) के नाम से पुकारा जाता है जहाँ कि प्राचीन भग्नावस्था में कई शिव मन्दिर और मठ देखने योग्य हैं। यहाँ से विशाल कोट और उसके गिरे हुए बड़े बड़े पत्थरों को देख कर अनुमान होता है कि यहाँ पर किसी समय में बड़ी आबादी रही होगी। ये मन्दिर और मठ, बारहवीं तेरहवीं शताब्दी के जान पड़ते हैं "कर्नल टॉड ने" चत्तौड के राणा समरसी के समय मे दन्त कथाओं के आधार पर रूठी रानी के महल और मन्दिर का निर्माण होना माना है किन्तु वि० स० १२२४ (११६८ ई०) क शिलालेख से अब ज्ञात होता है कि अजमेर चौहान राजा पृथ्वीदेव (पृथ्वीराज दूसरे) की रानी सुहल देवी (रूठी रानी) के बनाए हुए रूठी राणी के महल' तथा 'सुहलेश्वर शिवालय' हैं। महानाल देव का बड़ा शिव मन्दिर यहाँ पर है जिसका शिल्प बड़े ऊँचे दर्जे का है। मन्दिर के दरवाजे पर लकुलीश की मूर्ति और इसके सामने बड़ा वृषभ वाहन और विशाल तोरण विद्यमान है। इसके पीछे "एक सुन्दर कुण्ड है जहाँ से ऊँचे स्तंभों पर बनी हुई पाषाण की नाली द्वारा मन्दिर में जल पहुँचाया जाता था।" इस मन्दिर के पास एक बड़ा दो मंजिला मठ भी है जिसकी दूसरी मंजिल के स्तम्भ पर अजमेर के चौहान राजा पृथ्वीराज द्वितीय के समय का वि० स० १२२६ (सन् ११६६ ई०) का शिलालेख मिलता है। इस शिलालेख से मालूम होता है कि भावब्रह्म मुनि ने इसको उपरोक्त नृपति के समय में बनवाया था। स्वर्गीय इतिहासकार प० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने यहाँ पर एक विशाल सुन्दर कुण्ड होने और यहाँ पर कर्नल टॉड को स० १४४६ का लेख मिलने का वर्णन किया है और यह हाडा शाखा वाले चौहानों के प्राचीन इतिहास का उल्लेख करते हुए किया है। इस शिलालेख का पता नहीं चलता। सम्भव है कि अन्य शिलालेखों के साथ कर्नल टॉड इसको विलायत ले गये हों।

बिजोलिया—मैनाल से २ मील के अन्तर पर 'बिजोलियाँ' नाम का दूसरा बड़ा ठिकाना (जागीरदार का स्थान है, जहाँ के राव पँवार राजपूत हैं। बिजोलियाँ का असली नाम 'विंध्यावली' है जैसा कि प्राचीन शिलालेखों में वर्णन आता है ऐसा कहा जाता है कि हूण राजाओं ने सब से प्रथम 'बिजोली' जैसे करने बसाए थे। उसके बाद चौहान राजाओं ने सामन्त से लेकर सोमेश्वर

तक अपना आधिपत्य जमाया था और फिर गहलोत राजपूतों ने अपने अधीनस्थ किया । (Epiraphia Indica Vol X X VIth 846.) । यह वर्णन बीजोलियाँ के चट्टान पर खुदे हुए वि० सं० १२२६ के शिलालेख में मिलता है जिसमें सांभर और अजमेर के चौहान राजाओं की वंशावली लिखी हुई है । बिजोलियाँ शिल्प शास्त्र तथा पुरातत्त्व शास्त्र की दृष्टि से तथा, पुरातत्त्व विज्ञान से भी विख्यात है । ऊपर माल के पठार पर यह एक छोटा सा कस्बा है जो चारों ओर बड़े संगीन पत्थरों के कोट से घिरा हुआ है । बिजोलियाँ के पूर्व मे कोट के पास में तीन शिव मन्दिर बहुत प्राचीन लाखों रुपये की लागत के बने हुए हैं । हजारेश्वर (सहस्रलिंग) के मन्दिर में एक शिवलिंग के ऊपर छोटे छोटे हजारों लिंग खुदे हुए हैं । यह अद्वितीय नमूना है । इसी मन्दिर में खुदाई का काम बहुत बढ़िया है उंडेश्वर के मन्दिर में एक लेख वि० स० १२३५ (आगे का अंक लुप्त है) यहाँ से सन्निकट ही मन्दाकिनी नाम का कुण्ड है जिसको गंगा के समान पवित्र मान कर लोग स्नान करते हैं । इनकी शिलाओं पर कई यात्रियों ने अपने नाम और सम्वत् खुदवाए हैं । यह कुण्ड सम्वत् १३२६ का बना हुआ है और ७० फीट के करीब लम्बा चौड़ा है ।

बिजोलियाँ के पौन मील की दूरी पर जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथ का विशाल मन्दिर एकांत स्थान में स्थित है और एक सुन्दर वाटिका तथा कुण्ड भी अच्छा निर्माण किया हुआ है । यहाँ पर पांच जैन-मन्दिरो का समूह होने से पंचायतन कहते है सन् ११७० ईस्वी का बना हुआ यह मन्दिर है जिसके शिखर ही का पूजन होता है । मन्दिर का शेष भाग पृथ्वी में निमग्न होना कहा जाता है । शिखर के ऊपर २३ छोटी छोटी जैन प्रतिमाएँ हैं और बीच में स्थान खाली है । इस शिखर वाले मंदिर के सामने ३६ फीट लम्बा और २५ फीट चौड़ा सभा मण्डप है जिससे इस मन्दिर की प्राचीनता प्रकट होती है । मन्दिर के सामने दो मान स्तंभ हैं जिन पर जैनतीर्थंकरों की तथा मुनिश्वरों की मूर्तियाँ खुदी हुई हैं । एक स्तभ पर प्रसिद्ध जैन साधु श्री कुन्द कुन्दाचार्य की पट्टावली के श्री धरमचंद का विवर्ण न आता है । समीप ही मन्दिर के सामने एक विशाल वाटिका है जो फलफूल के वृक्षों से आच्छादित है । नौ चौकी (नवचौकी) नाम की इमारत भी बगीची के पास ही आ गई है जिसमें नौ चौक स्पष्ट दिखाई देते हैं और १६ खम्भे

होकर खुला हुआ दरीखाना है। उत्तर दिशा में ६० फीट समकोण कुण्ड है जिसका जल बड़ा निर्मल है। इसके भीतर एक दरवाजा है जो बावड़ी की तरफ ले जाता है। इस कुण्ड को "रैवती कुण्ड" और इसके निकटवर्ती नदी को 'रैवती' नदी कहते हैं। इसके उत्तर दिशा में दो विचित्र शिलालेख एक ११॥ फीट लम्बा और ३॥फीट चौड़ा और दूसरा १५ फीट लम्बा और ५ फीट चौड़ा चट्टान पर खुदे हुए है। ये दोनों *शिला लेख* आज भी सुरक्षित है और सेठ श्रीधर के पुत्र लोलाक के खुदवाए हुए हैं पहले शिला लेख पर 'पृथ्वीराज रासा' की वंशावली संस्कृत भाषा में है। दूसरे शिलालेख पर श्री सिद्ध सूरि रचित उत्तम पुराण संस्कृत भाषा में खुदा हुआ है जिसकी ५२ पक्तियाँ साफ २ पढने में आती है। उदाहरण के लिए कुछ श्लोक उद्धृत करते हैं।

"अज्ञान तिमरा धाना त्रैलोक्ये सर्वजन्तु नाम्।
नेत्र सुन्मीलितयेत त नादे विशद प्रभुम् ॥ २ ॥
कलौ युगे महाघोरे नराणा मल्प बुद्धिनाम्।
येन मुक्ति पार्थ ' 'सुतीर्थं प्रकटी कृतम् ॥ ३ ॥
निगृहीतेन्द्रिय ग्रामो महामारो महामति।
तस्मिन् समागमद्देव प्रभु के नापि हेतुना ॥
तप' कासा भणीयु'को ऋषि श्री स्वत्तम दर्शिमि ॥११॥

वैडूर्य चामीकर चारुचित्र' प्रशासित पुष्पित पाद पंचः।
विचित्रमाश्चर्य मयंच दृष्ट्वा, सगोतमस्त गिरिमारोह ॥ ३ ॥
इति सिद्ध सूरि विरचित. शिखर पुराणे प्रथम सर्ग ॥

उपरोक्त श्लोकों से यह विदित होता है कि जैनियों के २३वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ ने जिसको अधिक वर्ष नहीं हुए हैं, हाँ, अलबत्ता महावीर स्वामी के पूर्व ये तीर्थंकर अवश्य हुए हैं, यहाँ पर रैवती नदी के सन्निकट भीमवन में उग्र तपस्या की थी जिनकी परीक्षा के हेतु कमठ योगीश्वर ने पर्वत के पत्थर बरसाये थे किन्तु भगवान पार्श्वनाथ अपने ध्यान से किंचितमात्र भी विचलित नहीं हुए। वैसे तो पार्श्वनाथ चरित्र में पूरा विवर्णन है किन्तु यह एक ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध होता है और भविष्य में अनुसंधान करने के लिए यह स्थान बड़ा उपयोगी सिद्ध

हो सकता है।

बिजोलियाँ से अनुमान ९ मील की दूरी पर झाड़ोली नाम का गाँव है जहाँ पर प्राचीन कई शिव मन्दिर जीर्ण अवस्था में है। इन में से सबसे विशाल मन्दिर "वेजनाथ महादेव" का है जिसमें बहुत सुन्दर आकृति की "मूर्तियाँ" खुदी हुई हैं शिवलिंग के पीछे शिव की प्रतिमा है और ऊपर नवग्रहों की मूर्तियाँ बनी हुई हैं। एक ताक में दश भुजा देवी बैठी हुई है और दीवालों र भिन्न भिन्न प्रकार की आकृतियाँ खुदी हुई है। किसी आकृति में सिंह की शिकार बतलाई गई है किसी में गजारूढ़ अवस्था दिखलाई गई है। मन्दिर के चारों ओर छोटे साधुओं के समाधि स्थान है जो इस मन्दिर की प्रतिष्ठा करते थे। यहाँ पर तीन इमारते जैनियों की है जो जमीन की सतह से बहुत नीची है इनमें से मन्दिर का मन्डप अष्टकोण पहलु का बड़ा विचित्र है।

बिजोलियाँ से लगभग ४ मील पश्चिम की तरफ वृन्दावन स्थान है जहाँ पर टूटे हुए शिवालय है। लोग इसको ' कशोरी की पुतली" कहते हैं यह प्राचीन मन्दिर है और लकुलीश की मूर्ति द्वार पर खुदी हुई है।

झाड़ोली के ६ मील पूर्व में तथा बिजोलियाँ के तीन मील दूरी पर 'तिलस्मा' नाम का गाँव है। यहां पर भी कई प्राचीन स्थान हैं जिसमें चार मन्दिर,एक तोरण और एक कुण्ड है। इन चारों मन्दिरों में से तलेश्वर का स्थान मुख्य है लकुलीश की मूर्ति एवं नवग्रह इस मन्दिर में है। ग्यारहवीं शताब्दी का बना हुआ यह मन्दिर कहा जाता है। कुंड का पानी बड़ा स्वास्थ्य प्रद कहा जाता है। कोढी और खुजली के रोगी नित्य यहां पर स्नान करते रहते हैं और शंकर का इष्ट रखते है जिससे वे भले चंगे हो जाते हैं। इस प्रकार के लोग वहां पर अन्य व्यक्तियों का दिया हुआ अन्न खाते है।

तिलस्मा से सिंगोली (मध्य भारत) ८ मील की दूरी पर है और यहां से धोराव और धांगड़मऊ होते हुए भैंसरोड़गढ़ आते हैं। जो लगभग १६ मील के अंतर पर है। भैंसरोड़गढ़ भी मेवाड़ का पुराना ठिकाना है और चूंडावत सरदार यहां के राव हैं। यहाँ की छटा बड़ी निराली है। रावतजी के महल चंबल नदी के किनारे पर शान्त पानी में परछाई डालते हुए बड़ी शान से सुशोभित हो रहे हैं।

चम्बल नदी बड़ी गहरी है और नांवद्वारा एक किनारे से दूसरे किनारे तक इसको पार कर सकते हैं। भैंसरोड़गढ़ एक ऊँचे पहाड़ पर स्थित है और इसका कोट परकोट चारों ओर की समतल भूमि से तथा आस पास की पर्वत श्रेणियों से बड़ा रमणीक दिखाई देता है। और एकान्त स्थान में प्राचीन युग की याद दिलाता है। ब्राह्मणी और चंबल नदी का समागम भी यहीं पर होता है।

यहाँ से तीन मील उत्तर पूर्व की ओर चंबल नदी को पार करके एक बीभत्स और वीरान जंगल में आते हैं यह स्थान "बड़ोली" के नाम से प्रसिद्ध है। जहाँ पर सुन्दर कारीगरी के मन्दिर और मूर्तियाँ हैं। इस स्थान पर नैसर्गिक सौंदर्य के साथ, कृत्रिम कारीगरी का उत्तम समन्वय पाया जाता है जहाँ कि सिंह की भयंकर गर्जना हृदय में हलचल मचा देती है। किन्तु प्राचीन कला सौंदर्य एक क्षण के लिए मन का उद्वेग भुला देती है। बाड़ोली के प्राचीन मन्दिर सिर्फ मेवाड़ में ही विख्यात नहीं हैं किंतु भारतवर्ष में भी कारीगरी की दृष्टि से आबू के प्रसिद्ध जैन मंदिर तथा नागदा (उदयपुर में मन्निकट के सासबहू के मंदिर को छोड़कर दूसरा स्थान इसकी समानता नहीं कर सकता। भारतीय शिल्पकला के विज्ञाता फर्गुसन ने इन मन्दिरों के समूह के बारे में यह सम्मति प्रकट की है कि यह एक समय का सब से बढ़िया नमूना है। इनकी शैली और खुदाई बड़ी निराली है और भारतवर्ष में भी इसके मुकाबले का दूसरा नमूना नहीं मिलता। यहाँ के शेषशायी नारायण की मूर्ति के लिये तो यहाँ तक कहा है कि यह मूर्ति मेरी देखी हुई हिन्दू मूर्तियों में से सर्वोत्कृष्ट है। मन्दिर के स्तंभों पर पुतलियाँ ऐसी खोद कर निकाली गई हैं कि इनके कण्ठ की मालाओं का एक एक मोती गिना जा सकता है। शेषनाग पर विष्णु भगवान सोते हुए हैं। और शेषनाग की त्वचा की अद्भुत बनावट देखते ही बनती है और दृष्टि चकाचौंध हो जाती है। ये मन्दिर कब के बने हुए निश्चय रूप से नहीं कहा जा सकता—किंवदन्ती यह है कि राजा हूँण जिसने पहले चित्तौड़ के शाक में चित्तौड़ दुर्ग की रक्षा की, उसके बनाए हुए हैं। सब प्रसिद्ध इमारतें नवीं या दसवीं सदी की बनी हुई हैं। मन्दिर २४० गज समकोण अहाते में आ गया है जहाँ कि मनोरंजक इमारतें और खण्डहर दिखाई देते हैं। इनमें से राणा हूण का विवाह-मण्डप यानी श्रृंगार चँवरी, गनेश और नारद के मन्दिर एक किराड़ा और दो सीधे स्तम्भ जो शायद तोरण के इरादे से रखे हैं। अष्टमाता का मन्दिर त्रिमूर्ति (ब्रह्मा विष्णु और महेश) और कई सुन्दर-

वृत्ति के नमूने प्रसिद्ध हैं। इस मन्दिर के अहाते के बाहर एक जलाशय (कुण्ड) है, जिसके बीच में छोटी आकृति का मन्दिर बड़ा सुहावना बना हुआ है। इस मन्दिर के चारों ओर छोटे मन्दिर हैं जिनमें से एक मूर्ति भगवान नारायण की है जो समुद्र के हिलते हुए पानी पर अपना आसन लगाए हुए तिर रहे हैं। कर्नलटॉड तथा स्वर्गीय ओझा जी ने भी इसी स्थान की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है।

भैंसरोडगढ़ से तीन मील दूरी पर चूलिया नामका स्थान है। जहाँ कि नदी चंबल ३०-४० फीट ऊँचे पर्वतों के भू भाग में बड़े जोर शोर से बहती है और बड़ा कलरव करती है। यहाँ की 'लोढियाँ' (मसाला पीसने के सुन्दर २ रंग बिरंगे पत्थर) पानी के चक्कर खाने से अपने आप गोल बन जाती हैं। पत्थर की शिलाएँ पानी के वेग के कारण चूल्हे की तरह कट गई हैं, जिससे इस स्थान को चूलिया कहते हैं। यहाँ पर राजस्थान सरकार की हाइड्रोइलेक्ट्रिक स्कीम चल रही है जिससे चंबल का पानी रोक कर विद्युत शक्ति पैदा करने की महान योजना है।

———

राजस्थान में रचित हिन्दी का सबसे बड़ा संगीत ग्रन्थ

(ले० अगरचन्द नाहटा)

संगीत सम्मोहिनी विद्या है। उसका आकर्षण मनुष्य तक ही सीमित न होकर प्राणी मात्र तक नजर आता है। वह प्राणियों के आनन्द से उत्पन्न होता है और उसी को बढ़ाता है। संगीत की मधुरी तान से प्राणियों का चंचल मन स्थिर हो जाता है और इसके आनन्द से वे आपा भूल जाते हैं। सपेरे के पूँगी वादन से विषधर जैसा क्रूर प्राणी भी मस्त होकर फणों के नाचन द्वारा अपना आनन्द अभिव्यक्त करता है और उसी के कारण वह उसके वशवर्ती रहता है। हरिण जैसा चंचल प्राणी जो दौड़ में मनुष्य को ही नहीं घोड़े को पीछे छोड़ देता है संगीत की मधुरी तान से अपनी सुधबुध खोकर शिकारियों के फन्दे में फँस जाता है।

मनुष्य ने तो इस विद्या के विकास में बहुत बड़ा प्रयत्न किया है। प्रत्येक ध्वनि को उसने अपने विवेचन का विषय बनाकर संगीत के सम्बन्ध में एक व्यवस्थित शास्त्र ही बना डाला है। भारतवर्ष में हजारों वर्ष पूर्व संगीत के सम्बन्ध में गम्भीर विवेचना थी जिसके प्रमाण ऋग्वेदादि प्राचीनतम ग्रन्थ, जैनागम, बौद्ध जातकादि और पुराणों में भलीभाँति पाये जाते हैं।* जैन आगम स्थानांग, समवायांग, प्रश्नव्याकरण और अनुयोगद्वार में संगीत के सात स्वर और उनके लक्षण पाये जाते हैं। परवर्ती ग्रन्थों से उनके नामों में

---

* देखो पुरातत्व वर्ष ७ अ १ में प्रकाशित "भारतीय संगीत नुं अवलोकन" शीर्षक लेख।

कुछ भिन्नता पाई जाती है। अतः प्राचीन समय में संगीत सम्बन्धी जो नाम प्रचलित थे वे इन जैन ग्रन्थों में ही सुरक्षित मिलते हैं। राजप्रश्नीय आदि कई प्राचीन जैन ग्रन्थों में अनेक वाद्ययन्त्रों के वाद्य विधि के प्रकारों का वर्णन प्राप्त होता है। मध्य कालीन संगीत ग्रन्थों में पूर्ववर्ती पच्चीसों संगीत ग्रन्थों के उल्लेख व उद्धरण पाये जाते हैं जिनमें से कई ग्रन्थ आज प्राप्त नहीं हैं। हमारी उपेक्षावश भारतीय साहित्य के बहुत से प्राचीन ग्रन्थ इसी प्रकार लुप्त हो गये। संगीत ग्रन्थों ही की बात क्या–अब तो शास्त्रीय संगीत की पद्धति भी दिनों दिन ह्रास हो रही है। यदि सरकार और जनता ने इस ओर ध्यान नहीं दिया तो इस विशाल साहित्य और पद्धति का लोप हो जाना भी असम्भव नहीं। अतः समय रहते सावधान हो जाना बहुत जरूरी है।

हमारे प्राचीन साहित्यकारों ने तो साहित्य, और कला विहीन मनुष्य को बिना पूंछ का पशु तक कह डाला है। कला की व्यापक व्याख्या करने वाले मनीषि-साहित्यकार संगीत को भी कला के अंतर्गत मान लेते हैं। पर अन्य कलाओं से इसकी विशेषता व्यापकता व मौलिकता अधिक होने से प्राचीन विचारकों ने इसे स्वतन्त्र विद्या माना है और मैं इसी के पक्ष में हूं।

शास्त्रीय संगीत का प्रचार पुराने समय से दक्षिण में सर्वाधिक रहा प्रतीत होता है। पीछे से कुछ दक्षिणी संगीतज्ञ अन्य प्रान्तों में गये तब से वह सार्वत्रिक होगया। शास्त्रीय संगीत सम्बन्धी ग्रन्थों में संगीत दर्पण, संगीत रत्नाकर, संगीत पारिजात और संगीतराज बहुत प्रसिद्ध ग्रन्थ है और वे प्रकाशित भी हो चुके हैं। हिन्दी भाषा में हाथरस से "संगीत" नामक एक मासिक पत्र निकलता है और वहां से इस विषय के कुछ ग्रन्थ भी प्रकाशित हुए हैं।

भारत के बंगाल आदि प्रान्तों में संगीत का जैसा अच्छा प्रचार देखा जाता है, राजस्थान में वैसा नहीं है। पर पुराने समय में ऐसी बात नहीं थी। राजस्थान में भी संगीत का बहुत अच्छा प्रचार रहा है। जिसके फलस्वरूप संगीत के सम्बन्ध में राजस्थान में रचित बहुसंख्यक एवं बड़े बड़े ग्रन्थ बनाये गये है। राजस्थान के राजागण विद्या विलासी होने के साथ साथ कला और संगीत

के भी बड़े प्रेमी थे। संगीत और नृत्य के उनके यहाँ जलसे लगे रहते थे। अनेकों कलाकारों को उनके द्वारा सब समय आश्रय मिला है। मुगल साम्राज्य की कमजोरी के बाद तो राजस्थान में कलाकारों और विद्वानों का बहुत अच्छा जमाव हो गया था। जैपुर, बीकानेर आदि के कई राजाओं को तो संगीत से बड़ा ही प्रेम था। उनके आश्रय में बड़े २ संगीतज्ञ विद्वान रहते थे, जिनके बनाये हुये ग्रन्थ भारतीय संगीत साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। संस्कृत भाषा में मेवाड़ के महाराणा कुंभा ने पन्द्रहवीं शताब्दी में संगीतराज नामक बहुत ही महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ बनाया है। उपलब्ध संगीत ग्रन्थों में सम्भवत यह सब से बड़ा ग्रन्थ है। बीकानेर राज्य की अनूपसंस्कृत लाइब्रेरी में इसकी दो पूर्ण प्रतियां उपलब्ध हैं। भण्डारकर इन्स्टीट्यूट पूना में और उदयपुर सरस्वती भण्डार में भी इसकी प्रतियां हैं। बीकानेर की गंगा ओरिटियल सिरीज द्वारा इसका एक भाग प्रकाशित हुआ है। पर आगे के भागों के प्रकाशन की कोई व्यवस्था नजर नहीं आती। राजस्थान सरकार को राजस्थान का गौरव ग्रन्थ समझकर आगे के भागों के प्रकाशन की शीघ्र व्यवस्था करना चाहिये।

बीकानेर के महाराजा अनूपसिंहजी के आश्रित संगीत के विद्वान थे। उन्होंने महाराजा के नाम से अनूपरागसागर, अनूपसंगीत रत्नकर, अनूपसंगीत वर्तमान, अनूपसंगीत विलास, अनूपसंगीतांकुश, अनूपोद्देश, भावमंजरी, संगीत नृत्याध्याय आदि ग्रन्थ बनाये जिनकी हस्त लिखित प्रतियाँ तो अनूप संस्कृत लाइब्रेरी में विद्यमान है। जयपुर राज्य का पोथीखाना अभी यथावत् प्रकाश में नहीं आया। अतः उसमें संगीत सम्बन्धी कौन कौन से महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं एवं वहाँ के राजाओं के आश्रय में इस विषय के कितने ग्रन्थ रचे गये-अज्ञात है। पर महाराजा प्रतापसिंह साहित्य और संगीत के बड़े प्रेमी रहे हैं उनके आदेश से चार संगीतज्ञों ने मिल कर हिन्दी भाषा में एक बहुत बड़ा ग्रन्थ बनाया, जिसका परिचय कराना ही इस लेख में अभीष्ट है।

हिन्दी भाषा में विविध विषयक साहित्य का निर्माण का प्रारम्भ १७ वीं शताब्दि मे अधिक रूप में हुआ है। संगीत विषयक राग मालायें भी सत्रहवीं और १८ वीं शताब्दि में बहुत संख्यक रची गई। रागमाला सम्बन्धित चित्रों का

भी राजस्थान में बहुत अधिक प्रचार हुआ। चित्रों के भावों को स्पष्ट करने वाले पद्य इन चित्रों के ऊपर लिखे हुये पाये जाते हैं। इनमें से कुछ पद्य संस्कृत ग्रन्थों के हैं पर अधिकांश हिन्दी रागमालाओं के ही हैं। रागमालाओं की चित्रावली बनाने की परम्परा राजस्थान में आज भी कायम है। कुछ वर्ष पूर्व हिन्दी साहित्य सम्मेलन, उदयपुर के अधिवेशन में इसी शताब्दि के बनाये गये राग-मालाओं के सुन्दर चित्रों का प्रदर्शन हुआ था। एवं जोधपुर म्युजियम में अवलोकनार्थ जाने पर महामहोपाध्याय श्री विश्वेश्वरनाथ रेऊजी ने म्युजियम के एक चित्रकार के बनाये हुए रागमाला के नई शैली के चित्र दिखाये थे। मथुरा के कवि हरिवल्लभ ने हिन्दी पद्य में संगीत दर्पण नामक उपयोगी ग्रन्थ बनाया है। इसकी दो सचित्र प्रतियाँ मेरे अवलोकन में आई हैं। उनकी चित्रशैली राजस्थानी होने से उन चित्रों का निर्माण राजस्थान में ही हुआ सिद्ध होता है। इस ग्रन्थ में ३६ रागनियों के ३६ और अन्य १४ मिलाकर ५० चित्र हैं। इससे राजस्थान में संगीत का कैसा अच्छा प्रचार रहा है, इसका कुछ आभास मिल जाता है।

हिंदी भाषा के संगीत सम्बन्धी रचनाओं का कुछ परिचय ८ वर्ष पूर्व हिन्दी विद्यापीठ से प्रकाशित "राजस्थान साहित्य" पत्र के दूसरे अंक में मैंने संगीत विषयक हिन्दी ग्रन्थ' शीर्षक लेख में दिया था। उसमें खोज विवरणादि से ज्ञात २३ हिन्दी संगीत ग्रन्थों की सूची देने के पश्चात् मुझे प्राप्त अन्य १२ रचनाओं का विवरण आदि अंत सहित दिया गया था। इनमें से तीन ग्रन्थ मुसलमानों के बनाये हुए होने से विशेष उल्लेखनीय हैं। इस लेख के प्रकाशन के पश्चात् और भी कई हिन्दी संगीत ग्रन्थों का पता चला है। लन्दन आदि पाश्चात्य देशों में भी हिन्दी राग मालाओं की कई प्रतियें प्राप्त हैं। उन सबको मिलाने पर संगीत विषयक हिन्दी ग्रन्थों की संख्या ५० के लगभग पहुँच जायगी। इस लेख से तो केवल राजस्थान में रचित हिन्दी के संगीत ग्रन्थों का उल्लेख करते हुए विवेच्य ग्रन्थों का विशेष परिचय दिया जायगा।

राजस्थान में रचित हिन्दी के संगीत ग्रंथ

* सुर तरंग। महाराजा सुरताणसिंह के पुत्र सरदारसिंह रचित सं० १८०५ रचयिता बनेड़ा (मेवाड़) के राजवी थे।

---

* देखो व्रजभारती में प्रकाशित मेरा लेख० हमीरदपण की दो सचित्र

१ रागमाला। सागर कवि। इसकी प्रति हमारे संग्रह में है।

३ राग रत्नाकर राधाकृष्ण। राव राजा भीमसिंह के लिये सं० १८५१ मिगसर शु० ५, इसकी प्रति स्वामी नरोत्तमदासजी के संग्रह में भी है। स्व० पुरोहित हरिनारायणजी कहने अनुसार ग्रन्थ महत्व का है छपभी चुका है।

४ स्वर सागर, रचयिता बुधप्रकाश (चांदखां दुलहखां) यह जयपुर महाराजा प्रतापसिंह के सगीत गुरु थे।

५ रागमाला, रचयिता अज्ञात।

६ रागसागर, जोधपुर के महा० मानसिंह द्वारा रचित।

७ राधागोविंद सगीतसार, जयपुर महाराजा प्रतापसिंह कारित।

इनके अतिरिक्त किशनगढ के महा० नागरीदासजी का गुप्त रस प्रकाश, चरचरियाँ और उदयपुर के महाराणा सज्जनसिंह के रसिक विनोद का विषय मुंशी देवीप्रसादजी मु सिफ ने 'सगीत' लिखा है, पर यह सगीतमय होने समव हैं, सगीत शास्त्र नही प्रतीत होते।

उपयुक्त ग्रन्थों म स 'राधागोविन्द सगीतसार' का सक्षिप्त परिचय इस प्रकार है —

उपलब्ध सगीत सम्बन्धी सस्कृत ग्रन्थों में साङ्ग देव (१३वीं शताब्दी)रचित "सगीत रत्नाकर" ग्रन्थ बहुत ही महत्वपूर्ण है। इस पर दो सस्कृत टीकाएँ उपलब्ध हैं, वे (१ चतुर कल्लिनाथ २ सिंह भूपाल रचित) दोनों प्रकाशित भी हो चुकी हैं। "राधागोविन्द सगीतसार" मुख्यतया इसी के आधार से बनाया गया है। इसके रचयिता अपने विषय के प्रकाण्ड विद्वान् प्रतीत होते हैं। ग्रन्थ में विषय को बड़ी ही अच्छी तरह से स्पष्ट किया गया है और स्थान २ पर यन्त्र कोष्ठकों द्वारा उसे और भी सरलतापूर्वक समझाने की चेष्टा की गई है। ग्रन्थ अपने ढग का एक ही है। और परिमाण में सगीत रत्नाकर से भी बड़ा है।

---

२ देखो हिन्दुस्तान साप्ताहिक में लेख० जेसोरिया का लेख

प्रस्तुत राधागोविन्द संगीतसार की ओर मेरा ध्यानदवर्ष पूर्व संगीत विषयक हिन्दी ग्रन्थ' लेख लिखते समय गया था। इसके प्रथम खंड का परिचय मुझे सन् १९२४ में यू० पी० गवर्नमेंट प्रेस से प्रकाशित हिन्दी ग्रन्थों की खोज रिपोर्ट सन् १९१२-१४ के द्वारा प्राप्त हुआ था। पर उस समय मुझे यह कल्पना भी नहीं थी कि यह ग्रन्थ इतना बड़ा और विशद विवेचन पूर्ण होगा। राजस्थान के रत्न स्व० पुरोहित हरिनारायणजी ने इस का उल्लेख अपने सम्पादित 'व्रजनिधि ग्रन्थावली' के पृ० ४८ में महाराजा के परिचय के प्रसंग में किया था। आपने महाराजा के संगीत प्रेम का उल्लेख करते हुए लिखा है कि "संगीत के तो मानो आप आचार्य ही थे। आप के ही उत्साह से राधागोविन्द संगीतसार नामक विशद् ग्रन्थ सात अध्यायों में बना, जिसकी जोड़ का हिन्दी भाषा में इस विषय का दूसरा ग्रन्थ नहीं है। यह मुद्रित रूप में जयपुर पब्लिक लाइब्रेरी में भी विद्यमान है। परन्तु अशुद्ध छपा है। आप ही के समय में कवि राधाकृष्ण ने "रागरत्नाकर" बनाया जो बहुत सुन्दर छोटा सा संगीत का रीति ग्रन्थ है और छप भी गया है। आपके संगीत के उस्ताद चुघप्रकाशजी ने संगीत का एक उत्तम ग्रन्थ 'स्वरसागर' बनाया जिसमें बहुत बढ़िया चीजें लिखी हैं। ये महाशय अपने समय के अद्वितीय संगीत कोविद थे।"

उपर्युक्त उद्धरण से 'राधागोविन्द संगीत सार' के महत्त्वपूर्ण और विशद होने का पता चलता है। पर इसके परिमाण का ठीक अनुमान नहीं लगाया जा सकता। अभी जालंधर के एक हस्तलिखित ग्रन्थ विक्रेता (पृथ्वीसिंह जाडरा) ने प्रस्तुत ग्रन्थ की दो जिल्दें विक्रयार्थ भेजी तभी इसके परिमाण का सही पता लगा। इन दो जिल्दों में ग्रन्थ के ४ खण्ड ही हैं। जिनमें केवल तालाध्याय ही ५००० श्लोक के लगभग जितना बड़ा है। इसके अवलोकन पर संपूर्ण ग्रन्थ को देखने की इच्छा बलवती हो उठी और जयपुर पबलिक लाइब्रेरी से इस ग्रन्थ को भिजवाने के लिये कई परिचित विद्वानों को पत्र लिखे। पर यह ग्रन्थ लाइब्रेरी से बाहर नहीं दिया जाता, यह सूचना पाकर बड़ा खेद हुआ। अन्त में मुनि जिनविजयजी के साथ श्रीयुत पुरुषोत्तम मेनारिया के हमारे यहाँ आने पर उन्हें ग्रन्थ की कुछ आवश्यक बातें लिख भेजने के लिये कहा गया। इसी विवरण प्राप्ति की प्रतीक्षा में बड़ी इच्छा होते हुए भी इस लेख को यथा समय तैयार नहीं

कर सका। अभी श्री बद्रीप्रसाद साकरिया ने जयपुर में हिस्ट्री कान्फ्रेंस के अधिवेशन में हमने संग्रह की प्रदर्शनी करने के प्रसंग से जयपुर जाने पर मेनारियाजी के साथ जाकर जो इस ग्रन्थ का विवरण लाये उससे तीन महीने का थका हुआ प्रस्तुत लेख तत्काल तैयार कर प्रकाशित किया जा रहा है।

शार्ङ्गधर के संगीतरत्नाकर की भाँति इस ग्रन्थ में १ स्वराध्याय २ रागाध्याय ३ ताला ध्याय ४ प्रकीर्णाध्याय ५ वाद्या ध्याय ६ प्रबधा ध्याय और ७ नृत्याध्याय-ये सात अध्याय हैं। इनमें से मुझे प्राप्त हस्त लिखित जिल्दद्वय मे से प्रथम में तालाध्याय (३ रा) है। ये दो सौ पत्रों में यत्रादि कोष्ठकों के साथ लिखा हुआ है। प्रत्येक पृष्ठ में २१ पंक्तियां और प्रति पंक्ति २४ लगभग अक्षर होने से इसका परिमाण ७५०० श्लोक का होता है। केवल "ताल" पर इतना विस्तृत सांगोपांग विवेचन अन्यत्र कहीं देखने में, जानने में नहीं आया है यह प्रति पुस्तकाकार है व १६ वीं शताब्दि के अन्त में लिखी हुई है। दूसरी जिल्द में ७७ पत्रों में पंचम वाद्याध्याय, फिर ५१ पत्रों में छठा प्रबधाध्याय और ५७ पत्रों में ७ वाँ नृत्याध्याय है। यह जिल्द पत्राकार लिखित है पर पत्रों को सकरीं जिल्द बनादी गई है। इनमें पहला पंचम अध्याय एक व्यक्ति का लिखा हुआ है और छठा और सातवाँ दूसरे व्यक्ति का लिखा हुआ है। प्रति के अन्त में मिति कातीसुदी-१५ शनिवासरे लिपिकृत सवाईजयपुर मध्ये गौड़ ब्राह्मण रतीराम पठनार्थं सिंह साहब फतहसिंहजी वा,रावजी श्री रामसुखजी पुष्पिका लेख है। प्रत्येक पृष्ठ में १३ पंक्तियां और प्रतिपंक्ति ४२ लगभग अक्षर हैं। इस हिसाब से गणना द्वारा तीनों अध्यायों का परिमाण६५००श्लोकों का होजाता है। अर्थात् प्राप्त चार अध्यायों का परिमाण १४००० श्लोक हैं। अवशिष्ट तीन अध्यायों का परिमाण कम से कम ६००० माना जाय तो समस्त ग्रन्थ का परिमाण २०,००० श्लोक का होगा। संगीत जैसे विषय पर हिन्दी भाषा में इतना बड़ा ग्रन्थ रचा जाना बहुत ही गौरवपूर्ण बात है। अब प्राप्त ४ अध्यायों के थोड़े २ उद्धरण दिये जायगे जिससे ग्रन्थ की भाषा और विषय प्रतिपादन शैली का पाठकों को पता चल सके।

प्रकाशित ग्रन्थ की प्राप्ति विवरणानुसार ग्रन्थ के प्रारंभ में गणेश, सरस्वती

गौरीपति, और नन्द किशोर की स्तवना के पश्चात सूर्य राजवंश और जयपुर का वर्णन दिया गया है। इसके पश्चात् मूल विषय का प्रारम्भ होता है। प्रकाशित ग्रन्थ की रचना काल का निर्देश है या नहीं–कहा नहीं जा सकता। खोज रिपोर्ट में उद्धृत पद्यों से वास्तविक ग्रन्थकारों का पता चल गया है। यद्यपि अध्यायों के अन्त में इसे महाराजा प्रतापसिंहजी विरचित ही बतलाया है।

तालाध्याय का प्रारम्भ—

अथ तालाध्याय लिख्यते ॥
नाना मार्गैल्लपोवत्र यतीनाम् स्यात्कली निधौ।
तं हृदिस्थं शिवं नौमि चित्रवृत्तिमयं प्रभुं ॥

अथ तालाध्याय की वचनिका लिख्यते—

प्रथम गान प्रगट भयो सो तो, ब्रह्म माया बिना ब्रह्म पहिचान्यौं जात नहीं। यातैं ताल रूप माया प्रगट करी ॥ता॥ कहिये। ताके वे वाले। शिवजाल कहिये। तालस्वरूप पार्वतीजी। तरिवे की लालसा। जो कियो चाहे तो ताल मे प्रभु को गान करो। या लालसा तैं तारिजाय। अरूदोउ हाथ की ताल लागी तब शब्द भयो, सो शब्द ब्रह्म रूप है। प्रगट होय करिके सबन के कान में जाने रूप धरयो अरू अलक्ष्य है यातैं निर्गुण। सो स्वरूप धरिकैं सगुण भयो। तातै ताल लिये राग गान करियें तो निर्गुण ब्रह्म सगुण रूप धारयो है। यासूं याकौं काल कहत हैं तो माया अरू ब्रह्म सौं चार वस्तु पाइये–धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। गीत, नृत्य, नाटय, वाद्य–ए सब ताल की जाति के अनुस्वार में लेकैं करिये। बाहिर निकसैं ऐसो न करिये। सुर, असुर, थावर, जंगम–ऐ सब ताल की गति में हैं जातैं ताल बिना गान नहीं, गान बिना ताल नहीं। यातै ताल मुख्य है, सो यह ताल माया है। जैसे माया के अनेक भेद हैं, ऐसे तालहु के अनेक भेद हैं। जैसे ब्रह्म एक रूप है ऐसे राग को स्वर तो एक रूप है, अरू राग अनेक प्रकार के हैं। ऐसे ब्रह्म चैतन्य तो एक रूप है अरू थावर जंगम में अलक्ष व्याप रह्यो है। ऐसो ही राग श्रवण मात्र है अरू देखिवे में नहीं आवै है यतैं ब्रह्म रूप हैं। तैसे गान को स्वर तो एक रूप ही है अरूताल माया रूप है, राग ब्रह्म रूप है।

जो दोऊ हाथन को जो अन्तर रहै जो ताह ठांह अकास कहिये। अरू दोऊ

हाथ मिलिकैं शब्द उत्पत्ति होय सो काल कहिये, अकाल कहि जो 'ता' भी नांहि मिल्यो, 'ल' भी ना मिल्यो जहाँ ताई अकाल है। अरु जब इनको संजोग होइकैं शब्द भयो तब याकौं ताल कहिये सो यह काल है यह जानिये।

अथ ताल के दश प्राणन के नाम लिख्यते—१, प्राणकाल २, प्राणमार्ग ३ प्राणक्रिय ४, प्राणअग ५, प्राणग्रह ६, प्राणजाति ७, प्राणकला ८, प्राणलय ९ प्राणयति १०, प्राण प्रस्तार हैं।

ऐसे अणुध्रु त आदि सातों अगन के एक आदि अपनी बुद्धि की चाही जो संख्या तहां ताई तब प्रस्तार रचवि को क्रम इनमेरुन सों समझिये। इति श्री ताला-ध्याय वर्णन ग्रन्थ प्रशसा सम्पूर्ण ॥ इतिश्रीमत्त सूरजकुलमण्डन अरिगजमदखण्डन महिमण्डखाखण्डन सकल विद्याविशारद, धर्मावतार श्रीमन्महेंद्र महाराजाधिराज राजराजेन्द्र श्री १०८ श्री सवाई प्रतापसिंह देव विरचिते श्री राधागोविन्द सगीत सारे ताला ध्याय तीसरो सपूर्ण।

वाद्याध्याय–प्रारम्भ

अथ बाजेन को जा अध्याय में वर्णन कीजिये सो वाद्याध्याय है। तामें बाजेन के भेद है। तहां प्रसिद्ध चार ही बाजे हैं तिनकैं नाम कहैं श्री शिवजी कौं नमस्कार करैं हैं। ये शिवजी कैसे हैं–अपनी माया करिकैंया ससारकौं तत कहतैं विस्तार कियो अर अवनद्ध कहिये माया सौं जगत कौं बांध्यो है × × × × चारों मुख्य बाजेन को नाम कह्यो है। जा वस्तु में हाथवा डका या फौन के सजोग तैं नाद उत्पन्न होय सो बाजो कहिये, सो बाजो नाद को कारण है। तो बाजे के चारि प्रकार हैं। अथ चारों बाजेन लिख्यते—यहाँ पहले बाजे को नाम तत् कहिये अरु दूसरे बाजे को नाम सुखिर कहैं हैं। तीसरे बाजेन को नाम आनद्ध कहैं हैं। चौथे बाजे को नाम कहैं हैं। ये च्यारि प्रकार के बाजे हैं। तिनमैं तत १ अर सुखिर इनतें गीत उपजत है अर तीसरो आनद्ध या बाजे तैं गीत सुन्दरता उपजत है अर। घन– या बाजे तैं गीत को प्रमान जान्यौं जात है या तें गीत के च्यारि ४ प्रकार के बाजे कहे हैं। अथ च्यारू बाजेन को लछन लिख्यते—

प्रबन्धाध्याय का प्रारम्भ–

अथ प्रबन्धाध्याय लिख्यते ॥ तहाँ प्रथम श्री शिवजी को नमस्कार करैं हैं। स्वर १, राग २, ताल ३, वाद्य ४, प्रकीर्ण ५, आदिक गीत की सामग्री जिनके अनु-

ग्रहतें यह अग्यानी नर सहज में पावे, जगत में प्रतिष्ठावान होय, ऐसें श्री शिवजी, श्रीपार्वतीजी, श्रीगणेशजी, आदिक गणजुत हमारे विघन के समूह कों दूरि करो। हम ऊंनके चरणारबिंद कों नमस्कार करत हैं। अथ प्रबन्ध आदिक छंद में मुख्य गीत है ताको लछन लिख्यते—

जहाँ श्रोता के चित्त को अनुरंजन करे सो खडजादि सात स्वरन को क्रम उत्क्रम सों, राग रीति सों समूह, सो गीत जाँनिये। ता गीत के दोय भेद हैं—गांधर्व-१, गाँनन २-ये दोय जानिये। इनको लछन लिख्यते—

जो अनादि काल सों ब्रह्मा, शिव, भरत, हनूमान आदि मुनि सम्प्रदाय सों प्रसिद्ध और नारद तुंबराहि गंधर्व जाको बरनाव करे। च्यार पदारथ को दाता ऐसो जो गांन सो गांधर्व जानिये ?

जो लौकिक में जनरंजन के लिये बड़े बड़े नायक कंबल अश्वतर आदिक बरताव कियो, अपने गुण लब्धि सों मिल्यो, ऐसे जो मार्गी देसी रागन को रचिवो सो गांन जाँनिये २ तहां गांधर्व गांन को विस्तार— आलाप रूप प्रथम कह्यो हे। अब गांन के दोय प्रकार हैं- निबद्ध १, अनिबद्ध २- ये दोय गांन के भेद जाँनिये।

इति गीत के दस दोश नाम लछन सम्पूर्ण। जासों जो काऊ पुरुष गीत १, प्रबन्ध २, छन्द रचे सो सास्त्र कों समझ के गुण सहित दोष रहित गीत कीजिये। प्राचीन आचारिज के मत सों तब सकल मनोरथ सिद्ध होय ॥ इति प्रबंधाध्याय संपूर्ण। सुभं भवतु। कल्याणमस्तु ॥ श्र ॥ इति श्रीमत सूरज कुल मण्डन, अरिगन मद खंडन, महीमंडला मडन, सकल विद्या विसारद, धर्मावतार श्री मन्महेंद्र महाराजाधिराज राजराजेन्द्र श्री सवाई प्रतापसिंहजी विरचिते 'श्रीराधागोविंद संगीतसारे' प्रबंधाध्यायः षष्ट ६

नृत्याध्याय— अथ नृत्याध्याय लिख्यते—

तहाँ गीत १ वाजित्र २ कोकलरूप परमआनन्द कों उपाय जो नृत्य और नृत्य के अंग वर्णन करिवे को प्रथम अपने इष्टदेव संगीत शास्त्र के कर्त्ता श्री परमशिवजी हैं तिन को नमस्कार करें। यह जगत जिनके अंग कें कहिये शरीर

की चेष्टा सो प्रगट भयो है और वेदपुराण, स्मृति, महाभारत, उप पुराण, तन्त्र आदिक संस्कृत, प्राकृत, भाषा सरूप शब्द समूह जिनको वाचक कहिये- वचन बोलिबो हे और सूर्य, चंद्र, तारा आदिक ज्योतिचक्र जिनकी आहार्य कहिये आभूषण है और सात्विक कहिये आप शिवजी सतोगुण रूप हैं ऐसे जो शिवजी तिनकों साष्टांग दंडवत करत हैं, वे शिवजी हमारी बुद्धि निरमल करो।

अथ भरत मतंग हनूमान कोहल आदि सकल मुनीश्वर संगीतरत्नमाला पत्तर मिश्र 'संगीत पारिजातक' अशोक मल्ल राजरिषि सारंगदेव, ब्रह्मरिषि श्रनुष्टुप, चक्रवृत्ति कल्लिनाथ आदि संगीत आचारिज के मत सों नृत्याध्याय कहत हैं। जो त्रिविध ताप को हरें, सर्व सुख करें-ऐसो जो नृत्य ताके भेद लक्षण समस्त सामग्री हस्तक आदि शरीर चेष्टा, भाव आदि, मनकी चेष्टा, कटाक्ष आदि ध्यान इन्द्रियन की चेष्टा और जै जै इत्यादि वाणी की चेष्टा इन आदि सबन कों क्रम सों लछन लिख्यते।

तहाँ नाट्य वेद श्री ब्रह्माजी सों पाय कें भरतमुनि श्रीशिवजी के आगे रच्यो। तब श्री शिवजी प्रसन्न होय अपने तंडु नामा गणसों रचवाय कें तांडव नृत्य भरत को दियो और पारवतीजी सों रचाय कें लास्य नामा नृत्य दियो। साधारण नृत्य ब्रह्माजी सों भरतजी ने पायो है। वाही समय तांडवनृत्य मनुष्य लोक में आयो। वाही समैं बाणासुर की बेटी उषादेवी ने श्री पारवतीजी सों लास्य सीख कें द्वारिका में जाय श्रीकृष्ण भगवान की महाराणीन कों सिखयायो। उन राणीन सों सब देस की स्त्रीन में प्रगट भयो। यह नाट्य वेद चारों वेदन को सार हैं-धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पदारथ देत हैं। ईर्षा कों दूर करें और उछाह सुख बढ़ावत हैं। सो यह नाट्य तीन प्रकार हैं—नाट्य १ नृत्य २ नर्तन ३-ये तीन जॉनिये। अथ इनके रचिबे को समैं लिख्यते—

जय, राजतिलक, जात्रा, देवजात्रा, विवाह, प्यारे को संगम नगर प्रवेश, गृह प्रवेश, पुत्रजन्म आदि मंगलीक सब कारिज में रचिये। अथ नाट्य को लछन लिख्यते—

जामें रस मुख्य होय, अभिनय कहिये, मन सरीर की चेष्टा सो रस उपजावें सो नाट्य जानिये। या नाट्य कों नर्तन कहें हैं। अथ

अभिनय कों लछन कहें हैं—

जो विभाव आदि भावन कों प्रकट करि नृत्य देखिवे वारे कों सुख उपजावें ऐसी जो नट की चेष्टा सो अभिनय जानिये। यह अभिनय च्यारि प्रकार को हैं। जहाँ सरीर के हाथ पग आदि अंग की चेष्टा कीजिये सो अंगिक १, वचन सों जो प्रगट कीजिये सो कविता वाचक, हार मुकट कुंडल आदि आभरण धारिबो सो आहाय ३ और अश्रुपात रोमांच आदिक सों मनके सुख दुख को जताइयो सो सात्विक, ये च्यारि जाँनिये। या अभिनय की कर्तव्यता दोय प्रकार हैं-लोक धर्मा १ नाट्य धर्वा। तहां लोक धर्मी के दोय भेद हैं—मन की बात को प्रगट करें सो चित्ता-चित्तर्ंिका १,जो चेष्टा सों कमल आदि वस्तु को बतावनों सो बाह्य वस्तु अनुकारिणी २ अर नाट्यधर्मी के दोय भेद हैं-जहाँ सुकुमारता सो काहू की नकल की जिये सो कैसिकी वृत्तिभाव १ जहाँ हाथ पाँव की चेष्टा सों प्रगट करिबो जो लोग में प्रसिद्ध हैं जैसे हाथ के चलाइवे तें कारिजन की समस्या करिबो सो लोकामत स्वभाव २ इति नाटय लछिन संपूर्ण।

इसके आगे नृत्य, नर्तन, तांडव, और लास्य के लक्षण और अंग प्रत्यंग आदि के भेद, नृत्य करने वाले के भेद आदि अनेक ज्ञातव्य विषयों का सुन्दर विवेचन है।

अन्त—

वैराग्य उपजै घड़ी दोय घड़ी सो चंचल शांत रस, याकों ग्राम्य शांतरस कहें हैं। जो उपनिषद् श्री ······· आदिक के ग्यान तें संसार को अनित्य जानि, आत्मा को परम-आनन्द बढ़े सो सिद्ध शान्तरस २इति नवरस सम्पूर्ण। और नवरसन को हावभाव विभाव नायक नायकन के सर्व भेद साहित्य शास्त्र में समझिये और हु संगीत शास्त्रन सों समझिये। आनन्दयमहानन्द तांडवेन जगत्रम् कृपा कटाक्ष पूर्णाक्ष पार्वती सों जपत्व सों १ इति नृत्याध्याय सम्पूर्ण। इति श्रीसूरजकुल मण्डन अरिगनमदखंडत महिमण्डलामण्डन सकल विद्या विसारद धरमावतार श्रीमन्महेन्द्र महाराजाधिराज राजराजेन्द्र श्री सवाई-प्रतापसिंह विरचिते श्रीराधागोविन्द संगीत सारे नृत्याध्याय सप्तमः ७ समाप्तोयं ग्रन्थः मिति कार्तिक सुदि १५ शनिवासरे। लिपि कृतं सवाई जैपुर मध्ये गौड़

ब्राह्मण रघीराम पठनार्थं साहिसाहिब फतहसिंहजी वा रामजी श्री रामसुखजी । शुभ भूयात्। मंगल ददे ।

ग्रन्थ के वास्तविक रचयिता—

यद्यपि ग्रन्थ की सातों अध्यायों की पुष्पिकाओं में इसके निर्माता जयपुर के महाराजा सवाई प्रतापसिंहजी को बतलाया है । पर वास्तव में संगीत के विषय में अधिकार पूर्वक इतना बड़ा ग्रन्थ महाराजा स्वयं निर्माण करें यह सम्भव नहीं लगा । अतः विशेष अनुसंधान करने पर खोज रिपोर्ट में उद्धृत निम्नोक्त पद्यों द्वारा इसके रचयिता चार संगीतज्ञ जानने में आये हैं, जिन्होंने महाराजा की आज्ञा से इस ग्रन्थ को बनाया पर उनके आश्रित होने के कारण इसे महाराज की कृति के रूप में ही प्रसिद्ध किया। यह बात केवल इसी ग्रन्थ के लिये नहीं, अन्य पचासों ग्रन्थों के लिये भी समान रूप से लागू होती है। अपने आश्रयदाता के नाम से रचना की प्रसिद्धि करने वाले दो तरह के व्यक्ति होते हैं। एक तो रचना में अपने नाम का कहीं भी निर्देश नहीं करते, उनका पता लगाना तो कठिन काम है। पर दूसरे प्रकार के व्यक्ति जो कहीं न कहीं अपना नाम व परिचय भी लिख जाते हैं, जिससे वास्तविक रहस्य का उद्घाटन सहज रूप से हो जाता है। प्रस्तुत ग्रन्थ के निर्माता दूसरी कोटि के थे। उन्होंने लिखा है—

हुकम सीस धरि जोर कर बोलें नंद किसोर ।
पंडित कवि दरबार में, अगनत है या ठौर ॥ १०६ ॥
मथुरा सचित तैलगभट, श्रीकिसन सुखदाय ।
लियो भट्ट चुनीलाल है, कवकुल सपरदाय ॥ १०७ ॥
गौड़ मिश्र इंद्रीरया, रामराय कविजान ।
इनजुत कीनैं ग्रन्थ को, ब्रिजभाषा परवाना ॥ १०८ ॥
आग्या पाय नरनाह तब ले बनाय यह ग्रन्थ ।
मत प्राचीन पुनीत लख, गीत उदय को पंथ ॥ १०९ ॥

× × ×

आग्या सुन कवि सब धरि, फूल माल ज्यों सीस ।
लगे करन संगीत द्विज, चारों अपनिज ईस ॥ ११ ॥

अर्थात् श्रीकिसन, चुन्नीलाल, इद्रिया, रामराय—इन चारों विद्वानों की यह रचना है।

प्रकाशित संस्करण व अन्य प्रतियां

१ प्रकाशित संस्करण— किशनगढ़ दरबार की प्रति के आधार से सात भागों में पूना गायक समाज के सेक्रेटरी बलवंत त्र्यम्बक सहस्र बुद्धि के प्रयत्न से पूना के आर्य भूषण प्रेस द्वारा सन् १९१० में इसका प्रकाशन हुआ था।

२ प्रथम अध्याय की एक हस्तलिखित प्रति लाला बद्रीदास वैश्य वृन्दावन के संग्रह में थी, उस ४१ पत्रों वाली प्रति का विवरण सन् १९१२-१४ की खोज रिपोर्ट में प्रकाशित है।

३ प्रकाशित संस्करण किशनगढ़ दरबार की प्रति से छपा है अतः वहाँ इसकी प्रति है ही।

४ हमें प्राप्त चार अध्यायों की दो जिल्दें, ये कपूरथला के महाराजा फतहसिंहजी के पठनार्थ जैपुर के गौड़ ब्राह्मण रतीराम ने लिखी हैं। अवशेष तीन अध्यायों की प्रति भी वहाँ होनी चाहिये पर हमें मिली नहीं। यह फतहसिंहजी बड़े विद्यानुरागी प्रतीत होते हैं। इनके आश्रित कई कवियों के महत्त्वपूर्ण हिंदी ग्रन्थ हमें प्राप्त हुए हैं। जिनका परिचय मैंने अपने पंजाब से प्राप्त 'पांच अज्ञात हिन्दी ग्रन्थ' नामक लेख में दिया है।

५ जैपुर महाराजा के संग्रह में तो इसकी प्रति अवश्य होनी चाहिये।

सम्भव है ग्रन्थ के रचयिता चारों विद्वानों के वंशजों के पास और अन्यत्र भी इसकी कुछ प्रतियाँ प्राप्त हों।

ग्रन्थ को छपे हुए ४० वर्ष से अधिक समय हो चुका है और उसकी प्रतियाँ अब प्राप्त नहीं होती। पुरोहित हरिनारायणजी के उल्लेखानुसार प्रकाशित संस्करण बहुत अशुद्ध छपा है। हमें प्राप्त प्रतियाँ बहुत शुद्ध हैं। ग्रन्थ की भाषा वर्तमान दृष्टि से कुछ प्राचीन हो गई, इसलिये इस ग्रन्थ का संक्षिप्त सारांश तैयार करवा कर प्रकाशित करना परमावश्यक है। क्योंकि मूलग्रन्थ बहुत बड़ा है, उसके छपाने में बहुत अधिक खर्च होगा और फिर भी उसके बिकने की अधिक सम्भावना नहीं, पर ऐसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ से हिन्दी साहित्य का गौरव बढ़ेगा और इस विषय के प्रेमियों के लिये इसका प्रकाशन बहुत उपयोगी सिद्ध होगा। हमारे भारतीय विद्वानों ने संगीत पर कितना अच्छा शास्त्रीय विवेचन किया है- इसका परिचय इस ग्रन्थ से मिलेगा। अतः किसी संस्था को इसके प्रकाशन का कार्य हाथ में अवश्य लेना चाहिये।

कवि पद्मनाभ के कान्हड़ दे प्रबन्ध का संक्षिप्त वृत्त और ऐतिहासिक दृष्टि से समीक्षण

(लेखक– डॉ० दशरथ शर्मा)

प्राचीन राजस्थानी में इतिहास के अनेक ग्रन्थ विद्यमान हैं। इनका अच्छी तरह से अध्ययन भारत के इतिहास के अनेक अन्धकारपूर्ण भागों पर अच्छा प्रकाश डाल सकता है। मुसलमानी इतिहासकार हमारे इतिहास प्रसिद्ध वीरों के विषय में सर्वथा मौन नहीं हैं। सत्य, असत्य या अर्ध सत्य जो भी राजस्थान विषयक कथाएँ उन्होंने हमें प्रदान की हैं, उनके लिए हम उनके आभारी हैं। किन्तु राजस्थान का सच्चा इतिहास तो हमें राजस्थानी ग्रन्थों में ही प्राप्त हो सकता है। माना कि इनमें अनेक स्थानों पर अतिशयोक्ति है, कुछ कल्पना से अतिरंजित हैं, कुछ प्रमाद वश अशुद्ध हैं किन्तु मुख्यतः इनका घटनाक्रम ठीक है। कसौटी पर कसने पर राजस्थानी प्रबन्ध मुसलमानी तवारीखों से कम खरे नहीं उतरते। इतिहास के विद्यार्थी का कर्त्तव्य है कि समीक्षाग्नि द्वारा निस्सार बातों को दूर कर उनसे शुद्ध तथ्य की प्राप्ति करें।

कवि पद्मनाभ और कान्हड प्रबंध

कान्हड़ दे प्रबन्ध ऐसा ही एक राजस्थानी ग्रन्थ है। इसका रचियता बीसल नगरा नागर कवि पद्मनाभ था। इसने संवत् १५१२ में कान्हड़ दे के वंशज अखेराज

की आज्ञा से राजस्थान के प्रसिद्ध नगर जालौर में दोहा, चौपाई और मधुर गीतों द्वारा इस काव्य की रचना की। कान्हड़ दे की राजधानी में रहने और कान्हड़ दे एक वंशज के आश्रित रहने के कारण उसे परंपरा गत और लिखित सभी सामग्री आसानी से प्राप्त हुई होगी। कवि की प्रतिभा भी असाधारण थी। इसलिए काव्य अपने ढंग का एक है। पुराणों का श्रवण और मनन तीर्थों का दर्शन, प्रभात काल में राम नाम का उच्चारण ये सब पुण्य मय हैं पद्मनाभ की दृष्टि में उसकी कृति कान्हड़ दे प्रबन्ध का श्रवण और मनन इनसे कम पुण्यमय नहीं है २।

प्रबन्ध की संक्षिप्त कथा

कान्हड़ दे प्रबन्ध की कथा संक्षेप में इस प्रकार है :

उस समय गुर्जरात में सारंग दे का राज्य था। उसने अपने प्रधान मन्त्री माधव का तिरस्कार किया। माधव ने प्रतिज्ञा की कि वह गुजरात में तुर्कों की सेना लाकर ही भोजन करेगा। अनेक प्रकार की भेंट लेकर माधव दिल्ली गया और सुलतान अलाउद्दीन से मिला। सुलतान के पूछने पर माधव ने निवेदन किया "रावकर्ण पागल हो गया है। वह काम और क्रोध से इतना अभिभूत है कि उसके पार्श्ववर्ती सभी व्यक्ति उससे भय खाते हैं। उसने मेरा तिरस्कार किया है और मेरे भाई केशव को मारकर उसकी स्त्री को अपने घर में डाल लिया है। आप मेरे साथ फौज भेजें। मैं इस अपमान का बदला लूँगा।" सुलतान प्रसन्न हुआ। गुजरात जाने के लिए जालौर का मार्ग सबसे सीधा था। इसलिए उसने जालौर के स्वामी कान्हड़ दे के पास सिरोपाव सहित यह सन्देश भेजा—"तुर्क सेना सौरठ की तरफ जा रही है। अन्य रास्तों के ऊबड़ खाबड़ होने के कारण हम जालौर के रास्ते जाना चाहते हैं।" कान्हड़ दे ने भरी सभा में इस प्रस्ताव पर विचार किया और इसकी स्वीकृति से धर्म की हानि जानकर रास्ता देने से इन्कार कर दिया।

अलाउद्दीन की आज्ञा से अलूखान (उलूगखान) ने एक विशाल और सुसज्जित सैन्य लेकर गुजरात की तरफ प्रयाण किया (चित्तौड़ के) रावल समरसिंह ने रास्ता दिया सेना के मोडा से पहुंचने पर, वहाँ के राव वत्राक ने दो चार घड़ी मुसलमानों का सामना किया। वहाँ से काहानम, चिड़ोतर, खेटक मडल, वंडाव्य, धाणधार, आदि को लूटती हुई मुस्लिम सेना पाटन पहुंची। राव कर्ण

भाग निकला। उलूग खां ने पाटण पर अधिकार जमाया। असावल, धोलका, खमायत, सूरत, चांपानेर, और रानेर भी मुसलमानों के हाथ आए। मयगलपुर, महुवा, ऊना आदि में लोगों ने भय सूचक नगारे बजाए, त्रस्त जनता ने भाग कर द्वीप-द्वीप में शरण ली। किसी ने उलूग खां का सामना न किया। देव पट्टन पहुचते ही उलूगखां ने घेरा डाल दिया वाला। वाला, वाजा, जेठुआ, और चूडासामा राजपूतों ने अच्छा सामना किया। अन्तिम समय स्नान कर और तुलसी की माला एवं चन्दन धारण कर वे मुसलमानों पर टूट पड़े। अनर्थ के मूल माधव को राजपूतों ने मार डाला, किन्तु विजय मुसलमानों के हाथ रही। मन्दिर में घुस कर उलूग खां ने सोमनाथ के लिंग को तोड़ डाला और उसे बैल गाड़ी में डाल कर दिल्ली की तरफ रवाना किया। इसके बाद जूनागढ़, गिरिनार, कांब, गोहद, पारकर, और ठट्ठा की बारी आई। मुस्लिम सेना सर्वत्र विजयनी हुई।

दिल्ली वापस जाते समय कान्हड़ दे को दुख देने की इच्छा से उलूग खां ने मारवाड़ का रास्ता पकड़ा, उसने कान्हड दे को कहलाया "मैंने तेरे भूतनाथ को बन्दी कर लिया है। कुछ बहादुरी करनी हो तो युद्ध कर और उसे छुडा ले।" उसी रात को गंगा और पार्वती ने स्वप्न में आकर सोमनाथ को छुड़ाने का कान्हड़ देवे देव को आदेश दिया। कान्हड़ देवे भरी सभा में युद्ध के आह्वान को स्वीकार किया। मुसलमानी फौजें दूसरे दिन सिराणे पहुची, फौज के चारों तरफ खान ने खाई खुदवाई और काठका गढ़ बनवाया।

कान्हड़ देवे जैत देवडे, लाखण सावेट, लूणकरण साल्ह और सोभित को मुसलमानी फौज देखने भेजा। उलूग खां ने सम्मान पूर्वक उनका स्वागत किया और उन्हें अपनी विशाल सेना दिखाई। उन्होंने अनेक हिन्दू बंदी भी देखे। कान्हड दे ने इनसे सब वृतांत सुना और सोमनाथ को छुड़ा कर ही अन्न ग्रहण करने की प्रतिज्ञा की।

कान्हड़ देवे अपने सब राजपूतों को एकत्रित किया और कुल देवी आशिका का पूजन कर जैत देवड़े को मुसलमानी सेना पर आक्रमण करने का बीड़ा दिया (पूर्व की तरफ से जैतने और पश्चिमी की तरफ से कान्हड दे के छोटे भाई

साल देव ने रात्रि के समय मुसलमान शिविर पर आक्रमण किया। अंधकार के कारण शत्रु को अपने पराए का कुछ ज्ञान न रहा। बहुत से मारे गए। कुछ भागे, कुछ कैद हुए। उलूग खां भाग निकला। सादी भगलिक मारा गया। चारों तरफ से जयकार हुआ। "धन्य धन्य कृष्ण के अवतार कान्हड़ दे तुम धन्य हो।"

बादशाह उलूगखां से अप्रसन्न हुआ उसने उलूगखां के स्थान पर नाहर मलिक को सेना पति नियुक्त किया। साथ ही भोज खांडाधर को भेजा। जब सेना समियाने पहुँची तो उस स्थान के शासक, कान्हड़ दे के भतीजे सावल देव ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर मुसलमानों पर अकस्मात् आक्रमण किया, नाहर मलिक हार कर पीछे हट गया, उसके छः सातसौ घोड़े चौहानों के हाथ आए फिर भी मुस्लिम सेना कुछ और बढ़ी तो कान्हड़ दे अपने घुड़ सवरों सहित आ पहुँचा, मुसलमानों पर दुतर्फा मार पड़ी। सेना नायक नाहर मलिक और भोज खांडाधर मारे गए, हजारों मुस्लिम सिपाही खेत रहे।

अलाउद्दीन हैरान हुआ! मलिक नायब, मलिक खानिजहाँमालिक अमादिल और कमालुदीन को बुलाकर उसने सलाह मशवरा किया। मूछों पर बल डालते हुए उसने कहा "जिस किसी ने मेरा आधिपत्य स्वीकार नहीं किया उसने निश्चित भूल की है मैंने गौड़-चौड़, गजनी-कनौज, महाराष्ट्र को वश में किया है। लाट देश, सिन्धु, सवालख, गुजरात, सौरठ, मालवा, चन्देरी, मांडू, सारंगपुर, रणथंभौर और चित्तौड़ मैंने जीते हैं। पूर्व दिशा में जौनपुर, काकपुर, मथुरा, भोजपुर और डोसा मैंने हस्तगत किए हैं। पूर्वी सागर तक पहुँच कर मेरी फौजों ने राजाओं को अपने स्थानों से निकाल बाहर किया है। उत्तरापथ, पांडय, जालंधर, काश्मीर, कामरूप और हिमाचल प्रदेश मेरे अधिकार मे हैं। खुरासान को मेरी अश्व वाहिनी जीत चुकी है। मैंने मुगलों को पराजित किया है। उच्चा और मुलतान लिए हैं। चीन, भूटान और दण्डूर देशो के स्वामी सेवा चाकरी बजाने के लिए दिल्ली आते हैं। द्वार समुद्र के वीर मुझे कर देते हैं। कुलवर्गा, आन्तगुदी, वेदर, तिलिंग, आदि को मैंने अपनी तलवार के जोर से वशीभूत किया। देवगिरि के राजा ने मुझे बेटी दी लंका का राजा मुझे भेंट देता है। कूची, कलहथ, जावावन्दर और हर मुजे के व्यापारी मेरे स्थान पर

आकर सलाम करते हैं। सेतुबन्ध, रामेश्वर तक मेरा राज्य है। जालौर के चौहान राजा से अनेक बार पराजित होना हमारे लिए शर्म की बात है। या तो मैं जालोर को जीतूँगा या शस्त्र धारण करना छोड़ दूँगा।"

बादशाह के निश्चय के अनुसार पूरी फौजी तैयारी हुई और ठीक समय पर फौज समियाणे जा पहुची। सात वर्ष तक सुलतान ने दुर्ग को घेरे रखा। किन्तु उसे न लेसका। दुर्ग सामान से भर पूर था। किसी चीज की कमी न थी। घिरे रहने पर भी सातलदेव निश्चित आनन्द मनाता, रोज-प्रेक्षणक होती, गाइकाएँ गातीं और नाचतीं और अलाउद्दीन देख देख कर जलता। आखिर कार ये प्रेक्षणक उसे असह्य हो उठे। उसकी आज्ञा से एक धनुर्धर ने नर्तकी की इहलीला समाप्त कर दी। सातलदेव चाहता तो शायद सुलतान का वध कर सकता था। किन्तु धीरे २ उसे यह विश्वास हो उठा कि रुद्र ही जगत के संहार के लिए रुद्र रूप से अवतीर्ण है।

अलाउद्दीन ने अन्तत कूट युद्ध का आश्रय लिया। मामले नाम के एक देशद्रोही से समियाणे के सरोवर का भेद मालूम कर उसने यन्त्रों द्वारा उसे गोरक्त से दूषित कर दिया। पानी पर गाय के मस्तक को तैरते देकर धर्मप्राण जनता ने तालाब का पानी पीना बन्द कर दिया। सातल की रानी ने यमगृह (जौहर) की चिता में प्रवेश किया। सुलतान को खबर मिली तो उसने कह लाया "अगर सातल अब भी मुझसे मिले तो मैं गुजरात का राज्य दूँगा।" किन्तु सातल का स्वाभिमान छोड़ना असम्भव था। उसने स्नान कर शालिग्राम का पूजन किया और कण्ठ में तुलसी की माला धारण कर युद्ध के लिए प्रयाण किया। तीन प्रहर तक लड़ाई हुई अन्त में अनेक घाव खाकर सातल देव सदा के लिए रणक्षेत्र में सो गया।

बादशाह ने कान्हड़ दे को एक बार फिर अधीनता स्वीकार करने के लिए कहलाया। उत्तर में केवल कान्हड़ देने बादशाह का बदनाम किया और उसे आक्रमण करने को चुनौती दी। बादशाही सेना ने प्रयाण किया। उसने बाहड़ मेर को लूटा और भिन्न माल के ब्राह्मणों को मारा और कैद किया। भिन्नमाल

चौहानों की ब्रह्मपुरी थी। वहाँ के ब्राह्मण धर्मनिष्ट, कर्मनिष्ट और सब विद्याओं में निपुण थे। उनके उपघात का समाचार सुनते ही कान्हड़ देने वीर राजपूतों को एकत्रित किया। वे रेवती ओर से होते हुए मुसलमानी शिविर के पास जा पहुंचे। सेनानायक मलिक नायव भाग्यवशात् उस समय शिकार के लिए गया था। बाकी मुसलमानी अमीरों ने राजपूतों का सामना किया, किन्तु युद्ध में वे अधिक न ठहर सके। राजपूतों ने सब वंदियों को मुक्त कर दिया। और मुस्लिम शिविर को लूट लिया। अनेक प्रकार की युद्ध सामग्री राजपूतों के हाथ आई।

राजपूतों की सेना नायक महीव और जैत देवड़ा विजय का शुभ समाचार देने के लिए तेजी से जालौर लौट गए। किन्तु उस दिन अमावस्या का दिन था। इसलिए लखण सेवों और साल सौभित ने तालाब में स्नान करने का निश्चय किया। सब वस्त्रादि उतार कर वे जल मं उतर गए। उन्होंने वे नगाड़े भी बजाए जो उन्होंने मुसलमानों से छीने थे, उनकी आवाज सुनते ही मालिक नायव वहाँ आ पहुंचा उसके साथ छत्तीस हजार घोड़े और तीस हाथी थे। उसने राजपूतों पर एक दम आक्रमण किया। चार हजार राजपूत मारे गए। एक ऐसा राजपूत भी न बचा जो कान्हड़े दे को खबर दे।

धीरे २ खबर जालौर पहुंची। महीप देवड़े को बड़ी लज्जा आई। वह एक फौज ले कर पहुंचा। मलिक स्वरूप को महीप ने अपने हाथो मारा। महीप के पचास साथी मारे गए। अलाउद्दीन को जब इस आक्रमण का समाचार मिला तो उसने जालौर पर आक्रमण की पूरी तय्यारी की।

बादशाह के सिताई नामकी एक लड़की थी वह आक्रमण की तैयारी का समाचार सुनते ही बादशाह को सलाम कर कहने लगी "कान्हड़ दे विष्णु का दसवां अवतार है। अभी तुमने उस पर आक्रमण किया तो व्यर्थ ही मारे जाओगे।" बादशाह ने बात सुनी अनसुनी कर दी तो कुमारी बादशाह की गोद में बैठकर कहने लगी—"पिताजी मेरी एक अर्ज सुनें। कान्हड़ दे के समस्त लीलाओं का केन्द्र वीरम दे नाम का पुत्र है। आप मेरा उससे विवह कर दें।" बादशाह ने इसे पागलपन समझा किन्तु सिताई ने अपना आग्रह न छोड़ा।

अन्त में विवश होकर बादशाह ने गोल्हणसाह को विवाह का प्रस्ताव देकर कान्हड़ दे के पास भेजा। भरी सभा में जब यह प्रश्न रक्खा गया तो वीरमदे ने उसे सर्वथा अस्वीकृत किया। मुसलमान की कन्या से उसे विवाह करना मन्जूर नहीं था। वह इस प्रकार अपने सूर्यवंश अपने पूर्वज पृथ्वीराज और चाचिग अपने राजगोत्र और अपने पिता कान्हड़ दे को लजाना पाप समझता था। बादशाह ने सब समाचार सुना तो उसे बड़ा क्रोध आया। उसने सेना को प्रयाण की आज्ञा दी। स्वय वह खुद्रि आया। दूसरे दिन सुन्दर के किनारे बादशाही सेना जा उतरी। जगह २ उसने फौजें रक्खी, खाइयाँ खुदवाई और सेना की रक्षा के लिए काठ के गढ़ बनवाएँ। बादशाही सेना का घेरा अठारह कोस में था।

कान्हड़ दे ने बादशाह की सेना का वैभव देख कर अपने दुर्ग की वैभव युक्त सजावट की। इस विचित्र वैभव को देख बादशाह भी चकित रह गया।

घेरे और युद्ध का आरम्भ हुआ। कान्हड़ देव की तरफ से रात्रि के समय वीरम देव और माल देव आक्रमण करते, वे शाही फौज की चारों तरफ की खाई को भरते और काठ का गढ नष्ट कर डालते दिन में जितना मुसलमान तय्यार करते, रात को उतना ही हिन्दू नष्ट करते। इस प्रकार सात दिन बीते। एक दिन भयकर उल्का पात हुआ। सब मुस्लिम शिविर जलने लगे। अलाउद्दीन कान्हड दे के लिए सन्देश छोड़ कर दिल्ली चला गया। उसने वीरम दे को बुलवाया और गुजरात देने का वचन दिया। कान्हड़ द ने इसकी अवगणना की।

बादशाही सेना बालू ही, सूद्रडी, होकर गढी जा रही थी। कान्हड़ दे की सेना ने आठ भागों में विभक्त होकर मोकलाणे के तालाब के निकट उस पर आक्रमण किया। एक भाग का मालदेव, दूसरे का वीरम देव, तीसरे का अनत सीसोदिये, चौथे का जैत वा घूले, पाचवें का जिन देवड़े, छठे का दान करण, मोलहव दे, सातवें का सोम्भिल देवड़े और आठवें का सहजपाल ने नेतृत्व किया। राजपूतों ने तीन हजार शत्रुओं को तलवार के घाट उतारा और नौ हजार घोड़े छीने, सम्सखाँ और उसकी पत्नी ख्वाजा सहित जीते जी पकड़ लिया। कान्हड़ दे ने मांडवी तक आकर अपने वीरों का स्वागत किया और सब घोड़े सरदारों को दे डाले। जब दिल्ली यह खबर पहुची तो खुजाला उसीने कहा—"मैं जालौर

जाकर बहन और बहनोई को छुड़ा लूंगी। मैं उन्हें पुरानी बातों का स्मरण दिलाऊंगी। बादशाह ने पूछा-"वीरम तुम्हारा किस तरह पति है।" शाहजादी ने पूर्व जन्म के स्मरण से यह भेद बादशाह को बतलाया-"पहले वीरम बापल के पुत्र सिंह राज के नाम से अवतीर्ण हुआ था। मैं जयचंद की पुत्री सरजन दे थी। दिल्ली नगर में हमारा विवाह हुआ और अंतर्वेदी में सती धर्म का आचरण कर मैंने शरीर का त्याग किया। अन्य विवाह भी इसी प्रकार दिल्ली में हुए और हर बार अंतर्वेदी में मैंने सती धर्म का आचरण किया। दूसरी बार काशीपति के घर में वीरम देने कल्हण के नाम से अवतार लिया। उस जन्म में मैं अजय पाल की पुत्री कुंवा देवी हुई। तीसरी बार वीरम देने वासुदेव के घर में अवतार लिया। मैं महिगराय की पुत्री मीना हुई। चौथी बार वीरम देव माणिकराव का पुत्र देवराज हुआ और मैं जयतलदेव की पुत्री सरूप दे के नाम से उत्पन्न हुई। पांचवी बार हम महीपाल और संजुक्ता हुए। छठी बार सोमेश्वर के घर में वीरम देने पृथ्वीराज के रूप में अवतार लिया। मैं पाल्हण के घर में कुमारी पद्मावती के नाम से अवतीर्ण हुई। उस समय मैंने पाप का आचरण किया। गाय के गर्भ पर क्रिया कर मैंने मंत्र की सिद्धि की। इससे राजा को चित्त विकार हो गया। मैंने राजा को वश में किया उसके प्रधान को मरवाया और राज्य की समाप्ति की। घग्गर नदी के किनारे राजा सुल्तान के हाथ मारा गया है। यह सुन कर मैंने अग्नि में प्रवेश किया, उस पुण्य से मैंने बड़े कुल में जन्म लिया किन्तु अपने पाप के कारण मैं तुर्क हुई हूँ। सातवीं बार वीरम देने कान्हड़ दे के घर में और मैंने ख्वाजा लाडखी के रूप में तुम्हारे घर जन्म लिया है।" इसके बाद शाहजादी ने यह और कहा—'पिता सुनो संवत् १३६८ षष्टी दिवस वैशाख मास शुक्ल पक्ष, गुरुवार के दिन वीरम युद्ध कर प्राण देगा। जालोर लोणी और कान्हड़ दे की मृत्यु के आठ महीने बाद दिल्ली में तुम्हारी मृत्यु होगी। सात वर्ष तक यह दुर्ग तुम्हारे हाथ न आएगा। आठवें साल तुम इसे ले सकोगे।"

बादशाह ने सब वृत्तान्त सुनकर खिताई को जालोर जाने की आज्ञा दी। कान्हड़ देने उसका आदरपूर्वक स्वागत किया और उसे सुन्दर के किनारे उतारा। वीरम भी उससे मिला। जाति स्मरण के कारण दोनों में परस्पर प्रेम स्वभाविक

था, किन्तु जाति विभेद के कारण विवाह असंभव था। अन्य सब कुछ देने के लिए वीरम तय्यार था। शाहजादी ने अतत' कुछ बातों की मांग की। उसने कहा "सोमनाथ महादेव को छुडाती समय तुमने सादूल और सिंह मलिक को पकड लिया था उन्हें छोड दो। युद्ध में सुल्तान पर चोट न करना और शाही फौज पर रात्रि के समय आक्रमण न करना" वीरम ने सब बातों की स्वीकृति दी और शाहजादी ने सुल्तान की तरफ से वचन दिया कि खिलजी सेना न मन्दिरों को नष्ट करेगी और न ब्राह्मणों और गायों को दु ख देगी वह देश को भी न लूटेगी।

शाहजादी की इच्छा थी कि वह दुर्ग को अच्छी तरह देखे। कान्हड दे के प्रधान ने सम्मानपूर्वक शाहजादी को सब दुर्ग दिखाया और कान्हड़ देने उसे विदा करती समय सब पकड़े हुए हाथी, मलिक (सरदार) वापस दिए

दिल्ली पहुचने पर शाहजादी फिरोजाह ने अलाउद्दीन से जालोर की ऋद्धि का वर्णन किया। उसने कहा—जालोर, असीरगढ, ग्वालियर चित्तौड़, चापानेर, आमेर माडलगढ, मोढेर और रानेर दुर्गों से बढ़ कर है। वहाँ विद्या पारगत ब्राह्मण, छत्तीस राजवंश, श्रावक, माहेश्वरी, दसा, बीसा, वैश्य और परवे कसारे आदि शिल्पी वास करते हैं। शहर अनेक मन्दिरों वापियों और प्रासादों से सुशोभित है। सब भडार धन और धान्य से परिपूर्ण हैं। सब प्रजा सतुष्ट है और छोटे भाई मालदेव को कान्हड दे से ऐसी प्रीति है जैसे लक्ष्मण को राम से या हनुमान को सुग्रीव से। "

यह सब वृत्तान्त सुनकर बादशाह को दुर्ग के हस्तगत करने के विषय में सशय होने लगा। किन्तु शाहजादी ने उसे विश्वास दिलाया कि समय आने पर यह कार्य भी सम्भव होगा।

बादशाह ने इसबार आठ साल का सामान लेकर अपनी सेना भेजी। उसके बड़े २ सिपहसालार, मलिक, कमालुद्दीन, सांदल मलिक, मलिक अमादलि, मलिक निजामुद्दीन, मलिक नायक आदि सब उसके साथ थे। फिरोजा की धाय दादा सनावर भी उनके साथ गई। फिरोजा सिताई की मार्गी सिताई ने उसे जीवित वीरम दे की और स्वय शाहजादी ने एकान्त में उसे वीरम दे को सिर लाने के लिए कहा—

को नष्ट करेंगे : कान्हड़ दे और उसके सामंतों ने स्नान किया, गोपी चंदन मस्तक पर लगाया कंठ में तुलसी की माला धारण की और रणांगण में आ पहुंचे। मलिकपुर, कमालुदीन, ताजमलिक, दुरदीन, अहमद मलिक उनसे भिड़े महिते, कुंडलियाँ, टाबरी, अच्छे लड़े। अनेक वीरों ने अपने स्वामी के लिए प्राण निछावर किए, कुछ भाग भी निकले। कान्हड़ दे संवत् १३६८ के वैशाख मास की शुक्ल पंचमी बुधवार के दिन वैकुण्ठस्थ हुआ। कान्हड़ दे के पुत्र वीरम देने भी साढ़े तीन दिन और राज्य कर रणांगण में शरीर का त्याग किया। सिवाई की धाय, हुढा सनाथर, वीरम दे का मस्तक लेकर दिल्ली गई। जब शाहजादी उसे देखने आई तो मस्तक दूसरी तरफ मुड़ गया। शाहजादी ने यमुना के किनारे मस्तक का दाह संस्कार किया, स्वयं उसने नदी में कूद कर अपने प्राण दिए।

ऐतिहासिक दृष्टि से कथा का समीचय

ऊपर दी हुई कथा की कुछ बातें मुसलमानी इतिहासों से मेल खाती हैं और कुछ नहीं। हम यहाँ उन सबका ऊहापोह युक्त समीक्षण करेंगे। तत्कालीन समाज और धर्म पर भी हमें प्रबन्ध से अच्छा प्रकाश मिलता है। पत्रिका के किसी अंतिम अंक में हम इस विषय पर लेख प्रस्तुत करेंगे।

कथा का आरम्भ गुजरात के इतिहास से सम्बन्ध रखता है। अलाउद्दीन के गुजरात पर आक्रमण करने के समय सारंगदेव नहीं अपितु कर्णदेव गुजरात का राजा था। कान्हड़ दे प्रबन्ध की एक पंक्ति को छोड़ कर शेषांश से भी यही तथ्य ध्वनित होता है। इसलिए बहुत संभव है कि प्रबन्ध की एक आध पंक्ति जाती रही हो। इस कर्ण ने अपने मन्त्री माधव का तिरस्कार किया और वह दिल्ली जाकर मुसलमानों को गुजरात पर चढ़ा लाया ऐसा गुजराती चिरकाल से मानते आए हैं। * और इस तथ्य का प्राचीन उल्लेख केवल कान्हड़ दे प्रबन्ध में ही नहीं श्री जिन प्रभ सूरि रचित विविधतीर्थ कल्प ४ आदि ग्रन्थों में भी वर्त्तमान है। १२५६ से १५०० वि० संवत् के बीच में रचित ज्ञाति पुराण-धर्मारण्य में

---

* फार्बस रचित रास माला देखें। मीरातें मुहम्मदी में भी यही बात दी है। नैणसी ने अपनी ख्यात में इसी प्राचीन परम्परा का अनुसरण किया है।

लिखा है कि "जब प्रतापी महाराजा कर्ण राजगद्दी पर था, उस समय दुष्ट, निर्गुणी देश द्रोही, कुलाधम और पापी अमात्य आत्व माधव ने क्षत्रिय राज्य का नाश किया और म्लेच्छ राज्य की स्थापना की" ५ यही बात मेरुतुंग ने अपने विचार श्रेणी ग्रन्थ में लिखी। माधव नाम भी कल्पित नहीं है। चण्डू रचित नैषध काव्य दीपिका के अनुसार संवत १३५३ भाद्रपद शुक्ला त्रयोदशी, रविवार के दिन गुजरात का स्वामी श्री सारंग था और इसके महामात्य का नाम माधव था। ६ कर्णदेव के गद्दी पर बैठने पर यही व्यक्ति महामात्य बना रहा और प्रबल गुजरात के स्वातन्त्र्य विध्वंस का कारण बना। अलाउद्दीन की इच्छा शायद इससे पूर्व भी यही रही हो कि वह गुजरात पर अपना आधिपत्य स्थापित करे। गुजरातियों की फूट ने उसे अपने विचार को कार्यरूप में परिणत करने का मनचाहा अवसर दिया।

मुसलमानी सेना का जालोर की तरफ से आने का इरादा भी विचार सगत है। यही गुजरात पहुँचने का सब से सीधा मार्ग था। मुसलमान मेवाड़ के रास्ते से गए तो इसके लिए चौहानों का विरोध ही कारण रहा होगा। उस समय मेवाड़ का राजा समरसिंह था। अलाउद्दीन से विरोध करना असमंभ समझ कर उसने कर और रास्ता देकर मेवाड़ की रक्षा की इसके बाद गुजरात और काठियावाड़ के विजय और सोमनाथ के विध्वंस का सब से विस्तृत और विश्वसनीय वर्णन कान्हड़ देव प्रबन्ध में वर्तमान है। घटनाओं के संवत के विषय में कान्हड़ दे प्रबन्ध मौन है किंतु विविध तीर्थ कल्प वजीअ तुल अमसीर तारीखें अलाई और तारीखें फिरोजशाही आधार पर हम इन्हें संवत् १३५६ में रख सकते हैं।

दिल्ली वापस होती समय उलूग खां ने जालोर का रास्ता पकड़ा, इसके लिए मुसलमान ऐतिहासिकों ने किसी कारण का निर्देशन नहीं किया है। हमें कान्हड़ दे प्रबन्ध का यह कथन ठीक प्रतीत होता है कि उलूग खां ने मुख्यत कान्हड़ दे को दण्ड देने के लिए ही इस मार्ग से दिल्ली वापस जाना ठीक समझा

हमारे सब इतिहासकारों को ज्ञात था कि जालोर के निकट उलूग खां के ऊपर आफत के बादल टूट पड़े। कान्हड़ दे प्रबन्ध की कथा हम ऊपर दे चुके हैं। उसमें इस आफत का श्रेय सर्वथा कान्हड़ दे के राजपूतों को दिया गया है।

और युवराज कान्हड़ देव के विजय राज्य का साथ साथ उल्लेख है १०। मुसल-मानों पर आक्रमण कान्हड़ देव की मन्त्रणा से हुआ होगा, इसी ने शायद उसमें मुख्य भाग भी लिया हो।

उलुगखां के दिल्ली पहुंचने पर जिस नाहर मलिक और भोज खांडाघर को अलाउद्दीन ने समियाणे के विरुद्ध भेजा उनका मुसलमानी तवारीखों में उल्लेख नहीं है किन्तु उनका सिवाने के निकट मारा जाना असंगत प्रतीत नहीं होता। मुसलमानों ने प्रायः अपनी विजयों का ही वर्णन दिया है। हारों के विषय में वे प्रायः मौन है।

अपने सेनापतियों के बार २ हारने पर अनेक अमीरों को बुलाकर उनसे मंत्रणा करना भी अलाउद्दीन के लिए स्वाभाविक था, ऐसी एक मंत्रणा का उल्लेख जियाउद्दीन बर्नी की तारीखें फिरोजशाही में भी है। अलाउलमुल्क के प्रश्न करने पर अलाउद्दीन ने उत्तर दिया—"मैं दिल्ली मात्र से संतुष्ट रहूं तो मेरे धन, हाथियों और घोड़ों से क्या लाभ है। और लोग मेरे राज्य के विषय में क्या कहेंगे" अलाउलमुल्क ने कहा "दो ऐसे कार्य हैं जिन पर बादशाह सलामत को सब से पहले ध्यान देना चाहिए पहले सबको हिन्दुस्थान को विजय करें। आप रणथंभोर चित्तौड़, चदेरी, मालवा, धार और उज्जैन को, पूर्व में सरयू तक के प्रदेश को सवा लख से जालौर तक और मुल्तान से उमरील तक के प्रदेशों को जीतें। इन्हें इस प्रकार अधीन करें कि उनमें विद्रोह का नाम कभी न सुनाई पड़े। दूसरा और इससे भी महत्त्वपूर्ण कार्य मुगलों के आक्रमणों को बंद करना है" ११कान्हड़ दे प्रबन्ध में वर्णित मंत्रणा प्रायः ऐसी है। किंतु जिस गर्वोक्ति से अलाउद्दीन अपना वक्तव्य आरंभ करता है उसमें कई ऐसी घटनाएँ हैं जो अलाउद्दीन के जीवन में संवत् १३५६ तक घटित न हुई थीं। रण थंभोर, मालवा, चंदेरी मेवाड़ आदि पर सुल्तान ने उस समय तक विजय प्राप्त न की थी। सुदूर दक्षिण के राज्यों का तो प्रश्न ही अलग रहा। संवत १३५६ में खिलजीवंश के प्रताप सूर्य का उदय मात्र हुआ था। उसका मध्यान्ह अभी कुछ दूर था। भारत के बहुत से भूभाग उस समय तक अविजित थे। उन्हें संवत् १३५६ के लगभग विजित मानने में पद्मनाभ ने कवि सुलभ ऐतिहासिक भूल की है।

समियाणा लेने में अलाउद्दीन को कई साल लगे। इस बात को मुसलमान

इतिहास कार भी स्वीकार करते हैं। शायद नित्य प्रेक्षणक भी होते हों। मुसलमानों को अपनी धनुर्विद्या का गर्व था, और टीरी आदि को मार कर इसका भग करना भी शायद इनके लिए नई प्रथा न थी। हम्मीर महा काव्य में भी ऐसी एक कथा का उल्लेख है। कान्हड़ दे प्रबन्ध का भी यह कथन सत्य है कि अपने अनेक सेनापतियों के विफल होने पर स्वय अलाउद्दीन को समियाना आना पड़ा था। अलाउद्दीन ने वहाँ के मुख्य तालाब को गौरक्त से दूषित किया। किन्तु यह कैसे सभव हुआ यह हमें अमीर खुसरो के वर्णन से ही अच्छी तरह ज्ञात हो सकता है। उसके कथनानुसार अलाउद्दीन ने मगरबी द्वारा चौहानों पर पत्थरों की वर्षा की। दक्षिण और पश्चिम दोनों तरफ से मुसलमानों ने दुर्ग पर धावा किया। पश्चिमी तर्फ से कमालुद्दीन गुर्ग ने किले पर पत्थरों की वर्षा की किन्तु ये साधन उस समय तक असफल रहे जब तक कि पाशीब पहाड़ की चोटी तक नहीं पहुँची।[12] सम्भवत इसी पाशीब पर से गो रक्त द्वारा समियाने के मुख्य तालाब को दूषित किया होगा और इसी के बाद सम्भवत सातल देव ने दुर्ग के द्वार खोल मुसलमानों से खुले मैदान में लोहा लिया अमीर खुसरो ने लिखा है कि मुसलमान पाशीब द्वारा दुर्ग में घुस गए, किन्तु चौहानवीर और अभिमानी थे। उनके सिर कटे, किन्तु वे भागे नहीं। उस दिन प्रात काल से सायकाल तक युद्ध किया। कई हिन्दु निकल गए, अपने नेता सहित उन्होंने जालौर जाने का प्रयत्न किया किंतु बादशाही सिपाहियों ने उन्हें रोका, रातभर उन्होंने युद्ध किया। १६ अगस्त १३१० मगलवार के दिन सातलदेव का मृत शरीर सुल्तान के सामने लाया गया।[13] रात भर के स्थान पर पद्मनाभ ने तीन पहर के युद्ध का उल्लेख किया है। सातल के स्वयं युद्ध के लिए निकलने को मुसलमान इतिहास कारों ने शायद जालौर जाने का प्रयत्न समझा है।

कान्हड़ दे प्रबन्ध के अनुसार अलाउद्दीन ने इसके बाद भिन्नमाल पर आक्रमण किया और उसे बुरी तरह लूटा। इस घटना का उल्लेख मुसलमानी इतिहासकारों ने नहीं किया है। शायद उन्होंने इसे विशेष महत्वपूर्ण न समझा हो, किन्तु प्रतापसिंह के सम्वत् १४४४ के शिलालेख से हमें ज्ञात है कि प्रबन्ध में वर्णित शालहा चाहमान ने वास्तव में उन नदियों को छुड़ाया था जिन्हें तुरुष्कों अर्थात् खिलजियों ने भिन्नमाल में कैद कर लिया था।

अलाउद्दीन की लड़की सिताई की कथा रोचक है। १४ परन्तु उसके ऐतिहासिक तथ्य का निर्धारण प्रायः असम्भव कार्य है नैणसी के समय भी यह दन्त कथा प्रचलित थी। प्रबन्ध ने उसके पूर्वजन्मों का वर्णन देकर कथा को और रोचक बना दिया है। बापल का पुत्र सिंहराज शायद वाक्पतिराज का पुत्र सिंहराज चाहुवान हो। साम्भिकराज देवराज भी चाहुवान वंश के प्रसिद्ध व्यक्ति हैं। सोमेश्वर का पुत्र पृथ्वीराज इतिहास प्रसिद्ध है। किन्तु उसकी रानी पद्मावती किसी पाल्हण की पुत्री है' और उसकी कथा रासो के पद्मावती समय से मेल नहीं खाती। घग्गर के निकट सुल्तान द्वारा पृथ्वीराज का वास्तव में वध तो नहीं हुआ किन्तु वह वहाँ पकड़ा अवश्य गया प्रबन्ध ने सुल्तान के पृथ्वीराज द्वारा जाने की झूठी कथा का आश्रय नहीं लिया। रासों में यह कथा कब प्रक्षिप्त हुई, वह विचारणीय है।

प्रबन्ध में कान्हड़ दे और अल्लाउद्दीन की मृत्यु का समय दिया है। कान्हड़ का मृत्यु सम्वत् कुछ अशुद्ध है। सिवाने का पतन सम्वत् १३६७ में हुआ। जालौर का घेरा उसके बाद वास्तव में यदि कई वर्ष तक चलता रहा वैशाख सम्वत् १३६८ में कान्हड़ दे की मृत्यु असम्भव है। खरतरा गच्छ पट्टावली में जालौर के पतन का सम्वत् १३७१ दिया है १५ हमें यही ठीक सम्वत् मालूम पड़ता है। इसके आठ महीने बाद अलाउद्दीन की मृत्यु भी सम्भव है। कान्हड़ दे प्रबन्ध में लिखा है कि सुल्तान की पुत्री सिताई अपने पूर्व जन्म का स्मरण कर कान्हड़ दे के पुत्र वीरम पर अनुरक्त हो गई थी। नैणसी की ख्यात में यह कथा कुछ अन्य रूप से मिलती है। उसके अनुसार अलाउद्दीन के दरबार में पंजू नाम का पायक था। उससे बनैटी खेलने के लिए बादशाह ने वीरम को बुला भेजा १६ कान्हड़ ने अपने भाई भतीजों की सभा की। सब की यही सलाह हुई कि बादशाह सब पुरानी बातें क्षमा करने को तैयार है। तो वीरम को भेजने में कोई दोष नहीं। वीरम ने अलाउद्दीन के दरबार में पंजू को पराजित किया और वहीं बादशाह की लड़की वीरम पर आसक्त हो गई। वीरम बहाने से जालौर पहुँच गया और वीरम ने यह सोच कर कि मुसलमान की लड़की से विवाह करना धर्म विरूद्ध होगा सब चौहान युद्ध के लिए सन्नद्ध हुए।

यह कथा विचित्र सी प्रतीत होती है किन्तु कथांश में तो निश्चित ही

निराधार नहीं है। वीरम का अलाउद्दीन के दरबार में जाना यह घोषित करता है कि जालौर के चौहानों ने कुछ समय तक चाहें एक दिन के लिए ही बादशाह की आधीनता स्वीकृत की थी सोनिगरों के यशोगायक पद्मनाभ ने इस बात को उड़ा दिया है किंतु सम्भवतः यह इससे अपरिचित न थी १७।

पूर्ण स्मरण के आधार पर वीरम और सिवाई की प्रेम कथा को पूर्णतया खड़ा करना असम्भव है। नैणसी का वर्णन चाहे सत्य हो या असत्य। अधिक बुद्धि गम्य ही नहीं वह एकांश में इतिहासानोदित भी है।

तारीखे फिरिश्ता के अनुसार सन् १३०५ ई अलाउद्दीन ने आईन उल मुल्क को मालवा, उज्जैन, चन्देरी और जालौर जीतने के लिए भेजा।

मालवा की विजय से कान्हड़ दे डर गया। आइन उल मुल्क कान्हड़ दे के अभय पर (Sapeconduct) की प्राप्ति की। रावल बादशाह के सामने पहुचा और इसके बाद उसकी मित्रों में गणना हुई १८।

इसी इतिहास में कुछ समय के बाद कान्हड़ दे और अलाउद्दीन के झगड़े का भी वर्णन है। कहा जाता है कि एक दिन जब कान्हड़ दे अलाद्दीन की मजलिस में उपस्थित था तो अलाउद्दीन कह उठा "हिन्दुस्तान में कोई ऐसा भूपति नहीं जो मेरी सेना का मुकाबला कर सके।" कान्हड़ दे ने अपनी अज्ञानता और मूर्खता १) के वशीभूत हो कर कह बैठा "मैं आपका सामना करूँ और न जीतूँ तो मैं जानता हूँ कि प्राणों को किस प्रकार देना चाहिए।" बादशाह इन शब्दों से झुंझलाया किन्तु उसने कुछ न कहा और कान्हड़ दे को जालौर वापस जाने दिया। दो तीन महीने बीतने पर अलाउद्दीन ने अपनी शक्ति का प्रदर्शन करने के लिए गुले बिहिश्त नाम की एक बादशाही लौंडी को जालौर के विरुद्ध प्रयाण कर उसे जीतने का हुक्म दिया। गुले बिहिश्त निश्चित मुकाम पर पहुँची और उसने गढ़ रोध इतने आश्चर्यमय साहस और बहादुरी से किया कि कान्हड़ दे में बाहर आकर लड़ने की हिम्मत न हुई। गढ़ में रुद्ध आदमी तंग हालत में पहुच चुके थे और गढ़ का पतन होने वाला था। किन्तु गुले बिहिश्त अचानक बीमार पड़ी और मर गई। उसके पुत्र शाहीन ने अब सेना का नेतृत्व किया और अपनी माँ की तरह गढ़ को हस्तगत करने का प्रयत्न किया। कान्हड़

दे ने यह सोच कर कि सुलतान का कोप अब अवश्यंभावी है जान तोड़ कर लड़ने का निश्चय किया। उसने अपने सब आदमियों को इकट्ठा किया और दुर्ग से बाहर आकर युद्ध किया। भाग्यवशात् कान्हड़ दे और शाहीन का सामना हुआ और शाहीन मारा गया। दूसरे अमीर संग्राम चलाने में असमर्थ हो कर कुछ मंजिल पीछे हटे। अलाउद्दीन ये समाचार मिलने पर अत्यंत क्रुद्ध हुआ और नई फौज सहित कमालुदीन को गढ़ जीतने के लिए भेजा। कमालुदीन ने बड़ी बहादुरी और तत्परता दिखाई। उसने गढ़ जीत लिया और कान्हड़ दे की पुत्रों और साथियों समेत कत्ल कर उसका खजाना छीन लिया, जब विजय का सन्देश दिल्ली पहुंचा तो खुशी के नगारे बजाए गए १६।

इस वर्णन की बहुत सी बातें ठीक प्रतीत होती हैं। पद्मनाभ ने गले बिहिश्त का वर्णन नहीं किया। क्या यही उसकी सिताई है। या सत्य को छिपाने के लिए परवर्ती मुसलमान इतिहासकारों ने शाहजादी को लौंडी का रूप दे दिया है। इनमें से चाहे कोई सी बात सत्य हो यह बहुत सम्भव है कि कोई स्त्री गढ़ रोध के समय वहाँ उपस्थित थी गढ़ की स्थिति भी कुछ खराब हो चली थी। स्वयं पद्मनाभ के वर्णन से प्रतीत होता है कि कान्हड़ दे भी काफी चिंतित हुआ २०। वर्षा के आने पर जालोर का कष्ट टल गया, फरिश्त का शाहीन शायद पद्मनाभ का मालिक निजामुदीन है। यह स्वयं कान्हड़ दे के नहीं, कान्ह उलीचे के हाथों मारा गया। इसके बाद सुलतान ने जो नई फौज भेजी, उसका भी पद्मनाभ ने वर्णन किया है और कमालुदीन को गढ़ जीतने का श्रेय दिया है।

कान्हड़ दे के अंतिम युद्ध की कथा का वर्णन समुचित रूप में केवल कान्हड़ दे प्रबन्ध में वर्तमान है। उस समय कौन भागा, कौन ठहरा, यह पारम्परिक जनश्रुति से पद्मनाभ को मालूम हुआ होगा। ऐसे समय राजपूतों के शौर्य की अग्नि परीक्षा होती और राजपूत ऐसे समय में वीरगति को प्राप्त अपने पूर्वजों का सादर स्मरण करते।

वीरम दे के साढ़े तीन दीन का राज्य भी कान्हड़ दे प्रबन्ध के आधार पर हमें स्मृत है। उसके मृत मस्तक ने भी मुस्लिम शाहजादी के प्रणय का किस प्रकार तिरस्कार किया यह और इसी तरह की कथाएँ पद्मनाभ के समय तक प्रचलित

हो चुकी होंगी। इनमें इतिहास की गवेषणा करना न फलप्रद है और न आवश्यक ही। पद्मनाभ कोरा ऐतिहासिक ही नहीं था वह कवि भी था अत उसे ऐसी कथाओं की कल्पना और उनके समावेश का भी पूर्ण अधिकार था।

टिप्पणियां—

१ कान्हड़ दे प्रबन्ध चतुर्थ खण्ड, ३३८

२ कान्हड़दे विष्णु का अवतार माना जाने लगा था, इस कारण से भी शायद पद्मनाभ ने अपनी कृति के श्रवण को पवित्र समझा हो।

३. मूल कथा प्राचीन राजवंशी ख्यातों में है

४. सिन्घी ग्रन्थ माला पृ० ३०

५. दुर्गाशंकर केवलराम शास्त्री गुजरात नो मध्य कालीन राजपूत इतिहास पृ० ४२६-४३१

६ " " " "

७ प्रो० यीबकृत अँग्रेजी अनुवाद खजाइनुलफुतूह पृ० ३७ टिप्पण सख्या ३

८ नैणसी की ख्यात भाग १, नागरी प्रचारणी सभा द्वारा प्रकाशित हिन्दी अनुवाद पृ० १५८

६, देव पत्तन के सोमनाथ का उद्धार तो सम्भवत कान्हड़ न कर सका था।

"But one god the greatest of them all was sent by the maliks to the imperial court, so that the breaking of their helpless gods may be deulonmprated to the ehmorshoping tlindus'

(Khryaihal bufuh Eoglist translaidn prof Mr Habib V 36)

जिन प्रभ सूरि ने सोमनाथ की मूर्ति के टुकड़े किये जाने और बैल गाड़ी में डालकर दिल्ली भेजे जाने का वर्णन किया है। (विविध तीर्थ कल्प पृ०)

१० विशेष वर्णन के लिए लेखक का प्राचीन चाहमान वंशों का इतिहास देखें।

११ इलियट और डासन खण्ड ३ पृ० १७१

१२ खजाइनुलफुतूह, अँग्रेजी अनुवाद पृ० ४९

१३ " " "

१४ अलाउद्दीन के समय की एक अन्य सिताई (छिताई) भी प्रसिद्ध है। छिताई चरित के अनुसार वह देवगिरि के राजा रामदेव की पुत्री थी।

कान्हड़ देव प्रबन्ध की सिवाई का दूसरा नाम फिरोजा था।

१५. इस विषय के विशेष विवेचन के लिए लेखक का प्राचीन चाहमानों का इतिहास देखें।

१६. कान्हड़ दे प्रबन्ध के खण्ड ३ पद्य १७१ में भी वीरमदे के बुलाए जाने का वर्णन है।

१७. पिछला टिप्पण देखें। प्रबन्ध के इस कथन नैणसी के वर्णन और फिरिश्ता की साक्षी से जिसका हमने अग्रिम पैरे में निर्देश किया है। यह स्पष्ट है कि कान्हड़ दे ने कुछ समय तक सुल्तान अलाउद्दीन की आधीनता स्वीकृत की थी।

१८. देखे खजाइनुल्फुतूह अँग्रेजी अनुवाद पृ० ४७ टिप्पण ४

१९. देखें वही पृष्ठ ५५-६ टिप्पण २

२०. देखें खण्ड ४ पद्य १२२-१४०

सम्पादकीयः—

लोक-साहित्य का अध्ययन क्यों ?

भारतीय राष्ट्रीयता के पुनर्निर्माण तथा विकास के लिये यह आवश्यक है कि हम अपनी प्राचीन राजनैतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और साहित्यिक स्थिति का ठीक मूल्यांकन कर सकें। इसका सही और वास्तविक मूल्यांकन हमें शिष्ट और उच्च स्तरीय साहित्यिक ग्रन्थों में उपलब्ध नहीं हो सकता। इसके लिये तो हमें भारत के लाखों लाख जन जीवन में प्रवेश करना पड़ेगा और कोटि २ कंठों से गाये जाने वाले गीतों, कही जाने वाली कथाओं एवं वार्ताओं तथा प्रचलित मुहावरों को अध्ययन का केन्द्र बनाना पड़ेगा। जब तक हम जन जीवन के इस विशाल क्षेत्र में नहीं प्रवेश करेंगे, तब तक न हम भारतीय जीवन की चिन्ता धारा को समझ सकेंगे और न हम लोक संस्कृति के निर्माण में अपना कोई महत्वपूर्ण योग दान कर सकेंगे। हमारा ध्यान आज भी शिष्ट और उच्च स्तरीय साहित्य के निर्माण और विकास की ओर तो अधिक है परन्तु लोक साहित्य के अध्ययन की हम अभी तक उपेक्षा कर रहे हैं यों इधर-उधर का चलता काम हम लोक साहित्य के क्षेत्र में भले ही कर रहे हों परन्तु योजना के साथ विशाल पैमाने पर नियमित काम जब तक इस ओर नहीं किया जायगा, तब तक हम न लोक संस्कृति के संरक्षण का काम कर सकेंगे और न भावी जन जीवन की सभ्यता के विकास में ही कुछ सहायता दे सकेंगे।

भारतवर्ष के गांवों में बसे हुए धरती-पुत्रों के सैंकड़ों और हजारों वर्षों के और सर्गों के आधार पर ही हम अपनी नई जन संस्कृति का अभ्युदय कर सकते हैं। इसके लिये ग्रामीण संस्कृति का अध्ययन करना होगा। इस काम में ज्यों २ समय व्यतीत होता जा रहा है, त्यों २ इस अपूर्व लोक साहित्य के भण्डार में न्यूनता आती जा रही है। राजस्थान इस प्रकार के साहित्य के अध्ययन के लिये एक बड़ा और अनुपम क्षेत्र है। सैंकड़ों वर्षों से प्रचलित मौखिक साहित्य अभी

तक वृद्धाओं और वृद्धों की जबान पर अंकित है। उसे समय रहते लिपि बद्ध कर लिया जाय तो हमें भूतकाल के लोक जीवन के समग्र इतिहास को प्रस्तुत करने में अनूठी सहायता मिलेगी। अभी तक हमारा इतिहास सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से अधूरा है। उसे पूर्णता देने के लिये भारत के इन लाखों गांवों के सामाजिक जीवन को देखना होगा और उसे प्राथमिक आवश्यकता समझ कर काम करना पड़ेगा, सामाजिक श्रेयात्मक भावना के विकास के लिये भूत के गौरवमय जीवन से प्रेरणा प्राप्त करनी होगी; केवल वर्त्तमान की विभीषिका से उत्पन्न यान्त्रिक जीवन के उहा पोहों से नई विश्व संस्कृतिक का कल्याण मार्ग प्रशस्त नहीं हो सकता।

विश्व के अन्य हिस्सों में लोकसाहित्य का वैज्ञानिक विश्लेषण कर अध्ययन कार्य वर्षों से किया जा रहा है परन्तु हमारे यहाँ अभी तक इने गिने मनीषियों ने ही इस अनिवार्य आवश्यकता को अनुभव किया है। जिनमें गुजरात के स्वर्गीय श्री मेंघाणीजी और श्री देवेन्द्र सत्यार्थी हैं। इन दोनों ने लोक-साहित्य के क्षेत्र में सर्व प्रथम सफलता प्राप्त की है। आज कल राजस्थान में भी लोक-साहित्य को प्रकाश में लाने का कार्य कुछ व्यक्ति कर रहे हैं परन्तु वह अपर्याप्त है। इस क्षेत्र में जितना अधिक और शीघ्र ध्यान दिया जायगा, उतना ही लाभ है।

लोक साहित्य के अध्ययन से हम अपनी भावी पीढ़ी को अतीव की जानकारी से जिस ओर मोड़ना चाहेंगे, मोड़ सकेंगे। लोक में प्रचलित कथाओं, वार्ताओं मुहावरों और गीतों के द्वारा हमें जन की विचार-धाराओं और संस्कारों का ज्ञान सरलता से हो जायगा; तब हम जन की भावना को किस मार्ग की ओर प्रवृत्त करना चाहेंगे, यह आसानी से तय किया जा सकेगा।

भगवतीलाल भट्ट सा० रत्न
प्रबन्ध सम्पादक

पत्रिका-परिचय और नियम



१—यह साहित्य-संस्थान राजस्थान विश्व विद्यापीठ का त्रैमासिक पत्रिका है।

२—इसमे १-प्राचीन साहित्य मुख्यत प्राचीन राजस्थानी साहित्य, २-लोक साहित्य, ३-इतिहास, ४-पुरातत्व, ५-वनस्पति शास्त्र और ६-कला, भाषा शास्त्र आदि विविध विषयों के शोध पूर्ण निबन्ध रहेंगे। साथ ही शोध-समाचार, साहित्य समीक्षा आदि का भी समावेश होगा।

३—राजस्थान इसका प्रमुख क्षेत्र रहेगा।

४—निबन्ध में प्रकट किये गये विचारों के लिये उनके लेखक ही उत्तरदायी होंगे।

५—लेखकों को प्रकाशित निबन्धों के २५ रीप्रिन्ट सम्बन्धित प्रति के अतिरिक्त भेंट किये जाएँगे।

६—समालोचनार्थ पुस्तकों की दो प्रतियाँ आनी आवश्यक होंगी। एक प्रति आने पर उसके लिये धन्यवाद देने के साथ प्राप्ति स्वीकार की जायगी।

७—पत्रिका का वार्षिक मूल्य १०) रु० तथा एक प्रति का ३॥) रु० है।

८—किसी भी अङ्क से ग्राहक बनाये जा सकेंगे, किन्तु वर्ष से कम के लिये नहीं।

९—पत्रिका का प्रति वर्ष-चैत्र, आषाढ़, आश्विन और पौष (मार्च, जून, सितम्बर तथा दिसम्बर) में प्रकाशित हो जाया करेंगी।



साहित्य संस्थान, राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर

प्रकाशित साहित्य—

१ राजस्थानी भाषा
श्रीयुत डॉ॰ सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, एम॰ ए॰, डी॰ लिट्॰, मूल्य २॥)

२ राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज भाग—१
श्रीयुत पं॰ मोतीलालजी मेनारिया एम॰ ए॰ मूल्य ३)

३ राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज भाग—२
श्रीयुत अगरचन्द नाहटा, मूल्य ४)

४ मेवाड़ की कहावतें भाग—१
श्रीयुत पं॰ लक्ष्मीलाल जोशी, एम॰ए॰, एल-एल॰ बी॰ मूल्य २)

५ मेवाड़-परिचय
श्रीयुत विपीनविहारी वाजपेयी, एम॰ ए॰, साहित्य रत्न, मूल्य ॥)

६ मालवी कहावतें भाग—१
श्रीयुत रतनलाल मेहता बी॰ ए॰ एल-एल॰ बी॰, मूल्य २)

७ पूर्व आधुनिक राजस्थान मूल्य अ॰ जि॰ ६) रु॰ स॰ जिल्द ७)
श्रीयुत महाराज कुमार डॉ॰ रघुवीरसिंह, एम॰ ए॰, डी॰ लिट्॰ एल-एल॰ बी॰

८ शोध-पत्रिका भाग—१ मूल्य ६) रु॰, भाग—२ मूल्य ८) रुपया

शीघ्र ही प्रकाशित होने वाली पुस्तकें—

१ राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज भाग—३
श्रीयुत अगरचन्द नाहटा

२ आदि निवासी भील
श्रीयुत जोधसिंह मेहता, बी॰ ए॰ एल-एल॰ बी॰

३ राजस्थानी लोकगीत भाग—१
श्रीयुत जनार्दनराय नागर, एम॰ ए॰, साहित्य रत्न

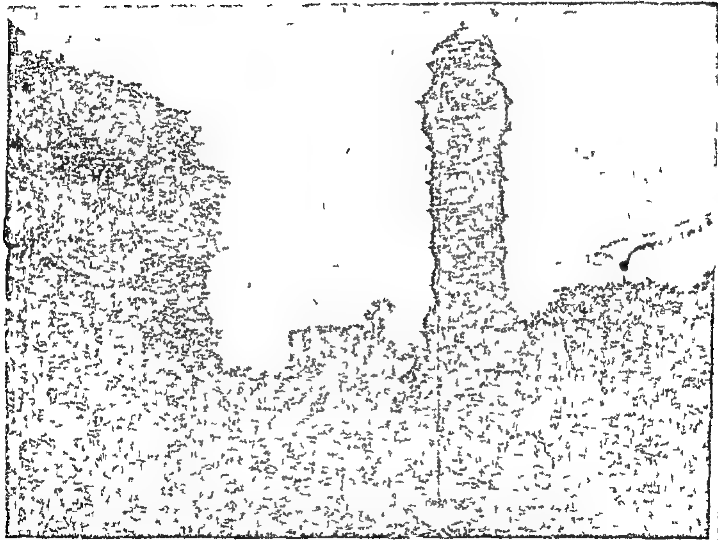
४ चारण गीतमाला भाग—१.
श्रीयुत पुरुषोत्तम मेनारिया, साहित्यरत्न । सहायक सम्पादक श्रीयुत सांवलदान आशिया

५ राजस्थानी वार्ता भाग—१
श्रीयुत नरोत्तमदास स्वामी, एम॰ ए॰

मुद्रक—विद्यापीठ प्रेस, उदयपुर।

शोध-पत्रिका

राजस्थान सरकार द्वारा स्वीकृत



[भाग २ अङ्क ३]

[चैत्र सं० २००८-९
मार्च १९५२]

इस अङ्क में:—



"सरस्वती देवयन्तो हवन्ते"

शोध-पत्रिका

[साहित्य संस्थान, राजस्थान विश्व विद्यापीठ
की प्रमुख त्रैमासिक पत्रिका]

भाग ३	उदयपुर, चैत्र सं० २००९	अङ्क ३

हेमरत्न रचित गोराबादल का रचनाकाल और अन्य ज्ञातव्य बातें।

(लेखक — अगरचन्द नाहटा)

नागरी प्रचारिणी सभा के तत्त्वावधान में हस्तलिखित हिंदी ग्रंथों की खोज का कार्य पचास वर्ष से भी अधिक समय से चल रहा है। इसके फलस्वरूप सैकड़ों कवियों की हजारों रचनाओं का पता चल सका है, जिससे हिंदी साहित्य के इतिहास का सिलसिलेवार निर्माण हो सका। सरकार ने प्रारम्भ से ही शोध कार्य में अच्छी सहायता दी और कई रिपोर्टें भी प्रकाशित कीं। पर खेद है कि इधर कई वर्षों से खोज रिपोर्टों के प्रकाशन का कार्य बंद है और हिंदी साहित्य के इतिहास लेखकों ने विगत कई वर्षों की शोध का विशेष लाभ नहीं उठाया। सभा के कार्यकर्त्ताओं ने यह ठीक किया कि नागरी प्रचारिणी पत्रिका में त्रैवार्षिक खोज का सार प्रकाशित करते रहते हैं, जिससे बहुत सी नई जानकारी शीघ्र प्रकाश में आ जाती है और खोज रिपोर्टों के अप्रकाशित रहने पर भी हम उस जानकारी से वंचित नहीं रहते। फिर भी पत्रिका के सीमित पृष्ठों में विवरण बहुत संक्षेप में ही दिया जाता है अतः मूल रिपोर्टों के प्रकाशन की आवश्यकता तो है ही। अर्द्ध शताब्दी के समय सभा ने तब तक के समस्त रिपोर्टों का एक सार रूप ग्रंथ प्रकाशित करना प्रारम्भ किया था, पर वह अभी तक अधूरा ही पड़ा है जिसे पूर्ण करवाना आवश्यक है।

वि०सं० २००१ से २००३ की त्रैवार्षिक शोध का विवरण पत्रिका के गत वर्ष [illegible] अंक १ में प्रकाशित हुआ है। यह बहुत परिश्रम से तैयार किया गया है, पर उसमें श्री मोतीलाल मेनारिया के 'राजस्थान में हिंदी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज' के प्रथम भाग (पृ० ४८ और १७८) के आधार

से हेमरत्न के गोरा बादल- पद्मिनी चौपाई का रचना काल सं० १७६० होने का समर्थन किया गया है, जो सही नहीं है। मैंने इसकी सूचना विवरणिका के तैयार करने वाले श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र को दी तो आपने लिखा कि इस संबंध में मैं प्रशस्ति के साथ कुछ लिख भेजूं तो वे पत्रिका में प्रकाशित कर देंगे। अतएव प्रस्तुत लेख में 'गोराबादल चौपाई' का वास्तविक रचना काल हेमरत्न की अन्य कृतियें और गोराबादल (पद्मिनी) संबंधी अद्यावधि अज्ञात रचनाएं इन तीनों बातों पर प्रकाश डाला जायगा। जिस प्रकार मेनारियाजी के अनुकरण में प्रस्तुत विवरणिका में जो भ्रान्त उल्लेख हुआ है उसकी परंपरा आगे न बढ़ने पाये, इसीलिये यह प्रयास किया जा रहा है।

पत्रिका मे प्रकाशित विवरणिका के अनुसार गोराबादल की चौपाई की जिस प्रति से विवरण लिया गया है, वह सभा के याज्ञिक संग्रह की है। उक्त हस्तलेख का अंत-पत्र अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण-दशा में होने के कारण रचयिता, रचनाकाल आादि का परिचय देने वाले पद्य ठीक सर पढ़े नहीं गये। यद्यपि इस प्रति से जो पाठ रचनाकाल के संबंध में उद्धृत किया गया है, उसमें स्पष्टतः "संवत् सोले (१६) सोले से पहंता(४५) " ... ।" पाठ है, और उससे संवत् '१६४५' ग्रहण किया जा सकता है; लिखा है, जो ठीक ही था। पर मेनारियाजी के खोज विवरण में उद्धृत पद्य सं०१७६० का सूचक होने से विवरणिका लेखक ने अमरसिंह द्वितीय के समय के साथ तुलना कर "अतः यही रचनाकाल मानना उचित है" लिखा गया है वह सही नहीं है। सं० १७६० वाली प्रशस्ति का पद्य मेनारियाजी ने उद्धृत किया है, वह वास्तव में मूलग्रंथ का रचनाकाल न होकर पीछे से'भाग विजय' नामक जैन यति ने इसमे नवीन काव्यो का समावेश किया है, उसकी प्रशस्ति का पाठ है। मूलग्रंथ का पाठ इससे पहले प्रति मे अवश्य होगा, पर उस ओर मेनारिया का ध्यान नहीं गया, इसी से यह भ्रान्त विवरण प्रकाशित हो गया, जिसे इस लेख मे आगे स्पष्ट किया जायगा।

राजस्थान में प्रस्तुत ग्रंथ का बहुत प्रचार रहा है। बीकानेर के जैन ज्ञान भण्डारों में भी मैंने इस ग्रंथ की १०, १२ प्रतियाँ देखी हैं, जिनमे कई रचनाकाल के बहुत थोड़े समय के बाद की लिखित हैं। हमारे संग्रह मे भी इस ग्रंथ की तीन-चार प्रतियाँ हैं, जिनमे दो सतरहवी शताब्दी की लिखित हैं। इन समस्त प्रतियो मे मूल ग्रंथकार की प्रशस्ति है और उस सबमें रचनाकाल सं०१६४५ का सूचक पाठ ठीक है। सं० १७६० वाली प्रशस्ति नहीं है। पर इस ग्रंथ की एक प्रति प्रवर्त्तक कान्ति विजयजी के संग्रह मे है, जिसका विवरण २५ वर्ष पूर्व स्व० मोहनलाल दलीचंद देसाई ने "जैनगुर्जर कविओ भा०१ पृ०२०८" मे प्रकाशित किया है। इस प्रशस्ति मे मूल ग्रंथकार की प्रशस्ति के साथ २ इस ग्रंथ मे प्रक्षेप व परिवर्तन करने वाले 'भागविजय' की प्रशस्ति भी उद्धृत है और वही मेनारियाजी के

विवरण में भी प्रकाशित हुई है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि परिवर्द्धित संस्करण की भी कई प्रतियाँ हुई जिनमें से एक मेनारियाजी को मिली, दूसरी अगरचंदजी के संग्रह में पाटन जा पहुंचा। संभव है और भी कई स्थानों में इस परिवर्द्धित संस्करण की प्रतियाँ हों। पर बीकानेर में तो यह संस्करण नहीं पहुंच कर मूलग्रंथ ही प्रचारित रहा है।

करीब पन्द्रह वर्ष हुए स्वगीय सूर्यकरणजी पारीक व स्वामी नरोत्तमदासजी ने जटमल ग्रंथावली का सम्पादन किया था, तब आपने जटमल की 'गोराबादल की बात' के परिशिष्ट रूप में हेमरत्न की प्रस्तुत चौपाई को भी प्रकाशित करने के लिये प्रतिलिपि की थी। अनुकूल संयोगों के अभाव में वह जटमल ग्रंथावली अभी तक प्रकाशित नहीं हो पाई। इसी समय जटमल की 'गोराबादल बात' की प्रतियों का निरीक्षण कर और उनके अन्य ग्रंथों की खोज कर हमने 'जटमल नाहर और उनके ग्रंथ' शीर्षक लेख 'हिन्दुस्तानी' में प्रकाशित किया था, उसमें हेमरत्न, लब्धोदय और एक अन्य कवि के रचित पद्मिनी संबंधी रचना का उल्लेख किया था।

कुछ वर्ष हुए उदयपुर के प्रो० उदयसिंह भटनागर ने इस ग्रंथ पर थीसिस लिखने का प्रयत्न किया था, पर वह पूरा नहीं हो सका। तदनन्तर बेरिस्टर रविशंकर देराश्री ने इसके प्रकाशन की तैयारी की थी, पर वह भी ऐसी ही रही। इन दोनों विद्वानों ने इस ग्रंथ की प्रतियों के संबंध में मेरे से पूछताछ की थी। अभी मुनि जिनविजयजी हमारे यहाँ पधारे तो राजस्थान पुरातत्त्व मंदिर की ओर से इसे प्रकाशित करने का कह गये थे। पर प्रकाशित हो जाय, तब ही ठीक हो। इस प्रकार यह ग्रंथ राजस्थान में काफी प्रचार होने पर भी काल परिपाक न होने से अभी तक अप्रकाशित पड़ा है।

रचना काल पर विचार —

प्रस्तुत ग्रंथ के रचनाकाल संबंधी निर्णय तो ग्रंथकार की दी हुई प्रशस्ति से भलीभाँति हो जाता है। सभा की प्रति में प्रशस्ति का अंश त्रुटित था अतः हमारी संग्रह की प्रति में यहाँ प्रशस्ति का आवश्यक अंश उद्धृत किया जा रहा है —

पूनिमि गछि गिरूआ गणधार, देवतिलक सूरीसर सार।
ज्ञान तिलक सूरीसर तास, प्रतपइ पाटइ बुद्धि निवास ॥ ६०९ ॥
पदमराज वाचक परधान, पुहवी परगट बुद्धि निधान।
तास सीस सेवक इम भणई, हेमरतन मनि हरखइ घणइ ॥ ६१० ॥
संमत सोलेसइ पणयाल, श्रावण सुदि पांचमि सुविशाल।

पुहवीपीठ घणूं परगाणी, सकल पूर्व गोरढ़ कहाणी ॥ ६११ ॥
प्रथवी परगट राण परताप, प्रतपइ दिनकर अधिक प्रताप ।
तस मंत्री सद बुद्धि निधान, कावेड़िया कुलि तिलक समान ॥ ६१२ ॥
साम धरम धुरि भामोसाह, वइरीवंस विधंसण राह ।
तसु लघु भाई ताराचंद, अवनी जाणि अवतरियो इंद ॥ ६१३ ॥
ध्रुव जिम अविचल पालइ धरम, मन सहुबांधा पावग ।
तसु आदेश लही सुभ भाई, सभा रंजित रागी नृपराई ॥ ६१४ ॥
बात रची श्रे बादल तणी, सामधरम अनि सोहामणी ।
वीरारस शृंगार निसेस, रस बे रास अवइ नविसेस ॥ ६१५ ॥
सुणतां सविसुख संपद मिलइ, भणतां भावठि दूरइ टलइ ।
उत्तम अंगि हुइ अति घणो, मूरख जाण करि मंत्रणो ॥ ६१६ ॥
गटसित सोहम आके ग्रंथ, गुणियो निगउ भाख्यो मंनंथ ।
अधिकउ ओछउ जे हुई उच्चरउ, सयण सुगांनि करज्यो खरउ ॥ ६१७ ॥
साम धम्म पालतासदा, मिगतीं आवइ घरि संपदा ।
सुरनर सहु प्रसंसा करइ, वरमाला ते लखमी वरइ ॥ ६१८ ॥

श्रीपूज जिन चारित्र सूरिजी के संग्रह की प्रति में भी इतने ही पद्य हैं। उपरोक्त प्रशस्ति से स्पष्ट हो जाता है कि पूर्णिमा गच्छ के देव तिलक सूरि के पट्टधर, ज्ञान तिलक सूरि के शिष्य वाचक पद्मराज के शिष्य हेमरत्न ने इस ग्रंथ की रचना की। सं०१६४५ के श्रावण सुदि ५ को सादड़ी ग्राम में इसकी रचना हुई। महारानाप्रताप के मंत्री कावेड़या गोत्रीय भामाशाह के भाई ताराचंद के आदेश से कविने बादल की बात जैसी सुनी इसमें ग्रंथित की है। इसमें वीर और शृंगार रस की प्रधानता है और स्वामी धर्म की प्रशंसा में यह रची गई है। इसकी पद्य सं० ६१६ का ग्रंथकार ने स्वयं उल्लेख किया है।

मेनारियाजी और देसाईजी को प्राप्त प्रति में पद्य सं० ६१७ है। अतः तीन सो पद्य मूल ग्रंथ में पीछे से प्रक्षिप्त किये गये हैं। इसकी सूचना प्रक्षिप्त कारक ने इन पद्यों में स्वयं करदी है:—

हेमरतन की बुद्धि छंद चौपइ प्रथम किय ।
अब कुछ वयण विसेख, सुकविराज सगुण थप्पिय ।
सुद्रढबंध संग्राम, सूर चित-वेधक वायक ।
कवित दूहा चौपइ, धरै नौतन जहाँ लायक ।
महिलाग्रंथ उज्जल कली, त्रियसरूप भूसण सजै ।

रग रेख भरे चित्राम सिर, गुलक्यारी दरखत (उपवन) मधै ॥ ६१० ॥
कहु दोहा कहु चोपइ, कहु कहु कवित सुचग ।
वयण नीर ज्यु मिलि रहे, मनहु त्रिवेणी सग ॥ ६११ ॥
अमर राण जयसिंघ सुत, तपे भाण हिंदवांण ।
प्रीथीराज खुमाण यह, मौज लहिर महिराण ॥ ६१२ ॥
पाट भगत दिल्लीपुर, साम धरम परधान ।
सिंघ सुकछ रूपा सतन, निरमल बुद्धि निधान ॥ ६१३ ॥
सुगतन वेधक चतुर, मेदपाट भूपाल ।
छल बल अणकल सामध्रम, बादल ज्यु विरदाल ॥ ६१४ ॥
गुण ग्राहक गायक सुगुण, दत मोजा दरियाव ।
सिंह साह राखे सदा, भाग विजय सु भाव ॥ ६१५ ॥
ताम पियारी चौपइ, मनमारी अती मांन ।
तैं दाता चित रंजवण, रचे कवित मनौज ॥ ६१६ ॥
वदी चेतह साठै वरस, तिथि चोदसि गुरुवार ।
बाधे कवित सुवित्त परि, कुंभलमेर मझारि ॥ ६१७ ॥

इनमें से पद्यांक ६१० वाले कवित्त को छोड़ कर सात दोहे मेनारियाजी ने उद्धृत किये हैं। कवित्त 'जैनगुर्जर कवियों' में यहां उद्धृत किया है। उद्धृतपद्यों में यह साफ कहा गया है कि स्थान स्थान पर जहां उपयुक्त प्रतीत हुआ दोहा, चौपाई, कवित्त नये बना कर मूल हेमरत्न के ग्रंथ में बढ़ाये गये हैं। महाराणा जयसिंह के पुत्र अमरसिंह के स्वामिभक्त प्रधान रूपा के पुत्र सिंहशाह के लिये भाग विजय ने इनकी रचना की है। सं० १७६० के चैत्र बदी १४ गुरुवार को कुंभलमेर में यह ग्रंथ पूर्ण हुआ है। मेनारियाजी की प्राप्त प्रति जिन मायाचन्द्र रुचिजी के संग्रह की है जो सं० १७७१ में लिखी गई है। देसाई को प्राप्त प्रति सं० १६६७ इसके पूर्व की है। मेनारियाजी की प्राप्त प्रति में भी मूल ग्रंथकार की प्रशस्ति अवश्य ही है क्योंकि देसाई और मेनारियाजी दोनों के उद्धरणों में पद्यांक ६१७ समान है। पर मेनारियाजी ने अंतिम पद्य को ही मूल ग्रंथकार का समझ कर इससे पूर्ववर्ती मूल प्रशस्ति की खोज नहीं की, इसी से रचना काल सं० १७६० बतलाने की गलती होगई। मैंने यथा समय मेनारियाजी को वास्तविक रचना काल सं० १६४५ होने की सूचना देदी थी और उन्होंने उसके अनुसार 'राजस्थानी भाषा और साहित्य' नामक ग्रंथ पृ० १४८ में इसका रचना काल सं० १६४५ स्वीकार किया है। किन्तु पिछला लेखक का ध्यान उस ओर नहीं

जाने से ही मेनारियाजी के पूर्व-सूचन का ही उन्होंने समर्थन कर दिया, जो उपर्युक्त वक्तव्य से संशोधन हो जाना चाहिये।

विशेष प्रसिद्ध ग्रंथो मे समय २ पर अन्य विद्वानो द्वारा प्रक्षेप करने की परिपाटी बहुत पुरानी है। महाभारत आदि ग्रंथ इसके स्पष्ट प्रमाण है। हिंदी साहित्य का पृथ्वीराज रासो भी इसका ज्वलंत उदाहरण है। इसके विभिन्न चार संस्करण मैंने खोज निकाले है, जिनमें सब से छोटा १०००-१२०० श्लोक का है। उससे बडा साढे तीन हजार, चार हजार, मध्यम संस्करण ७५०० से १०००० और बडा संस्करण करीब ३५-४० हजार श्लोकों का है। इससे समय २ पर पृथ्वीराज रासों में प्रक्षिप्त अंश किस तरह बढता गया इसका कुछ आभास मिल जाता है। सुप्रसिद्ध हिंदीग्रंथ सूरसागर को ही लीजिये, उसकी कई प्राचीन प्रतियों मे ५०० से ८५० पद ही हैं। जबकि प्रकाशित संस्करण मे पदों की संख्या पांच हजार से भी अधिक है। और कोई कोई तो इसका परिमाण एक लाख तक कहते हैं। मूल ग्रंथ मे प्रक्षेप करने की प्रणाली आज भी चालू है। जोधपुर के एक ऐतिहासिक काव्य मे परिवर्द्धन ं० नित्यानंदजी ने किया है। इसी प्रकार जैसलमेर के पंडित हरिदत्तजी गोविंद व्यास ने 'भटीवंशप्रशस्ति' में किया है। वास्तव मे यह कार्य मूल ग्रंथ की शोभा और महत्व को बढाने की दृष्टि से ही किया जाता है। अतः कोई अनुचित नहीं। पर इसका उल्लेख प्रक्षेपक करदें तो उससे साहित्य संसार मे भ्रम उत्पन्न न हो। 'माग विजय' ने भी अपनी ओर से प्रक्षेप करने की स्पष्ट सूचना देकर बहुत ही उत्तम किया है।

राजस्थानी भाषा के जनकाव्य 'रुकमणी मगल' मे मूंधडा शिवकरण ने बीच बीच मे परिवर्द्धन कर काव्य को बहुत ही सजीव बना दिया है। इस काव्य की सब से प्राचीन प्रति सं० १६६६ की लिखी हुई मेरे संग्रह मे है, जिसके अनुसार मूलतः ग्रंथकार पदमा तेली ने बहुत छोटा सा—२५०-३०० श्लोकों का बनाया था, जबकि प्रकाशित ग्रंथ उससे दस गुना होगा। इसी प्रकार राजस्थानी के अन्य जनकाव्य 'नरसी रो माहेरो' भी मूलतः बहुत छोटा था। ऐसे और भी अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं, जिनमे जन साधारण की दृष्टि से परिवर्द्धन उपयोगी सिद्ध हुआ है। पर संशोधक विद्वानों की दृष्टि से मूल रूप ही उपादेय है। क्योकि अन्य बातों के घुस जाने से मूल ग्रथकार के मन में विपर्यय हो जाता है और भाषा मे परिवर्तन भी, जिससे उसकी भाषा और ग्रन्थकार-अभिमत के सम्बन्ध में निर्णय करना कठिन हो जाता है। उन्हे मूल रूप की खोज के लिये अनेक प्राचीन प्रतियों का अवलबन लेना पडता है जिससे बहुत समय और काम उठाना पड़ता है।

हेमरत्न की अन्य रचनाएं:—

जैन गुर्जर कवियो भा० १ पृ० २०७ में हेमरत्न की अन्य निम्नोक्त रचनाओं का निर्देश है—

१ शीलवती कथा १६०३ (१६७३ ?) पाली
२ लीलावती १६०३
३ महीपाल चौपाई गाथा ६६६ स० १६३६
४ गोराबादल कथा—पद्मिणि चोपाई स० १६४७ (–५) चै० व० १४ गुरु
   सादड़ी (दीपमां १६४५) सोलहसैपणयाल सवलपुर मां

जैन गुर्जर कवियो भा० ३ में आपकी पांचवीं रचना 'सीताचरित' का उल्लेख है। इन रचनाओं के सम्बन्ध में विशेष अनुसंधान करते हुए हमारे संग्रह में कुछ वर्ष पूर्व एक गुटका आया जिसमें हेमरत्न के 'गोरा बादल चोपाई' के साथ अन्य तीन रचनाएं भी थीं। 'जैन गुर्जर कवियो' भा० १ में शीलवती कथा के जो अंतिम पद्य उद्धृत किये हैं, उन्हें हमारे गुटके में लिखित लीलावती चौपाई से मिलान किया तो दोनों ग्रंथ एक ही सिद्ध हुए। वास्तव में शीलधर्म के उपर लीलावती की कथा बनाई गई है, संभवतः शीलधर्म से सम्बन्धित होने से किसी ने उसका नाम 'शीलवती चोपाइ' धर दिया। पूरा निर्णय तो शीलवती की प्रति प्राप्त होने से ही हो सकेगा। क्योंकि उद्धृत पद्य तीन ही हैं। ग्रंथकार के अन्य दो ग्रंथों में भी कुछ पद्य एक समान ही मिलते हैं।

हमारे संग्रह के गुटके में आपका एक अद्यावधि अज्ञात ग्रंथ 'अमर कुमार चोपाई' है। जिस प्रकार 'गोरा बादल' की कथा मेवाड़ के मंत्री भामाशाह के भाई के लिये रची गई, इसी तरह यह ग्रंथ बीकानेर के महाराजा रायसिंह के मंत्री करमचन्द बच्छावत के आदेश से बनाई गई है। इसका रचना काल संवत् १६३६ है। देसाई द्वारा उल्लिखित 'महीपाल चौपाई' का रचनाकाल यही है अतः संदेह हुआ कि शीलवती और लीलावती की अभिन्नता की भांति 'महीपाल' और 'अमरकुमार चौपाई' के दोनों एक ही ना हों। क्योंकि 'अमरकुमार' प्रारम्भ में 'महीपाल' का नाम भी अवलोकन में आया। निर्णय करने के लिये 'लींबड़ी' से महीपाल की चौपाई की मंगवा कर देखा गया तो दोनों भिन्न ग्रंथ ही सिद्ध हुए। दोनों ग्रंथों की प्रशस्ति में तीन पद्य तो एक समान ही हैं। केवल ग्रंथ का नाम और रचना तिथि भी। मूलक पद्य में इस प्रकार परिवर्तन किया गया है जैसे —

ए महीपाल नरेन्द्र चौपई, सवत सोल छत्तीसइ थई
श्रावण सुदि पंचमी गुरुवार, बीकानेर नयर मझार।

यह पद्य अमरकुमार चौपई में इस प्रकार है —

ए अमरनरिंद तणी चौपई, संवत सोल छत्रीसइ थई ।
कातिक सुदि पंचम रविवार, बीकानेरह नयर मझार ॥

इसके आगे के तीन पद्य दोनों ग्रन्थों मे समान हैं जो ये हैं—

रायसिंह राजा राठोड, महिपलि जाणइ मस्तकि मौड,
तसु मंत्रीसर बुद्धि निधान, करमचंद कुल तिलक समान ।
ध्रुव जिम अविचल पालइ धरा, सत्रु राहु कीधा पाधरा ।
तसु आदेस लही सुभ भाई, सगलइ संघ तणइ सुपसाई ।
चरित रच्यो संखेपहि एह, विस्तरि कहतां नावहि छेह ।
भावधरी निसुणईजे एह, ऋद्धि वृद्धि सुखपामहितेए ।

जैन धर्म में दान, शील, तप और भाव-धर्म के इन चार प्रकारों के फल के दृष्टान्त रूप में सैंकड़ो ग्रंथों की रचना हुई हैं । कवि हेमरत्न ने भी 'अमरकुमार चौपई' के प्रारंभिक उल्लेख के अनुसार इन चारों धर्मों के संबंधी उपाख्यानों पर स्वतंत्र ग्रंथ अवश्य निर्माण किये होगे । इसी प्रकार क्रोध, मान, माया, लोभ इन चार त्याज्य दूषणो पर भी इन्होंने कोई ग्रन्थ बनाया होगा । इस विषय पर ग्रन्थ लिखने की कवि की इच्छा थी जो इन निम्नोक्त पद्यो से स्पष्ट हैं ।

दान सील तप भावना, चारु चरित्त कहेस ।
क्रोध, मान, माया वली, लोभादिक पभणेस ॥

इनमें से दान, धर्म पर 'अमर कुमार' का आख्यान, शील पर लीलावती और सीता चरित्र और भाव पर महीपाल चौपाई तो उपलब्ध हैं, पर 'तप' धर्म पर कोई ग्रंथ बनाया हो तो अब तक ज्ञात नही है ।

हमारे संग्रह के गुटके में वर्णानुक्रम से प्रारंभ होने वाली ५९ पद्यो की 'जदंग बावनी' प्राप्त है, जिसके रचयिता 'हेम कवि' प्रस्तुत हेमरत्न ही होने चाहिये, क्योंकि उनके अन्य तीन चौपाई और उनके शिष्य की एक रचना इसी गुटके मे है ।

हमारे संग्रह के 'रामरासो' की प्रति के अंत मे हेम कवि के रचित ९ अष्टक है । उनके रचयिता भी 'हेमरत्न' ही होना संभव है । इसी प्रकार शनिश्चर छद आदि भी आपही के होने चाहिये ।

हेम कवि के नाम मे और भी ३-४ कवि होगये हैं, जिनमें से दो कवियों का कुछ परिचय 'जैनसत्य प्रकाश' मैंने प्रकाशित किया है ।

हेमरत्न की उपलब्ध रचनाओं में 'महीपाल चौपाई' सर्व प्रथम और बड़ी रचना है। इसके तीन महीने पश्चात् ही अमरकुमार चोपाई की रचना हुई है। सीता चौपाई में रचना काल का उल्लेख नहीं है। गोरा बादल चोपाई की रचना स० १६४५ में और अंतिम लीलावती की रचना स० १६७३ में हुई है। इससे इनके ग्रंथ निर्माण का समय स० १६३६ से १६७३ तक-३७ वर्ष का निश्चित होता है। प्राथमिक रचना के समय कवि की आयु २० वर्ष की भी हो तो लगभग ६० वर्ष की इनकी आयु होनी संभव है।

स० १६४५ तक की रचना में वे अपने को 'वाचक' पदस्थ बतलाते हैं, जबकि लीलावती कथा की रचना के समय वे आचार्य पदासीन हो चुके थे।

हेमरत्नसूरि की शिष्य परंपरा के संबंध में अन्वेषण करने पर इनके शिष्य वाचक 'कुंवरसी' के रचित पाली के 'नवपल्लव पार्श्वनाथ' का ५ ३ पद्यों का ऐतिहासिक स्तवन हमारे संग्रह के एक गुटके में मिला है। यह स्तवन स०१६८१ में रचा गया है। अंतिम पद्य इस प्रकार है —

प्रथम गच्छ पति गुणेपूरित, हेमरतन सूरीसरो,
तसु सीस वाचक कुंवरसी इम, नीनवइजजे रंगे,

आपके अन्य शिष्यों और आगे की परंपरा का अभी कोई पता नहीं चल सका है।

गोराबादल चरित्र संबंधी अन्य राजस्थानी रचनाएं—

१ हेमरत्न के गोराबादल- पद्मिनी चौपाई के रचना काल पर विचार करते हुए प्रसंगवश इस संबंध की जो अन्य राजस्थानी रचनाएं उपलब्ध हैं- उनकी जानकारी भी पाठकों को दे देना आवश्यक समझता हूं। हेमरत्न की रचना के पश्चात् जैन कवि लब्धोदय ने पद्मिनी चोपाई की रचना स०१७०७ उदयपुर में की। इसके पश्चात् कवि दलपतविजय ने खुमाण रासो नामक एक बड़ा ऐतिहासिक ग्रंथ बनाया। जिसमें उदयपुर के राना रत्नसिंह के प्रसंग से गोराबादल और पद्मिनी का चरित्र विस्तार से वर्णित है। उन्नीसवीं शताब्दी की एक लघु रचना बीकानेर के बड़े ज्ञान भंडार में टिप्पणाकार लिखी हुई है। अभी इस संबंध की तीन और अज्ञात रचनाओं का पता चला है, जिनमें से प्रथम गोराबादल कवित्त का प्रथम पत्र हमारे संग्रह में १७ वीं शताब्दी का लिखा हुआ पहले से उपलब्ध था, पर वह अपूर्ण होने से ग्रंथ कितना बड़ा है, कुछ निर्णय नहीं हो सका था। ४-५ वर्ष पूर्व फलोदी के स्व० फूलचन्दजी झाबक के संग्रह के एक गुटके में यह पूर्णरूप से उपलब्ध हो गई है। इसके कुल ८२ कवित्त हैं। रचना किसी चारण कवि की होना संभवित है, पर ग्रंथकार नाम, रचना सम्वत् आदि उपलब्ध नहीं हुआ है। फूलचन्दजी का गुटका १८ वीं शताब्दी का लिखा हुआ है। पर हमारे संग्रह का पत्र

कागज और लिपि को देखते हुए १७ वीं शताब्दी का लगता है। संभव है, यह हेमरत्न के भी पहले की रचना हो।"

जैसलमेर भंडार का पुनर्वलोकन करते हुए राजस्थान के बड़े कवि जिन समुद्र सूरि की फुटकर रचनाओं का संग्रह वाला एक गुटका मिला, जिसमें पद्मावती की चोपाई का प्रारंभिक कुछ अंश प्राप्त हुआ है। संभवतः यह जिन समुद्र सूरि के रचित ही होगी, पर अभी तक इसकी पूर्ण कहीं उपलब्ध नहीं है।

बीकानेर की राजस्थानी साहित्य की उपासिका रानी लक्ष्मीकुमारी चूंडावत ने किसी चारण कवि की 'चित्तौड़ का साका' उन्हे उपलब्ध हुई, उसे उन्होने राजस्थान भारती में प्रकाशनार्थ भेजा था। पत्रिका में स्थानाभाव के कारण वह छप नही सकी। संभव हुआ तो अगले अंको में इसे प्रकाशित की जा सकेगी। खोज करने पर अन्य राजस्थानी रचनाएं भी इस सम्बन्ध की अवश्य ही उपलब्ध होगी। राजस्थान की प्रसिद्ध ऐतिहासिक घटना के सम्बन्ध मे ऐतिहासिक दृष्टि से विशेष विचार करने की ओर विद्वानो का ध्यान आकर्षित किया जाता है।



"राजस्थान के ऐतिहासिक दोहे"

(ले० मनोहर शर्मा ए० ए० साहित्य रत्न, काव्यतीर्थ)

राजस्थान सदा से वीरों का लीला क्षेत्र रहा है। इस त्याग भूमि में जिस प्रचुर मात्रा में असाधारण शौर्य प्रदर्शित करने वाले नर नारी अवतरित हुए उसी बहुलता से यहाँ वीर पुजारी एवं वीर गायक भी पैदा हुए। सत्य की रक्षा में प्राण दे देना ही यहाँ के लोगों का जीवन सूत्र रहा है। हुतात्माओं के यश शरीर को अमर बनाए रखने में यहाँ के कवियों ने अपनी वाणी को सार्थक माना है। वीर कवियों के ओजस्वी गीतों से यहाँ के जन साधारण का जीवन सदैव सरस रहा। फल-स्वरूप जितनी ऐतिहासिक सामग्री राजस्थान में पाई जाती है उतनी भारत के अन्य किसी भू भाग में शायद ही सुलभ हो। ख्यात-बात, विगत, पीढी-वंशावली, आदि के रूप में प्रचुर गद्य साहित्य राजस्थानी में रचा गया है। इन में ऐतिहासिक सामग्री काफी बड़े परिमाण में व्याप्त है। इनके अतिरिक्त पद्य साहित्य भी बहुत ज्यादा है। रासो, प्रकाश, विलास, रूपक, वचनिका नामधारी ऐतिहासिक काव्य बहुत लिखे गए हैं। कई काव्य छंदों के नाम पर भी रचे गए हैं। नीसाणी, झूलणा, वेल, झमाल, गीत, कवित्त, दूहा नाम से बहुत ज्यादा ऐतिहासिक काव्य प्रचलित है।

राजस्थान के ऐतिहासिक साहित्य में यहाँ के दोहा का आदरणीय स्थान है। इस छोटे से छंद ने राजस्थानी जन साधारण के हृदय एवं वाणी दोनों पर समान रूप से अपना पूरा अधिकार कर लिया है। हर एक आदमी को दस-पन्द्रह दोहे अवश्य याद होंगे। कुछ नीतिपरक, एवं कुछ ऐतिहासिक। यहाँ की ख्यातों (इतिहास ग्रंथों) एवं बातों (कहानियों) में भी दोहा का सुन्दर जड़ाव है। उन वीरों के बारे में भी लोक प्रचलित दोहे मिल जावेंगे, जिनके विषय में बेचारा इतिहास कुछ

नही जानता । बहुत से काव्य ही दोहामय है । इन में भी ऐतिहासिक काव्यो का काफी महत्त्व है । पात्रू जी रा दूहा, राव अमरसिंहजी रा दूहा, राणै सांगेरा दूहा, हम्मीर रा दूहा, समरसी चुहुआण रा दूहा, लाखे फूलाणी रा दूहा आदि २ काव्य राजस्थानी साहित्य जगत में प्रसिद्ध है, इनके अतिरिक्त असंख्य दोहे "साख री कविता" केनाम से प्रचलित है । जो ऐतिहासिक घटनाओं अथवा व्यक्तियों की साखी है ।

राजस्थानी लोगों की यह एक प्राचीन परम्परा है । हजारो वर्ष पहले भी यहाँ के जन साधारण मे इसी तरह ऐतिहासिक दोहों का प्रचार था। लोक काव्य की यह सुन्दर परिपाटी राजस्थानी जीवन की एक प्रमुख विशेषता है । यहाँ प्राचीन राजस्थानी के कुछ ऐतिहासिक दोहों के उदाहरण दिए जाते हैं । इनमे उस समय की घटनाओं का निर्देश है । जब मालवा, गुजरात, एवं राजस्थान सांस्कृतिक दृष्टि से इकाई थे । लगभग एक हजार वर्ष पहिले इस समग्र भू-भाग की भाषा अभिन्न थी । साथ ही लोक जीवन भी समान ही था । ये दोहे उस समय लोक जीवन में रमे हुए थे—

लाखा (कच्छ का राजा)

ऊग्यां ताविउ जहिंन किउ; लक्खउ भणइ निवट्ट ॥
गणिया लब्भइ दीहड़ा; के दहक अथवा अट्ठ ॥

(कुशल लाखा कहता है—कि उदय पाए हुए वीर से यदि शत्रु तपाए नहीं गए तो उसे जिंदगी के गिने हुए ही दिन मिलते हैं—आठ या दस ।)

मुंज (मालवा)

झाली तुट्टी किंन मुउ किं न हुयउ छार पुंज ॥
हिंडइ दो री बंधीयउ; जिम मंकड़ तिम मुंज

(मुंज, डोरी में बधे हुए बंदर की तरह घूमता फिरता है ! तू आग मे जल कर या फाँसी खाकर क्यो न मर गया ? तू राख का ढेर क्यो न हो गया ?)

भोज (मालवा)

भोय एहु गलि कण्ठुलउ; भण केहउ पडि भाइ ॥
उरि लच्छिहि मुह सरसि तिहि, सीम निबद्धी काइ ॥

(भोज, कहो यह कंठ हार तुम्हारे गले मे कैसा लगता है ? हृदय में लक्ष्मी और मुख मे सरस्वती के बीच यह सीमा बाँधी है क्या ?)

सिद्धराज जयसिंह (पाटण)

राणा सव्वे वाणिया; जेसलु वड्डउ सेठि ।
काहं वणिजड माण्डीयउ; अम्मीण गढ़ हेठी ॥

(सब राणा तो बनिए हैं और, जयसिंह बड़ा भारी सेठ है। क्या व्यापार फैलाया उसने हमारे गढ़ के नीचे।)

रा–खेंगार

तइ गढ्या गिरनार, काहुँ मणि मत्सर धरिउ।
मारीतां खंगार, एक्क सिहरु न ढालिउ॥

(हे ऊँचे गिरनार, तू ने मन में कैसा मत्सर धारण किया कि खेंगार के मारे जाने समय एक शिखर भी न गिराया।)

राजस्थान में ऐतिहासिक दोहों की परिपाटी प्राचीन तो है ही, साथ ही इनकी संख्या भी बड़ी भारी है। हरेक राजघराने का अपना अलग इतिहास है और हरेक राजा या ठाकुर के संबंध में कोई न कोई दोहा अथवा सोरठा मिल ही जाएगा। छोटी २ घटनाओं के परिचायक दोहे भी पाए जाते हैं। यहाँ तक कि अलग २ गाँवों के भी अपने २ दोहे होते हैं। जब कभी कोई भली या बुरी घटना होती है तो लोग उसकी साखी अर्थात् साखी का दोहा जोड़ लेते हैं। यह दोहा जन साधारण में उसी समय प्रचलित हो जाता है और काफी लम्बे समय तक चलता रहता है। इन दोहों में से जो दोहे राजघरानों से संबंध रखते हैं, वे तो पुस्तकों में स्थान पाकर बच जाते हैं और शेष का धीरे २ लोप हो जाता है, क्योंकि उनका अपने स्थान के बाहर कोई विशेष महत्त्व नहीं होता और न वे अधिक ही समय तक जनता का मनोरंजन कर पाते हैं। उदाहरण के तौर पर यहाँ शेखावाटी में प्रचलित ऐतिहासिक दोहों का संग्रह किया जाता है। इसी तरह राजस्थान के अन्य भागों के दोहे भी न जाने कितनी छोटी छोटी घटनाओं की याद बनाए हुए हैं। मगर पाकर इनकी बहुत बड़ी संख्या विस्मृति के गर्भ में विलीन भी हो चुकी है। साथ ही ज्यों २ समय बीतता जाता है इनका लोप होता जा रहा है। उदाहरण देखिए—

शेखाजी (अमरसर)

गौड़ बुलावे घावड़ै, चढ़ आवो सेखा। धारा लसकर मारिया, देस्यूं अमलेखा॥

टोडरमल (उदयपुर) शेखावाटी

दाग उदैपुर ऊजला, दाग दातार अटल्ल। इक तो राणो जगत सी, दूजो टोडर मल्ल॥
तूँ सेखो तू रायमल, तूँ ही गरामान। जय सिंघ का दल ऊजला, था सूँ टोडर माल॥

जूझारसिंह (गुढा)

डूँगर भांजी के गुढा, रण बांको जूझार। एकल आगे असुरगण, मार्या पांच हजार॥

शार्दूलसिंह (झुंझुणू)

सादूलो जगराम रो; सिंहल चूरी बलाय। गम दुहाई फिर गई; तुर्का फिरै दुवाय ॥
सादा थानै झुंझुणू; दीनां अमर पटे। बैठे पोते पड़ पोते; पांडी मान लटे ॥

शिवसिंह (सीकर)

बाँस बड़ा, टेरा बड़ा; दिना बडेरा होय। सेखावत स्यो सिंघसो; कूरम बड़ो न कोय ॥
अभैसिंघ जेसिंघ; हिंदू सह मेला हुआ। सुजस लियो सिवसिंघ; सारो टोलत सिवव्रत् ॥
मारू मेवाडाह; सोटा जाडेचा समा। दकिया ढूढाडाह; सुजस निहारो सेवसी ॥

चंद्रसिंह (सीकर)

जुग २ चांद मारिया; चोरासी का चोर। मत्र सत्र कांपण लग्या; पड्यो कासली गोर ॥

तिरमल (कासली)

तुरक सराहयो तोर; तेग तणो थारो त्रिमल। गज करो नागोर; दीन्हों मनमथ राव को ॥

दीपसिंह (कासली)

जननी सुत एहा जणे; जेहा दीपहु हल्ल। घर धीरा नें थापियो; उत्थापियो उदल्ल ॥

केसरीसिंह (खण्डेला)

बीकानेर सु बस बसी; दिन रैन सवाई। मरग्यो राजा केहरी; बल जाग्यो बाई ॥

जोरावरसिंह (झुंझुनू)

वणिया वात्र बणाव; जोरा मोहरां ऊपरै। जड़िया नगा जडाव; सोने में सादूल वन् ॥

किसनसिंह (झुंझुनू)

मेहां मोरा मदभरां; राजा या ही रीत। किसन चढ़ाया कर हले; वले न चढिया भीत ॥
कविया भाग पधारज्यो; कँवरज मुरधर देस। फूलाणी लाखौ जिसो; सादाणी किसनेस ॥
थारै जौडै किसन सी; जग्यो कँवर आमेर। एकजं हवो करण रै; पदम् बीकानेर ॥

अभयसिंह (खेतडी)

खगा जु बांकी खेतडी; भट बाको अभमाल। गढ पत राख्यो गोद मे; नौ कूंटी को लाल ॥

बख्तावरसिंह (खेतड़ी)

पातलिए अलवर लई; माधव रणथंभोर। रामचंद्र लंका लई, बखताबर बाघोर ॥

स्यामसिंह (बिसाऊ)

धन बिसाऊ, धन झुंझणू, धन २ स्याम नरेस । सेखाटी को सेहरो, मालम ध्यावे देस ॥
स्यामा सूरज माल रा, सरसा घरां सपूत । पुगाया अजमेर नैं, तुरका रा तावूत ॥
बसो बिसाऊ चोगणो, फोज न आवै फेर । उदम्या याँ मालम पड़ी, स्याम तणी समसेर ॥
स्यामा सूरज माल रा, मेवाँ घरां सपूत । साम्बू नें सीधा करी, साम्भा सोमो भूत ॥
रूक रगत करता रहे, राटै थग तमाम । मार्गा नो छोड़े नहीं, सूरजमल रो स्याम ॥

हम्मीरसिंह (बिसाऊ)

लाल मुहर गादड़ी, खाया सूना खेत । आसी फोज हमीर री, लेसी खाल समेत ॥
चौ धुरजा चोड़े खड़े, फोज घिरोला खाय । कहज्यो साथ मोरने, अहर खाय मर जाय ॥

चक्रसिंह (बिसाऊ)

राना चन्दर सिंघ रे, रहा पागड़ जन । हस्ती झूम द्वार पर, घोड़ा बंध्या कमन ॥

नवलसिंह (नवलगढ)

धर थारो तू ही धणी, नगना कीवो कोल । मादाणा सारा सिंह, नवलतर थारो तोल ॥

अन्य

लाडाणी नम लूटियो, माडाणी जग माय । कीरत हदा सेरना, ताना जुगां न जाय ॥
मन चायो पायो मरण, हुई फतैपुर हल्ल । रहसी रे मुलतानिया, गोड घणा दिन गल्ल ॥
गादा खाया बमचना, घा खायो गोनाह । सूरू चाली ढाकरा, बातने दोनाह ॥
सूरू होसी चोगुणी, धोरा पड़सी बींग । दारीड़ा उन जावसी, ज्यूं साखण री सींग ॥
दियो डूंग सिंघ जोधपुर, उजर अली आमेर । रतन जुहारो रुक्मियो, बचे बीकानेर ॥

राजस्थान किलों का देश है। गगन चुम्बी एवं अभेद्य दुर्गों की बड़ी भारी संख्या राजस्थान के यात्री को दूर से ही अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। राजा-महाराजा, ठाकुर सरदारों के अपने अपने गढ हैं। सब गढों के पीछे अपना २ इतिहास है। निश्चय ही वे इतिहास के पन्ने नरवीरों की उज्ज्वल गाथाओं से अलंकृत हैं। यहाँ कुछेक किलों की चढाइयों से सम्बन्धित दोहे दिए जाते हैं—

चित्तौड़ (जयमल राठौड़ की उक्ति)

है गढ म्हारो म्हैं धणी, असुर फिरै किम आण । कूँची गढ चित्तौड़ री, दीधी मुझ्न दिवाण ॥

जोधपुर (शेरसिंह मेड़तियों)

सेरो उभाँ किम संचरै; गढ अखतारी आण । मेड़तियो रण पोढसी; जद जासी जोधाण ॥

बीकानेर (कुशलसिंह)

कुशलौ पूछै कोट ने; बिलखो किम बीकाण । मो ऊभाँ तो पालटै; मलै न उगै भाण ॥

जालोर (मानसिंह जोधपुर)

आभ फटै धर ऊलटै; कटै बगतरा कोर ॥ सिर तूटै धड़ तडफडै; जद छूटै जालोर ॥

सिवाणो (अणकलो) कल्लाजी रायमलोत—

किलो अणकलो यूँ कहै; लड़ कल्ला राठौड़ ॥ मो सिर उतरै मेहणो; तो सिर बंधै मोड़ ॥

राजस्थान के राजाओं की बहु संख्या ने यहाँ की जनता के हृदय पर अधिकार करके सम्मान पाया है। वे जनता के आराध्य हुए। वे साधारण व्यक्ति न थे, वे लोक हृदय में राजभक्ति का संचार करने वाले महापुरुष थे। उनके राजपद की अपेक्षा उनका व्यक्तित्व ज्यादा ऊंचा उठा हुआ था। ...त; स्वरूप उनके विषय में बहुत से सम्मान सूचक दोहे जनता में फैल गए—

राजा खेंगार (सोरठ)

जे साचे सोरठ घड्यो; घड़ियो ऐ खेंगार ॥ ते साचो भांगीगयो; जातो रह्यो लुहार ॥

लाखो फूलाणी (सिंध)

लाखा पुत्र समुद्र का; फूल घरे अवतार ॥ परिवा मोती चुगै; लाखा रै दरबार ॥

हठी हमीर (रणथंभौर)

सिंघ रमण, सत पुरस बच; केलू फलै इकवार ॥ तिरिया तेल हमीर हठ; चढै न दूजी बार ॥

महाराणा प्रतापसिंह (मेवाड़)

माई एहा पूत जण; जेहा राण प्रताप ॥ अकबर सूतो औझकै; जाण सिराणै साँप ॥

महाराव सुरतान (सिरोही)

अवर नृपत पतसाह सूँ; हो भ्रित जोड़ै हाथ ॥ नाथ उदैपुर ना नम्यो; नम्यो न अरबुद नाथ ॥

राजसिंह (मेवाड)

मालपुरे रौ माल; केलपुरे घर २ कियौ ॥ सबल दिली रै साल; रारणौ ऊभौ राजसी ॥

जगतसिंह (मेवाड)

साँई करै परेवड़ा; जगपत रै दरबार ॥ पीछोलै पाणी पिवा; कण चुगा कोठार ॥

राजस्थान की जनता को यहाँ के राजा महाराजाओं के जीवन की घटनाओं में भी पूरी दिल-

चस्पी रही है। राजाओं के राजपद के अतिरिक्त उनके व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्ध रखने वाले दोहे भी बहुत बड़ी संख्या में लोक प्रचलित हैं। इन दोहों में कुछ विशेष बात दिल को छूने वाली जरूर मिलेगी। यही कारण है कि इन दोहों का प्रचार अब भी काफी है —

राव सीहाजी ने भीनमाल को जीत कर उसे ब्राह्मणों को दे दिया—

भीनमाल लीधी भड़े, सीहै सेल बजाय। दत दीधो सत संग्रह्यो, ओ जस कदे न जाय॥

राणकदेवी के पुत्र की सिद्धराज हत्या करने लगा तो उस वीर क्षत्राणी ने अपने पुत्र से कहा —

माणिग मत रोय, मत कर रातां अंखियां। कुल में लागै खोड़, मरतां मान गमाजे॥

गोगादेव ने एक बार अपने घोड़ों को चरने के लिए छोड़ दिया। घोड़े दूर निकल गए, शत्रुओं का हमला हुआ। गोगा देव जूझ गए —

भूला निमिया भाखरां, गया जे नेहार। टलिया हाथ न आवसी, गोगा दे घोड़ार॥

रावल जगमालजी ने बदला लेने के लिए गुजरात के यवन शासक के साथ अच्छा लोहा लिया —

पग पग नेजा पाड़िया, पग पग पाड़ी ढाल। बीबी पूछै खान नै, जग कित्ता जगमाल॥

राव चूंडाजी सात साल तक कालाऊ में पशु चरा लिया, फिर वे मंडोवर के स्वामी हुए तो चारण आल्हा ने उनसे कहा —

चूंडा नावै चीत, काचर कालाऊ तणा। भूप भयो भड़ भीत, मंडोवर रै मालिये॥

भटियाणी रानी उमादे ने जब अपना मान छोड़ने का विचार किया तो कवि आसानन्द ने उससे कहा —

माण रखे तो पीव तज, पीव रखे तज माण। दो दो गयंद न बंधही, एकण खंभू ठाण॥

सिरोही की राणा पूजा के थान पर गद्दी को प्राप्त बनाने के लिए यह दोहा कहा गया —

पूँग पठाण मारिया, कांई हूं पछ पाग। जोधा जगमल मारिया, आप गये नै आग॥

महाराजा रामसिंहजी ने दूर देश में राजस्थानी कौम के पौध को देखा तो वे आकाश में उड़ते हेत का दोहा कहे —

मूं में देखी कांमड़ी, मूं पर दसी खोम॥ म्हारे पटवार मेड़िया मूं को पावै पोम॥

महाराज अमरसिंह को शाही दरबार में सलाबतखाँ ने गँवार कह दिया। उसका फल देखिए-

उण मुख तै गग्गो कह्यो; इण कर लई कटार ॥ वार कहण पायो नहीं; जम ढढ हो गई पार।

महाराजा अजीतसिंह ने लोगों के बहकावे में आकर महावीर दुर्गादास को निकाल दिया—

महाराज अजमाल री; जद पारख जाणीह। दुरगो देसां काढियो; गोला गाँगाणीह ॥

राजस्थान के लोक प्रचलित दोहा साहित्य का एक पत्त अतीव मनोरम है। वह है- यहाँ का कवितामय पत्र व्यवहार। विशेष परिस्थिति मे कविता के रूप मे पत्र-व्यवहार करना बड़ा ही प्रभावोत्पादक सिद्ध हुआ है। साथ ही ऐसा पत्र-व्यवहार दोनों पत्त के अपार साहित्य-प्रेम का भी साक्षी है। जिन लोगो के जीवन मे साहित्य का रस प्रवाहित होता है, वे ही ऐसा कवितामय पत्र व्यवहार करने का सुयोग पाते हैं। राजस्थानी काव्य मे ऐसे अनेक उदाहरण हैं, जो पाठक के हृदय को बलात् अपनी ओर आकर्पित कर लेते हैं।

लोद्रवे के अधिपति भोज देव ने यवनो के साथी अपने चचा जैसल को यह पत्र भेजा था—

भड किंवाड़ उतराद रा; भाटी झेलण भार ॥ वचन रखां विजराज रो; समहर बाँधा सार ॥
तोडा घड तुरकाणरी, मोडां खान मजेज ॥ दाखे अनमी भोज दे; जादम करे न जेज ॥

महाराज पृथ्वीराज राठोड और महाराणा प्रताप का पत्र व्यवहार—

पत्र

पटकूँ मूँछां पाण; के पटकूँ निज तन करद। दीजे लिख दीवाण. इण दो महली बात इक ॥
पातल जो पतसाह, बोलै मुख हूता बयण ॥ मिहर पिछम दिस माहः ऊगै कासव रावउत ॥

उत्तर

तुरक कहासी मुख पतै-इण तन सूं इकलिंग ॥ ऊगै ज्याँ ही ऊगसी, प्राची बीच पतग ॥
खुसी हूत पीथल कमध, पटकों मूछां पाण ॥ पछटण है जेतं पतौ, कलमा सिर केवाण ॥

महाराणा अमरसिंह और अब्दुलरहीम खानखाना का पत्र व्यवहार भी अतीव प्रभावोत्पादक है—

हाडा, कूरम, राठवड, गोखां जोख करंत ॥ कहज्यौ खाना खान ने, वनचर हुआ फिरंत ॥
तँवरां सूं दिल्ली गई, राठौड़ां कनवज्ज ॥ अमर पयंपै खान ने, सो दिन दीसै अज्ज ॥

उत्तर

ध्रम रहसी रहसी धरा; खप ज्यासी खुरसाण ॥ अमर विसंभर ऊपरा, राख नहंचो राण ॥

बीकानेर के महाराजा का जयपुर नरेश को लिखा हुआ यह दोहा प्रसिद्ध है—

थमो आज वीरण गज, मारू समद अथाह ॥ गरुड आड गोविंद ज्यूं, कर महाये जयमाह ॥

जोधपुर के महाराजा विजयसिंह द्वारा महेशदास जी को लिख भेजे हुए दोहे इस प्रकार हैं—

दिखणी आयो दल सजा, पृथी मराजण पेस ॥ तू पा तो बिण कुण करै, म्हारी मदत महेस ॥
सुखमहला नह भोगणो, मार न झेलै मेम ॥ तो उभां दलपत तणा, सुरधर जाय महेम ॥

महाराणा फतहसिंह को दिल्ली दरबार में जाने से विरत करने वाला बारहठ केसरीसिंहजी का "चेतावणी रा चूंगट्या" प्रसिद्ध है। उस ऐतिहासिक पत्र के निम्न दोहे कितने मार्मिक हैं—

कठण जमानो कौल, बाधै नर हिम्मत बिना ॥ बीरा हदो बोल, पातल सागै पेखियो ॥
अब लग सारां आस, राण रीत कुल राखसी ॥ रहो साय सुखराम, एकलिंग प्रभु आ परै ॥

ऐतिहासिक पत्र व्यवहार के समान ही ऐतिहासिक पात्रों का वार्तालाप भी साहित्य परम्परा में चला आता है। ऐसे उत्तर प्रत्युत्तर में वाक्‌चातुर्य की सुन्दर झांकी देखने को मिलती है। कविता मय वार्तालाप बड़ा ही रोचक होता है। यह वक्ताओं के काव्य प्रेम का भी परिचायक है। साथ ही इसमें उनकी तत्काल काव्य सृजन की प्रतिभा भी प्रकट होती है।

राव चूंडाजी और उनकी रानी की बातचीत सुनिए—
रावजी—कलह करै मत कामणी! घोड़ां घी देनाह ॥ आन्‍न कदेक आवसी, बादाली बहनाह ॥
रानी—आंक मद्धे पवन मख, तुरियां आगल जाय ॥ हूं तनै पूछूं मायवा! किण किया घी खाय? ॥

सिरोही के महाराव सुरतान और उनकी रानी का वार्तालाप भी बड़ा ही रोचक है—
महाराव—टूंके टूंके केतकी, झरणे झरणे जाय ॥ अरबुद री छवि देखतां, और न आवै दाय ॥
रानी—नर नाणो नमणो जठै, पालां चढणो पंथ ॥ आबू ऊपर जमणो, भलो सरायो कंथ ॥

महाराज पृथ्वीराज और उनकी रानी की बात भी प्रसिद्ध ही है—

महाराज—पाथल धोला आविया, बहुली लग्गा खोड़ ॥ पूरे जोबन पदमणी, ऊभी मुक्ख मरोड़ ॥
रानी —प्राणि कहै पीथल सुणो! धोलां दिस मत जोय ॥ नरां नाहरां डिगम्बरा, पाक्यां ही रस होय ॥

राजस्थान के राजा महाराजाओं ने कवियों का बड़ा ही सम्मान किया है। उनको कवित्व शक्ति का सच्चा पता था। राजस्थान के कवियों ने ही यहाँ के इतिहास को बनाया है। यहाँ दान सम्मान के दोहे अब भी लोग बड़े गर्व के साथ बोला करते हैं। इन दोहों ने दाताओं को अमर कर दिया है। कहीं २ दान से भी अधिक सम्मान है। यहाँ के अड़व पसाव, रोड़ पसाव, लाख पसाव

तो प्रसिद्ध हैं ही साथ ही शीश दान भी कई महाप्राण वीरों ने प्रदान किए हैं। इनके अतिरिक्त कवियों की पालकी उठाने, यहां तक कि उनकी जूती उठाने तक के उदाहरण राजस्थानी साहित्य में पाये जाते हैं; नीचे लिखे दोहे कितने गौरव पूर्ण हैं—

उनड़ जाम (सिंध)

माई एहा पूत जण; जेहा ऊनड़ जाम ॥ दीधा सातूं सिंधड़ी; जिण दिये इक गाम ॥

वच्छराज (अजमेर)

देतो अडव पसाव दत; धिनो गौड़ वछराज ॥ गढ अजमेर, सुमेर सूं ऊंचो दीसे आज ॥

जगतसिंह (उदयपुर)

सिंधुर दीधा सात सै; हैवंर पंच हजार ॥ एकावन सासन दिया; जगपत जग दातार ॥

जगतसिंह—करणीदान

करना रो जगपत कियो; कीरत काज कुरव्व ॥ मन जिण धोखो ले मुवा; साह दिलीस सरव्व ॥

अभयसिंह—करणीदान—

अस चढियो राजा अभो; कवि चाढे गजराज ॥ पोहर एक जलेब में; मोहर चले महराज ॥

सागो गौड़—ईसरदास

नदी वहंतो जाय; सादज सागरिये दियो ॥ कहज्यो मोरा माय; कवि ने ढंये कामली ॥

राजाओं के समान ही राजस्थान के इतिहास प्रिय लोक हृदय ने राजमंत्रियों की स्मृति को भी स्थिर बनाये रक्खा है। कई मंत्री तो राजस्थान के इतिहास मे अपना अलग ही स्थान रखते हैं। यहाँ के राजमंत्रियो ने भी अनुपम त्याग एवं शौर्य का परिचय दिया है। कई मंत्रियों ने तो यहाँ की राजनीति तक को मन चाही दिशा मे मोड़ दिया है, यहां कुछेक लोक प्रचलित दोहे दिए जाते हैं—

भामाशाह- (मेवाड़)

भामो परधानो करे; रामो कीधो रद्द ॥ धरती बाहर करण नूं; मिलियो आय मरद्द ॥

सवरसिंह (सिरोही)

सवर महाभड़ मेरवड़; तो ऊभां वरियाम ॥ सीरोही सुरतान सूं; कुण चाहे संग्राम ॥

मुहणोत नैणसी (जोधपुर)

लाख लखारा नीपजै; बड पीपल री साख ॥ नटियो मूं तो नैणसी; तांबो देण तलाक ॥

केसोदास (जयपुर)

ईसर लेह मिटै नही; जुग जुग यह गायाह ॥ प्याला केसो दास नै; पाया सो पायाह ॥

हरगोविंद (जयपुर)

माया गाथी बाथली, लागी फूलाणीह ॥ रही सही तू मापणो, हरगो (विंद) नाटाणीह ॥

राजस्थान में राज्य संचालकों का भी बड़ा नाम है, दिल्ली साम्राज्य से लोहा लेने वाले नरसिंहों के अतिरिक्त भारत में मुगल साम्राज्य की नींव को दृढ़ करने वाले नरेशों के गुणगान भी राजस्थानी जन साधारण में प्रचलित हो गए—

दुर्गादास (जोधपुर)

माई एहा पूत जण, जेहा दुर्गादास ॥ बांध मुढासो राखियो, बिन थांभे आकाश ॥

रणछोड़दास (जोधपुर)

रण दुरगा न धारियो, सगों सुर सिरनाम ॥ दिल्ली भारत मो भुजां, तोरां गम्भर लाज ॥

मानसिंह (आमेर) मुगल सेनापति

माई एहड़ा पूत जण, जेहड़ा मान मरद ॥ गांठे समन्द पखालिया, काबल बांधी हद ॥

राजसिंह (जोधपुर) मुगल सेनापति—

राव थपी थाओलियो, कर भला वरियाम ॥ पतसाही गम् पगे, ना इण अमण नाम ॥

रतनसिंह (बूंदी) मुगल सेनापति

गरवा फूगा जग बहा, थम वरा रा जतन ॥ आता घर जमीर का, गम्या गज रतन ॥

राजस्थान में एक अगणित वीर हो चुके हैं, जिन्होंने अपने मान की रक्षा में अपने प्राण दे दिए। उनका देह त्याग न था, सत्य त्याग था, सच्चा उनका जीवन था (नश्वर शरीर का मोह, त्याग, अविनाशी जीवन को उन्होंने अपनाया) इन नरसिंहों ने स्वयं आश्चर्य उनकी वीरता दिखा कर इस लीला सवारा थी। उनके यश के स्मारक जनता के हृदय में हैं।

मजम राय (पृथ्वीराज के सखा)

मीरा रा को पल मरा दिन, नृप के नैन नवाज ॥ मैं नेहा बहुरूप म, गम ह समम राय ॥

पाबू जी राठौड़ (कोलू)

पाणी पवन प्रमाण, धर अवर हिंदू धरम ॥ अब मो धाधल आण, सिर दरगां गायां सटे ॥

समरो देवड़ो (सिरोही युद्ध)

धर राता जस डूंगरां, कद पोतां सत हाण ॥ समरे मरण सुधारियो, चहुँ थोकां चहुआण ॥

चलूजी चांपावत (आगरा युद्ध)

चलू पग पे पलियां, सतियां हाथ सदेस ॥ पातिसाह पड़ा पतसाह गी, आया छां अमरेस ॥

चांपाजी (मारवाड़)

मांस पलुच्चर सीस-हर-हंस अपच्छर सथ ॥ चंपो चंपा फूल ज्यूं, होग्यो हत्थोहत्थ ॥

सुजानसिंह शेखावत (खंडेला)

दातां मंदर सिर दियो, आतां दल अवरंग ॥ इण वाता सूजो अमर, राय मलोतां रंग ॥

केसरीसिंह (जोधपुर युद्ध)

केहरिया कर नाल, जुड़तो नहं जय साह सूं ॥ आ मोटी अवगाल, रहनी गिर मारू धण ॥

राव अर्जुन हाडा (चित्तौड़ युद्ध)

सोर कियो वहु जार, धर परवत आडी सिला ॥ तैं काटी तरवार, अश्वपतिया हाडा अजा ॥

कीरतसिंह सोढा (जोधपुर)

तन झड खागां तीख, पाड़ घणा रूलु पोटियां ॥ किरतो नग कोडीह, जड़ियो गढ जोधाण रे ॥

राजाओ, महाराजाओं और सरदारों के अतिरिक्त संतों, महात्माओं एवं कवियों के विषय में भी राजस्थान में काफी दोहे प्रचलित हैं। उनकी याद में भी जनता अपने जीवन के क्षणों को सरस करती है। उनकी महत्ता के आगे इन दोहों को उनकी पूजा के पत्र, पुष्प समझना चाहिये। कुछ उदाहरण देखिये—

पाॅबूं पीर—

पाबू हरमू राम दे, मागलिया मेहाह। पाबूं पीर पधारजो, गोगा जी मेहाह ॥

करणी जी

देवी देसाणेह, धर बीकाणे तूंधणी ॥ जोगण जोधाणेह, मातीजे मेहासदू ॥

कवि ईसरदासजी

पनरा सौ पिच्चाणवे, जलम्या ईसरदास ॥ चारण वरण चकार में, उण दिन भयो उजास ॥

जैतमालजी

पावन हुवो न पीठ चो, न्हाय त्रिवेणी नीर ॥ हेक जैत मिलिया हुवो, सो निकलंक सरीर ॥

लाड्नाथजी

च्यारूं दिस कीरत रही, बीर तणी छित छाय ॥ जग में नीर तलाय सह, बणिया खीर तलाय ॥

कवि बखतावर

श्रवणां नाहिं सुणीह, निज नैणां दीठी नहीं ॥ वातां मुकट वणीह, राव बखत रचना सरस ॥

नरसिंहों के समान ही राजस्थानी हृदय ने यहाॅ के रमणी रत्नों को भी अपने स्मृति पटल पर बनाए रक्खा है। जिस प्रकार राजस्थान वीर पूजक है, उसी प्रकार यह प्रदेश नारी सम्मान को भी अपना धर्म समझता है। यहाँ की देवियों ने भी यहाँ का इतिहास तैयार करने में कम सहायता नहीं दी है। कुछ

उदाहरण देखिए —

राणक दे (सोरठ)

जाई तो देरांगना, पाली आण कुंमार। मन राख्यो जयसिंघ दे, परणी रा खेंगार ॥

मरवण (नयलगढ)

मा उमादे देवड़ी, नानो सामत सीह ॥ पिंगल राय पमार री, कुमरी मारवणीह ॥

उमा दे (जोधपुर)

उमा सत मन आगलै, मई सती भटियाण ॥ उभै दुरग उजालिया, जोधाने जैसाण ॥

लाला दे (बीकानेर)

तो राखो नहिं रायस्यां, रे वाम दे निमड़ ॥ मो देखत तू जालिया, लालर हदा हड्ड ॥

चपा दे (बीकानेर)

अम खीलो पित पीथलो, चपावती ज नार ॥ ये तीन ही एकठा, मिल्यां सिरजण हार ॥

मीरा (चित्तौड़)

भोजराज जेठो अमग, कंवर पणे व्रत कीध ॥ मेड़तणी मीरां महल प्रभी भगत प्रसीध ॥

राजस्थान में ऐसे दोहे भी काफी लोक प्रचलित मिलेंगे। जिनमें वार तिथि एवं सवत दिए गए हैं। लोक हृदय ने घटनाओं की पक्की याद बनाये रखने के लिए ऐसे दोहों को स्थाई बना रक्खा है। कुछेक उदाहरण दिए जाते हैं। इनमें सभी प्रकार के विषयों का समावेश है। परन्तु इनकी शुद्धता विचारणीय है।

जगदेव पवार रा शीश दान

ग्यारह सा इकताणव, चैत तीन रविवार ॥ सिर ककाली मांगयो, जग दे दियो उतार ॥

पाबू जी राठोड़

तेरा सा तेरा तरां, नव्वसा आमल धाम। तेरा सा सैतीस में, रमधन गायो राम ॥

करणी जी का अवतार

चवदामे रच मालवें, सातम सुकर वार ॥ आगण धाम उजाल घर, आइ लियो अवतार ॥

करणी जी का स्वर्गारोहण

पनरामै निन्याणवे, चेत सुकल गुरु नम्म ॥ देवी करनल देह तजि, पूगा जोति परम्म ॥

आनदावली की स्थापना

सोम दसम आसोज सुद, चवद से चाराण ॥ आनद आनदावली, नगर कियो निरवाण ॥

बीकानेर राज्य की स्थापना —

पनरै से पैतालवे; सुद वैसाख सुमेर ॥ थावर बीज थरप्पियो; बीके बीकानेर ॥

झुंझुणू की नवाबी का अन्त

सतरासौ छियासी तथा; अगहन मास उदार । सादै लीनी झुंझणूं; सुद आठम सनिवार ॥

राजस्थान में हिंदुओं के विषय में तो जन साधारण में दोहे प्रचलित है ही, साथ ही मुसलमानों के बारे में भी लोक प्रचलित दोहे पाए जाते हैं। इनमे भी भले बुरे सभी तरह के पात्र आजाते हैं। उदाहरण देखिए—

अकबर शाह

गढ ऊँचो गिरनार, नीचो आबू ही नहीं। अकबर अघ अवतार; पुन अवतार प्रतापसी ॥

रहीम खानखाना

खान खान नवाब रो; मोहि अचंभो एह ॥ केम समाणो मेरु मन; साढति हत्थी देह ॥

शाहजहाँ बादशाह (खुर्रम)

सबल सगाई ना गिणै; नहिं सबला मे सीर ॥ खुरम अठारे मारिया; के काका के वीर ॥

अमीरखाँ पिण्डारी

मिया जो टीथी मीर खाँ, कमधां बीच कुराण ॥ रहा भरोसे राम रै; पड़ती खबर पठान ॥

इब्राहिम गर्दी

कर मरदी खुरसाण; गरदी इबराहम गहर ॥ भरदी भगती बाण; कर दी काया काच की ॥

ऐतिहासिक पात्रो के देहावसान पर विशिष्ट व्यक्तियो के मुख से निकले हुए शोकोद्गारो को भी राजस्थानी जनता ने भुलाया नही है। ऐसा किया जाना यहाँ के लोक हृदय की इतिहास प्रियता का साक्षी है। जिन लोगो के जीवन को राजस्थान ने अपना जीवन समझा उनके सुख दुख से भी यहाँ की जनता एकात्म ही रही। यहाँ कुछ चिर वियोग के चित्र दिए जाते हैं—

बाघजी कोटडियो

आघा आव वले.ह, घर कोटडिये तूं धणी। जासी फूल झडेह, बास न जासी बाघजी ॥

जेठवो मेहो (पीर बन्दर)

टोली सूं टलियाह, हिरणां मन माठा हुऐ ॥ वाल्हा बीछड़ियाह; जीवन दूकै जेठवा ॥

राजकुमार पृथ्वीसिंह (जोधपुर)

घट मूं हेक घडीह, अलगां आवडनो नहीं। पीथल धणी पडीह, जुग छेटी जसराजवत ॥

भीमसिंह (उदयपुर)

गाँगी भीम न रखियो, दत विन दीहाडोह ॥ हय गयंद देतो हतां, मुवो न मेवाड़ोह ॥

अजीतसिंह (जोधपुर)

बखता बखत बायरा, तैं मार्यो अजमाल ॥ हिंदवाणी रो बादसा, तुरकाणी रो साल ॥

गजसिंह और आसकरण (मेवाड़)

ओडां रतन मँधारिया, गजड़ आसकरन ॥ जो हिंदवाणी बादसा, जो बादसा जरन ॥

बांकीदास आसिया (जोधपुर)

जिण कुल विख्यात, राज काज कर रहसी ॥ बाजा नो बिए बात, जिण आगल मन री कहां ॥

राजस्थान की राजनीति में एक बात बड़ी महत्त्वपूर्ण रही है, वह है यहाँ के कुकर्मी राजाओं को कवि मुख से जनता की फटकार । राजस्थानी कवियों ने समय समय पर उनके कुकर्मों की निंदा की है । उनकी वाणी को जनता ने अपना लिया है । इस प्रकार लोक हृदय में बुराई के प्रति कटु आलोचना ने स्थान बना लिया है—राजस्थानी साहित्य की यह एक विशेषता है । इससे प्रकट होता है कि यहाँ के कवि कितने निर्भीक, सत्यवादी एवं सुधार प्रिय हुए हैं । उनको सत्य कथन में शासन सत्ता का जरा भी भय न था ।

उदयसिंह (मेवाड़)

ऊदा बाप न मारजै, लिखियो लाभै राज ॥ देस बसायो रायमल, सरयो न एको काज ॥

जयसिंह, अभयसिंह (जयपुर, जोधपुर)

पत जेपुर, जोधाण पत, दोनूं थाप उथाप ॥ कूरम मार्यो डीकरो कमधज मार्यो बाप ॥

मानसिंह (आमेर)

माना अजम कर मती, अकबर तल आयोह ॥ जोधे जगम आपरो, पाणी मल पायोह ॥

बखतसिंह (जोधपुर)

बापो मत कह बखतसी, रांपत है बेराण ॥ एक बार बापा कहां, पमग नजेला प्राण ॥

विजयसिंह (जोधपुर)

मरयो मत माहेस सम, गढ़ मध्य पग रोप ॥ झगड़ा में भाग्यां जगो, उण पाइ आमोप ॥

प्रतापसिंह (मारवाड़)

दाढ़ी मूंछ मुंडाय कर, सिर पर धरियो टोप ॥ रे पातल तखतेस रा, (थारे) बाकी रहे लंगोट ॥

तखतसिंह (जोधपुर)

रागी बाघां देलड़ी, हमा गेना नाम ॥ महाराज तखतेस रे, करे जिनावर काम ॥

सज्जनसिंह (उदयपुर)

आगे आगे बाजता, हिंद रहदू रा सूर ॥ अब देखो मेवाड़ पत, नारा हुआ हजूर ॥

राजस्थान के इतिहास की महत्त्वपूर्ण घटनाओं के विषय में भी लोक प्रचलित दोहे हैं। कई दोहे समय की स्थिति का निश्चय परिचय देते हैं। कई दोहे समय जनता की पुकार के रूप में हैं। युग परिवर्तनकारी घटनाओं ने लोगों के जीवन पर काफी असर डाला और उनके परिचायक दोहे लोगों में प्रचलित हो चले। ऐसे दोहों के उदाहरण देखिए—

पृथ्वीराज की पराजय

दिन पलटयो, पलटी धरा; पलटयो हाथ कृपाण ॥
चंद कथै प्रथिराज सुण; (आगे) दिन पलटयो चहुआण ॥

अकबर की माया

अकबर घोर अंधार; ऊँघाणा हिंदू अवर ॥ जागै जग दातार; पोहरे राण प्रतापसी ॥

औरंगजेब के अत्याचार

घंट न बाजै देहरां; संक न मानै साह ॥ एकण हा फिर आवज्यो; माहू रा जय साह ॥

मराठों की प्रधानता

सिंधा सिर नीचा किया; गाडर करे गलार ॥ अश्वपतियां सिर ओटणी: तो सिर पाग मलार ॥

अंग्रेजों की अधीनता

मान, मोद, सीसोद; राजनीत बल राखणो ॥ गवरमिंट री गोद: फल मीठा दीठा फता ॥

इस तरह हम देखते हैं कि राजस्थान के ऐतिहासिक दोहे कई रूपों में लोक प्रचलित हैं। राजस्थानी जनता का यह स्वभाव ही है कि हरेक छोटी से छोटी घटना का परिचायक दोहा भी उसकी अभिरुचि से बाहर नहीं छूट पाता। ऐसे दोहे राजस्थान में बनते ही रहते हैं। ज्यादातर दोहों के रचयिता कवियों के नाम भी लोगों की स्मृति से मिट जाते हैं या उनका पता तक नहीं चल सकता। इन दोहों का संकलन होना परमावश्यक है। इनकी बहुत बड़ी संख्या लुप्त हो चुकी है और होती ही जा रही है। इस दिशा में ठा० भूरसिंहजी (विविध संग्रह) स्वामी नरोत्तमदासजी (राजस्थान रा दूहा) पं० कन्हैयालालजी सहल (राजस्थान के ऐतिहासिक प्रवाद एवं राजस्थान के सांस्कृतिक उपाख्यान) आदि विद्वानों ने अच्छा काम किया है। परन्तु जितना काम हुआ है उससे कई गुना काम अभी और होने की आवश्यकता है। हरेक इलाके के अपने अलग २ दोहे मिलेंगे उसी के अनुसार इनका संकलन होना चाहिए। इतना काम होने से कई ऐतिहासिक तथ्य प्रकाश में आएंगे या विस्मृत होने से बच जाएँगे।

गुहदत्त था और हरिश्चन्द्र उसका सामंत था (१)।

गुहदत्त के विषय में अभी तक जितनी सामग्री उपलब्ध हुई है उसके आधार पर हम गुर्जर देश के उस प्रथम शक्तिशाली शासक का वर्णन करते हैं। राजस्थान के प्रसिद्ध इतिहासज्ञ कविराज श्यामलदासजी ने और टॉड ने जिन ग्रंथों के आधार पर गुहदत्त को वल्लभी वंश का होना और वहां से आकर इसका राजस्थान में राज्य स्थापित करना सिद्ध किया है। इस से यह सिद्ध होता है कि यह क्षत्रिय वंश का था क्योंकि हुएनसाग ने वल्लभी वंश के शासक को क्षत्रिय (२) लिखा है। श्री भांडारकर ने इसका ब्राह्मण होना सिद्ध किया है। जिस आन्द के लेख के अनुसार श्री भांडारकर ने यह सिद्ध करने की कोशिश की है वह लेख इस प्रकार है—

'आनन्दपुर विनिर्गत विप्र कुलानन्दनो महीदेव (३)
जयति श्री गुहदत्त प्रभव श्री गुहिल वंशस्य ॥'

इसका श्री भांडारकर ने अर्थ किया है "आनन्दपुर से निकले हुए ब्राह्मणों के कुल को आनन्द देने वाला महीदेव गुहदत्त, जिससे गुहिल वंश चला, विजयी हो।" इसमें श्री भांडारकर ने महीदेव के कारण इसका ब्राह्मण होना माना है। महीदेव शब्द ब्राह्मण के लिए काम में आता है परन्तु यह कई जगह राजाओं के लिए भी काम में आया है और यहाँ पर भी यह राजा के लिए ही प्रयोग में किया गया है। इस लेख का अर्थ तो यह है "आनन्दपुर से निकले हुए ब्राह्मण कुल को आनन्द देने वाला राजा गुहदत्त जिससे गुहिल वंश चला विजयी हो।" उसी लेख के छठे श्लोक को तो यह बहुत ही साफ हो जाता है, उसमें गुहिल के वंशज नरवाहन के वर्णन में उसे विजय का निवास स्थान एवं क्षत्रियों का क्षेत्र लिखा है।

अखिल कला धारी धीर स्फुर दूर गभस्ति। (४)
विजय वसति क्षत्र क्षेत्र रति पद्धति।
राम इति जना प्रताप नरवाहनो,
विभव भवन [illegible] भूपा नरवाहन ॥

---

(१) गोपपिङ्ग भाग २ खंड १ पृ० ३०
(२) ... ... पृ० ८३
(३) ... ... पृ० १४७
(४) ... ... पृ० १४७

हैं और महाराष्ट्र के निवासी मराठा, इसी प्रकार उस समय इस देश के चारों वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र बाहर गुर्जर कहलाते थे। और जातियाँ तो अब पुराने नाम से नहीं पुकारी जातीः परन्तु वहाँ की एक पशु चराने वाली एक जाति बाहर जाकर गुर्जर के नाम से सम्बन्धित होने लग गई थी जो कि आज भी 'गुर्जर' कहलाती है ।

इस देश को सब से पहले सुसंगठित व मजबूत बनाने वाला कौन सा वंश था (१) श्री मुन्शी ने अपने "ग्लोरीज दैट वाज गुर्जर देश" में यह श्रेय मंडोवर के प्रतिहार वंश को दिया है (२)। उनका खयाल है कि इसी वंश ने पूरे गुर्जर देश पर अपना अधिकार किया और फिर इसके बाहर के इलाकों को भी जीता। हर्षवर्धन के पिता प्रभाकरवर्धन से भी गुर्जर शासक हरिश्चन्द्र ने मुकाबिला किया (३); परन्तु जब हम मंडोवर के प्रतिहारों के इतिहास को देखते हैं तो उसमें मिलता है कि मंडोवर के पडिहारों का आदि पुरुष हरिश्चन्द्र किसी राजा का ड्योढीदार (४) था। उसके बाद उसके पुत्रों का वर्णन भी कोई ज्यादा उच्च नहीं मिलता। ऐसी हालत में गुर्जर देश और उसके बाहर तक विजय पताका फहराने वाला हरिश्चन्द्र या उसका पुत्र रज्जिल नहीं हो सकता। अब यह प्रश्न उठता है कि फिर यह महान् शासक कौन था? राजपूताने की छठी सदी के इतिहास पर जब हम दृष्टि डालते हैं तो हमें एक व्यक्ति दीखता है और वह पुरुष है नागदा का गुहदत्त।

इसके पाँचवे वंशधर शिलादित्य का सामोली ग्राम में वि० स० ७०३ तदनुसार ६४६ ई० का शिलालेख मिलता है। इससे गुह का समय ५६० ई० के करीब ठहरता है। १८६६ ई० आगरे के समीप २०००से ज्यादा इसके चाँदी के सिक्के प्राप्त हुए हैं। जिनका मिस्टर कारलाइल ने आरकियालॉजिकल सर्वे की रिपोर्ट में विस्तार पूर्वक वर्णन किया है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि गुहदत्त एक शक्तिशाली शासक था और उसका आगरे तक राज्य था। समाधीश्वर के लेख में भी गुहदत्त का विंध्याचल तक विजय करने का वर्णन मिलता है। इस प्रकार इस शासक का पूरे गुर्जर देश, मत्स्य व आगरा तक और दक्षिण में विंध्याचल तक राज्य फैल गया था। इन उद्धरणों से यह सिद्ध होता है कि श्री मुन्शी ने मंडोर के हरिश्चन्द्र को जो गुर्जर देश को संगठित और विजय करने वाला माना है वह सही नहीं है। वास्तव में वह नागदा का

---

१. बोम्बे गजटियर वोल्यूम १ पृ० १ पृ० ४६६
२. ग्लोरीज दैट वाज गुर्जर देश, मुन्शी-पृ० ८
३. ग्लोरीज दैट वाज ,, ,, ,, २५
४. राजपूताने का इतिहास, ओझा भाग १ पृ० १४६

गुहदत्त था और हरिश्चन्द्र उसका सामंत था (१)।

गुहदत्त के विषय में अभी तक जितनी सामग्री उपलब्ध हुई है उसके आधार पर हम गुर्जर देश के उस प्रथम शक्तिशाली शासक का वर्णन करते हैं। राजस्थान के प्रसिद्ध इतिहासविज्ञ कविराज श्यामलदासजी ने और टॉड ने जैन ग्रन्थों के आधार पर गुहदत्त को वल्लभी वंश का होना और वहीं से आकर इसका राजस्थान में राज्य स्थापित करना सिद्ध किया है। इस से यह सिद्ध होता है कि यह क्षत्रिय वंश का था क्योंकि हुएन्त्सांग ने वल्लभी वंश के शासक को क्षत्रिय (२) लिखा है। श्री भांडारकर ने इसका ब्राह्मण होना सिद्ध किया है। जिस आटपुर के लेख के अनुसार श्री भांडारकर ने यह सिद्ध करने की कोशिश की है वह लेख इस प्रकार है—

'आनंदपुर विनिर्गत विप्र कुलानंदनो महीदेव (३)
जयति श्री गुहदत्त प्रभव श्री गुहिल वंशस्य ॥'

इसका श्री भांडारकर ने अर्थ किया है "आनन्दपुर से निकले हुए ब्राह्मणों के कुल को आनन्द देने वाला महीदेव गुहदत्त, जिससे गुहिल वंश चला, विजयी हो।" इसमें श्री भांडारकर ने महीदेव के कारण इसका ब्राह्मण होना माना है। महीदेव शब्द ब्राह्मण के लिए काम में आता है परन्तु यह कई जगह राजाओं के लिए भी काम में आया है और यहां पर भी यह राजा के लिए ही प्रयोग में लिया गया है। इस लेख का अर्थ तो यह है "आनन्दपुर से निकले हुए ब्राह्मण कुल को आनन्द देने वाला राजा गुहदत्त जिससे गुहिल वंश चला विजयी हो।" उसी लेख के ६ ठे श्लोक से तो यह बहुत साफ हो जाता है, उसमें गुहिल के वंशज नरवाहन के वर्णन में उसे विजय का निवास स्थान एवं क्षत्रियों का क्षेत्र लिखा है।

क्षत्रिय क्षेत्र ... (४)
विजय रमति ... हता हति गहति।
... प्रताप ...,
विजय ... ॥

1 गौरीशंकर ओझा भाग २ खण्ड १ पृ० ३०
2 वाटर्स ऑन युवान च्वांग भाग २ पृ० २४६
3 इंडियन एण्टीक्वेरी जि० ३९ पृष्ठ १९१
4 इंडियन एण्टीक्वेरी जि० ३९ पृष्ठ १९१

एकलिंगजी के मन्दिर के पास लकुलीश के मंदिर में इस लेख के ८ वर्ष पहले वि० सं० १०२८ नर वाहन के समय का एक शिलालेख है, उसमें वहां के मठाधिपतियों के लिए कहा है "शाप और अनुग्रह के स्थान तथा हिमालय से सेतु पर्यन्त रघुवंश की कीर्ति को फैलाने वाले (१)। ये मठाधीश एकलिंगजी के पुजारी तथा मेवाड के गुहिल वंशी राजाओं के गुरु थे; इसलिए इस लेख में रघुवंश की कीर्ति से अभिप्राय मेवाड़ के राजाओं की कीर्ति से ही है-ऐसा श्री ओझाजी ने माना है (२)। इन ऊपर के दोनों शिलालेखों के वर्णनों से यह साफ सिद्ध हो जाता है कि राजस्थान के गुहिल वंश का मूल पुरुष ब्राह्मण नहीं था जैसा कि कुछ लोगों का भ्रम है, परन्तु वह सूर्यवंशी क्षत्रिय था।

इसने उस समय के गुर्जर देश को विजय किया। मेदपाट (मेवाड़) भी उस समय उसी देश का एक हिस्सा था; अतः वह सारे गुर्जर देश का स्वामी बन गया। इस तरह अपनी शक्ति को सुसंगठित करने के बाद इसने लाट देश पर आक्रमण किया और वहाँ के नाग वंशी शासक निरीहुल्ला को परास्त (३) किया। उस देश को विजय करने के बाद वहाँ पर इसने अपने सामंत को वहाँ का शासक नियुक्त किया। और उसकी राजधानी नंदीपुर रखी जो कि आज कल भरोंच के पास नंदीवाल कहलाता (४) है गुहदत्त ने यह विजय ५५०ई० के करीब की (५)।

५६० ई० में दूसरे लाट का शासक दूदा को बनाया जो कि उसका ही कोई रिश्तेदार था। दूदा के-वंशज के लेख में दूदा का गुर्जरात पति वंश लिखा है (६)। दूदा ने ५६० से ६०६ ई० तक वहाँ का शासन किया (७)। और अपने शासक की आज्ञा से विन्ध्याचल तक विजय किया (८)। मेवाड के सामोधेश्वर के लेख से भी गुह का विंध्या विजय करना लिखा है। इससे दूदा के द्वारा विंध्या तक विजय करने की पुष्टि होती है।

गुहदत्त ने वल्लभी पर हमला किया और वहाँ के शासक को अपने अधीन किया।

---

१. बोंबे ब्राच एशियाटिक सोसाइटी जनरल जि–२२ पृ० १६६

२. राजपूताने का इतिहास वाई ओझा भाग १ पृ० ३७८

३. ग्लोरीज दैट वाज गुर्जर देश, मुंशी पृ० २५

४. ,, ,, ,, ,, ,, ,,

५. ,, ,, ,, ,, ८

६. ग्लोरीज दैट वाज गुर्जर देश, मुन्शी. पृष्ट ८ इण्डियन एन्टीक्विटीज पृ०८२

७. ,, ,, ,, ,, देश मुन्शी पृ० २५। इण्डियन एन्टीक्विटीज पृ०८१-८८

८. इण्डियन एन्टीक्विटीज पृ० ८१–८८

धारासेन द्वितीय ने अपने शिलालेख में अपना विरद 'महाराज' की बजाय 'महासामंत लिखा है (८)। जो यह सिद्ध करता है कि वह उसी गुहदत्त का महा सामंत हो कर रहा।

गुर्जर देश की सेना ने इसके अलावा मालवा के शासक शकरगण कलचुरी कृष्ण राज के पुत्र पर चढ़ाई की जिस में इसकी विजय हुई और कल चूरी परास्त हुआ फिर भी वह अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करने की कोशिश में रहा। शकर गण के पुत्र बुद्ध राज ने अपनी स्वतन्त्रता के लिए गुहिल शक्ति से मुकाबला किया। इस बार भी महाराज गुह के सामंत कीर्तिवर्मा के भाइ मंगलिश की अध्यक्षता में मालवे पर सेना भेजी गई जिसमे शकर गण का पुत्र बुद्ध राज परास्त हुआ और उसे गुहिलोत साम्राज्य की आन माननी पड़ी।

इस प्रकार गुहदत्त ने ५५० ई० से ५६० ई० तक शासन किया, इसकी राजधानी नागदा थी। इसका अधिकार पूरे गुर्जर देश, काठियावाड़, लाट, मालवा, खेटक, मंडल और विंध्याचल तक फैल चुका था। इस प्रकार ६ की सदी का उत्तरी पश्चिमी भारत का यह सब से शक्तिशाली शासक था।

---

८. इण्डियन एन्टिक्विटीज ७ पृ० ७०



पुरोहित हरिनाराण ग्रंथ संग्रहालय

(ले० श्री पुरूषोत्तम मेनारिया, 'साहित्य रत्न')

पुरोहित रामगोपालजी जयपुर के संरक्षण में हस्तलिखित पुस्तकों का एक महत्त्वपूर्ण संग्रहालय है। इस संग्रहालय का प्रारंभ पुरोहित हरिनारायणजी की संत-साहित्य के प्रति विशिष्ट लगन के परिणाम स्वरूप हुआ था। स्व० पुरोहितजी इस महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए कबाड़ियों की दुकानों, संत महात्माओं की कुटियों, सरदारों-उमरावों के भंडारों, मठों, उपाश्रयों, दादूद्वारों, रामद्वारों और पंडितों आदि से बराबर सपर्क बनाए रखते थे तथा किसी महत्त्वपूर्ण पुस्तक का या संग्रह का पता लग जाता तो किसी न किसी प्रकार उसको प्राप्त करने का प्रयत्न करते थे। मूल पुस्तक नहीं मिलने की अवस्था मे उसकी प्रतिलिपि का प्रबंध कर लेते थे और यही कारण है कि थोड़े समय मे ही श्री पुरोहितजी ने संत-साहित्य संबंधी कई महत्त्वपूर्ण एवं दुर्लभ हस्त लिखित ग्रथो को अपने यहाँ एकत्रित कर लिया था। श्रद्धेय हरि नारायणजी के देहावसान के थोड़े समय पूर्व ही सितंबर सन् ४५ ई० में मुझे उक्त संग्रहालय देखने का अवसर मिला था। किंतु तब मैं इस कार्य के लिए अधिक समय नहीं दे सका था। राजस्थान सरकार के आमंत्रण पर 'राजस्थान पुरातत्त्व मंदिर' के लिए मेरा जयपुर आना हुआ, जिसमे श्रद्धेय मुनि श्री जिनविजयजी पुरातत्त्वाचार्य के निर्देशन मे पुरोहित हरिनारायण ग्रथ सग्रहालय के मेरे अध्ययन का पुनः प्रारंभ हुआ है।

उक्त संग्रहालय मे विभिन्न संतो एवं अन्य साहित्यकारो की १८१३ कृतियाँ हैं, जो विभिन्न गुटकों तथा पत्राकार पुस्तकों में लिखित है। अधिकांश पुस्तकें १७ वी० १८ वी० और १९ वीं० सदी की लिखी हुई हैं। संत-साहित्य का इस संग्रहालय में अपूर्व संग्रह किया गया है।

एक ही संत कवि की प्रायः सभी रचनाओ को और प्रत्येक रचना की कई प्रतियों को परिश्रम

पूर्वक एकत्रित कर इस संग्रहालय को विशेष उपयोगी बनाया गया है । उदाहरण के लिए इस संग्रहालय में सन्त कवि जगजीवन की रचनाओं की प्रतियाँ इस प्रकार हैं —

१– दादू जन्म लीला	६ प्रतियाँ ।
२– जगजीवन पत्रावलि	८ प्रतियाँ ।
३– ध्रुव चरित्र	७ प्रतियाँ ।
४– प्रह्लाद चरित्र	५ प्रतियाँ ।
५– भरत चरित्र	२ प्रतियाँ ।
६– मोह विवेक संवाद	३ प्रतियाँ ।
७– जड़ भरत चरित्र	२ प्रतियाँ ।
८– चालीस गुरां री लीला	२ प्रतियाँ ।
९– गुरु संवाद	१ प्रति ।
१०– दादूजी इष्ट रा जोग	१ प्रति ।
११– दादू अकबर संवाद	१ प्रति ।
१२– बारहमासियो	२ प्रतियाँ ।
१३– अनन्त लीला	१ प्रति ।
१४– सेंठ के सवैये कवित्त	१ प्रति ।
१५– अलखी पयाण-संवाद	१ प्रति ।

सन्त कवि बाजीन्दजी पठान की रचनाएँ इस संग्रहालय में इस प्रकार हैं —

१– गुण कठियारा नामा	२ प्रतियाँ ।
२– अरिल	१ प्रति ।
३– गुन उत्पत्ति नाम	१ प्रति ।
४– गुन घरिया नाम	१ प्रति ।
५– गुन धीमुन्न नाम	२ प्रतियाँ ।
६– गुन हरिजन नाम	१ प्रति ।
७– गुन नीतमाला	१ प्रति ।
८– गुन गज नामा	१ प्रति ।
९– गुन निरमोही नामा	१ प्रति ।

१०– गुन प्रेम नामा	१ प्रति।
११– गुन प्रेम कहानी	१ प्रति ।
१२– गुन विरह का अंग	१ प्रति ।
१३– पदावलि	१ प्रति ।
१४– गुन निसानी	१ प्रति ।
१५– गुन छंद	१ प्रति ।
१६– गुन हित उपदेश ग्रंथ	१ प्रति ।
१७– साखी (१८ अंगपूर्ण)	१ प्रति ।
१८– गुन नैन नामा	१ प्रति ।
१९– राजकीर्तन	१ प्रति ।

दादू शिष्य रज्जबजी के ग्रंथों की भी कई प्रतियाँ इस ग्रन्थ–भंडार में हैं। जैसे—

१ अविगत लीलां	२ प्रतियाँ ।
२– ग्रह वैराग्य बोध	१ प्रति ।
३– कवित्त सवैया	१ प्रति ।
४– गुण कवित्त	१ प्रति ।
५– रज्जबजी की वाणी	१ प्रति ।
६– जैन जंजाल	१ प्रति ।
७– दोष दरीबे	१ प्रति ।
८– सर्वांगयोग	१ प्रति ।
९– ग्रन्थ अखिर उद्धार बावनी	१ प्रति ।
१०– उत्पत्ति निर्णय	१ प्रति ।
११– यकत लीला	१ प्रति ।
१२– सवैया भेंट का	१ प्रति ।

इस संग्रहालय में रज्जबजी के फुटकर पद, कवित्त, साखी, सवैया, छप्पै आदि का भी संग्रह है।

उपरोक्त संतों के अतिरिक्त काजी महमूद, काजी कादन, अहमद, फरीदा, शेख बहाउद्दीन, विजान, शाहहुसैन आदि अन्य मुसलान संत कवियों की कई महत्वपूर्ण रचनाएँ इस संग्रहा–

बड़ी प्रसन्नता का विषय है कि पुरोहित श्री हरिनारायणजी के पुत्र श्री रामगोपालजी पुरोहित, जिन्होंने इस संग्रहालय की आयोजना में विशेष सहायता दी है। आज भी इस संग्रहालय को पहिले से अधिक व्यवस्थित कर दिया है। इस ग्रंथ- संग्रहालय की विवरणात्मक सूची प्रकाशित कर श्रीयुत पुरोहित जी हमारे देश का बड़ा उपकार करेंगे।



प्राचीन राजस्थानी की एक महत्वपूर्ण कृति

[ले० श्री भँवरलाल नाहटा]

राजस्थान एवं गुजरात की सीमा मिली जुली है एवं प्राचीन काल से दोनों का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। अतः प्राचीन गुजराती कहिये या प्राचीन राजस्थानी। दोनों भाषा एक ही है।[1] १५ वीं शती के प्रारंभ तक की जिन रचनाओं को गुजरात के विद्वान प्राचीन गुजराती कहते हैं—राजस्थान के भाषा तत्त्वविद् उसे प्राचीन राजस्थानी नाम से सम्बोधित करते हैं। ८ वीं शती से १२ वीं शती तक की लोक भाषा का साहित्य मिलता है—उसका नाम अपभ्रंश है। अपभ्रंश भाषा उस समय भारत की प्रधान व्यापक लोक भाषा थी। प्रांतीय भेद उसमें साधारण सा था। १२ वीं १३ वीं शती में प्रांतीय भाषा स्वतन्त्र रूप से विकसित हुई नजर आती है। अभी तक प्राचीन गुजराती या राजस्थानी की उल्लेखनीय सबसे प्राचीन रचना सं० १२४१ रचित शालिभद्र सूरि का "भरतेश्वर बाहुबलि रास" माना जाता रहा है। इसे मुनि जिनविजयजी ने 'भारतीय विद्या' वर्ष १ अं० १ में सं० १९९७ में प्रकाशित किया और पं० लालचन्द भगवान गाँधी ने भी इसी समय स्वतन्त्र रूप से सम्पादन कर प्रकाशित किया। अभी तक यही सब से प्राचीन कृति के रूप में प्रसिद्ध है। ८ वर्ष हुए जैसलमेर भांडारों का अवलोकन करने जाने पर वहाँ के कई वर्षों से बंद भाण्डारों को खुलवाया गया, जिनमें से बड़े उपासरे का 'खरतर गच्छीय पंचायती भांडार' भी एक था। इस भांडार में सं० १४३७ में लिखित एक समग्र प्रति मिली, जिसमें कई अज्ञात रचनाएं प्राप्त हुईं। इनमें से सब से प्राचीन कृति "भरतेश्वर बाहुबलि घोर" है, जो सं० १२४१ के "भरतेश्वर बाहुबलि रास" से पहले की रचना होने से बहुत ही महत्वपूर्ण है। कई वर्षों पूर्व इसे "राजस्थानी पत्रिका" में प्रकाशित करने को दी गई थी पर उस अंक का मैटर ही प०

उल्लासचन्द्र शर्मा जिन्होंने इसे प्रकाशनार्थ मंगवाया था, दवा बैठे। अतः प्रस्तुत "घोर" अभी तक प्रकाशित नहीं हो सकी जो शोध पत्रिका में अब प्रकाशित की जारही है।

"घोर" संज्ञक रचना आज तक यह एक ही मिली है। भरत और बाहु बलि के युद्ध का वर्णन होने के कारण ही इसका नाम "घोर" रखा गया है। १३ वीं शती में गुजरात एवं राजस्थान मे युद्ध चल ही रहे थे। अत. कवियों को समयानुकूल प्रेरणा हुई; जिसके फलः स्वरूप प्रस्तुत "घोर" और उसके परवर्ती "भरतेश्वर बाहु बलि रास" दोनों एक ही प्रसंग की दो रचनाएं हमें प्राप्त होती है। भरत और बाहु बल, युगप्रवर्तक भ० ऋषभदेव के पुत्र व सगे भाई थे। भरत को आयुधशाला मे चक्ररत्न उत्पन्न हुआ; जिससे उन्होंने वर्षों तक दिग्विजय यात्रा कर सर्वत्र अपनी आज्ञा प्रवर्तित की फिर भी चक्ररत्न ने आयुधशाला में प्रवेश नही किया। कारण पूछने पर सेनापति ने कहा कि अभी आपके ९९ भाई आज्ञानुवर्ती नही हुए। अत. उन्हें भी आधीन करना आवश्यक है। मंत्री के परामर्शानुसार ९९ भ्राताओं को दूत भेजे गये। इनमें से ९८ भ्राता तो अपने निर्ग्रन्थ पिता ऋषभदेव के पास परामर्श लेने गये और उनके उपदेश से वहीं प्रवर्जित हो गये। उनके पुत्रों ने भरत चक्रवर्ती की आज्ञा शिरोधार्य करली पर बाहु बलि बड़ा बलवान और स्वाभिमानी था। उसने भरत के अधीन रहना स्वीकार नहीं किया। फलत. परस्पर महायुद्ध छिड़ गया। कई वर्षों तक युद्ध चलता रहा; बहुत नर-संहार हुआ तथा काफी क्षति उठानी पडी। अत. सेना को छोड़ कर दोनों ने परस्पर युद्ध करना निश्चित किया और जो जीत जाय उसका आज्ञानुवर्ती होजाना तय हुआ। दृष्टि युद्ध, मुष्ठि युद्ध आदि पाँच प्रकार के युद्ध नियत किये गये। चारो युद्धों में बाहु बलि जीता। पांचवे युद्ध में भरत ने बाहु बलि के मस्तक पर मुष्टिका प्रहार किया, जिसके प्रतिकार मे बाहु बलि ने भरत पर प्रहार करने के लिये अपनी मुष्टि उठाई पर संयोगवश इसी समय बाहुबलि के विचारों मे एकाएक परिवर्तन होगया। उसने राज्य के लोभ से बड़े भ्राता पर मुष्टि चलाना उचित न समझ अपने ही मस्तक पर मुष्टि द्वारा केशों का लोचन करके श्रमण होगये। उसकी भौतिक विजय की जगह आध्यात्मिक विजय हुई। इसी प्रसंग को ही "घोर और रास" दोनों रचनाओं मे गुम्फित किया गया है। प्राकृत संस्कृतादि के पूर्ववर्ती कई ग्रन्थो मे इसकी कथा विस्तार से मिलती है, जिनमे नवांगवृत्तिकार अभयदेव सूरि के शिष्य वर्धमान सूरि रचित "आदिनाथ चरित्र" विशेष रुप से उल्लेखनीय है। यह प्राकृत भाषा में ११ हजार श्लोकों का बड़ा ग्रन्थ है। इसमें भरत बाहु बलि के युद्धादि के कई प्रसग अपभ्रंश भाषा मे लिखे होने से प्रस्तुत ग्रन्थ का महत्व और भी बढ जाता है। जयसलमेर भांडारादि मे इसकी ताडपत्रीय प्रतियाँ प्राप्त है, जिनमे से मुनि पुण्य विजयजी ने प्रेस कॉपी करवा रखी है। यह ग्रन्थ संवत् ११६० मे रचा गया है। भरत बाहु बलि की मूर्तियाँ जैन

मन्दिरों म प्राप्त है। श्रवण बेलोपमा की बाहु बलि प्रतियाँ तो विश्व के आश्चर्य रूप म सर्वत्र विख्यात है।

प्रस्तुत लेख में-जो "बाहु बलि घोर" प्रकाशित की जारही है यद्यपि उसम रचनाकाल व स्थान नहीं दिया गया है पर पद्यांक २६ मे देवसूरि को प्रणाम करते हुए ग्रन्थकार ने अपना नाम वज्रसेन सूरि बतलाया है। इसमें वे देवसूरि के शिष्य सिद्ध होते हैं। देव सूरि सम सिद्धवादी श्वेसूरि होते हैं। जिनका जन्म सवत् ११४ , दीक्षा ११५२, आचार्य पद ११७४ और स्वर्गवास स० १२२६ म हुआ। आपने २४ विद्वान शिष्यों को आचार्य पद दिया था। जिनम वज्रसेन सूरि भी एक थ। अत प्रस्तुत घोर का रचना काल सवत् १२२५ के लगभग का होना समव है। 'भरतेश्वर बाहु बलि रास' से इसकी भाषा मे कुछ प्राचीनता दृग्गोचर होती है और गस बड़ा है यह छोटी रचना है। इसमे मा उसमे इसके पहले रचेजाने का पुष्टि होती ह। रचना स्थान का यद्यपि इसम निर्देश नहीं पर राजस्थान म रच जाने की विशेष सम्भावना है। वादि देवसूरि के शिष्य-प्रशिष्य नागपुरीय तथा गच्छ प्रसिद्धि म आया, जिसकी प्रसिद्धि नागोर मे हुई जो मारवाड का प्राचीन नगर रहा है।

प्रति परिचय —

जिस स्वाध्याय पुस्तिका से इसकी नकल की गई है वह छोटे साइज के ४४० पत्रा की है पर इस इस प्राप्ति के पत्रांक २८२ म ३०२ एव ३४७मे ४४ का प्राप्त हुए हैं। इनम से पत्रांक ३६२ म ३६८ म प्रस्तुत "घोर" लिखी हुई है। प्रति का पुष्पिका लेख इस प्रकार है —

"सवत् १४ ८ वैशाख सुदि २ द्वितीया दिन मगुरु श्री जिनराज सूरि सदुपदेशेन। प० हेम पुत्रा देवगुर्वाज्ञा चिन्तामणि विभूषित मस्तकया माऊ श्राविकया श्रात्म पुण्यार्थं स्वाध्याय पुस्तिका लिखिता। वाच्यमाना आचन्द्रार्क नदतु ६।"

माननीय स्वामी नरोत्तमदासजी ने हमारी नकल स सशोधित कर छपा तय्यार की था। उसकी प्रतिलिपि यहाँ प्रकाशित की जाना ह। अत स्वामीजी का आ म आभारी है। इसका अभी तक एक मात्र प्रति मिलने के कारण दो जगह पाठ अशुद्धि रह गई है। किसी विद्वान का उसका अन्य प्रति कहीं प्राप्त हो तो हमें सूचित करने की कृपा करें। हमारे सग्रह म १३ वीं शती की अन्य भी कुछ रचनाए है व जनवर्ग का उपयनमेर भाषा में भी शान्तिनाथ गगादि मि र है, जिन्हें क्रमश प्रकाशित किया जायगा।

वज्रसेन सूरि रचित

भरहेसर बाहुबलि घोर

पहिलउं रिसह जिणिंद् नमेवि भणिसहु ! निसुणहु गेतु भणेवि ॥
बाहुबलि केरउ विजउ ॥ १ ॥
सयलहं पुत्तह गणिय देवि । भरहेसर निय पाटि ठवे वि ॥
रिसहेसरि संजमि थियउ ॥ २ ॥
वरिसु जाउ विणि विणि उपवास । भुनिविं आरइ यसिय गहाण ॥
इय रिसहेसरि तपु कियउ ॥ ३ ॥
तो जुगाद—देवह मुपहाणु । उपन्नं वर केवल—नाणु ॥
चक्कु रयणु भर हेसरह ॥ ४ ॥
भर हेसरू जिण वंदण जाइ । रिद्धि नियंती अंगि न माइ ॥
मरु—देवी केवलु लहइ ॥ ५ ॥
तो भक्की दिगु—विजउ करेवि । भरहेसरु राणा मेलेवि ॥
अवज्झा—नयरिहि आइयउ ॥ ६ ॥
तो सेणावइ कहियं—देव ! अज्जउ आउह—सालह ओव ॥
चक्कु रयणु नउ पइसरइ ॥ ७ ॥
भरहु भणाहु कुन मन्नइ आण । देवबन्धु रावि खंध सत्राण ॥
बाहुबलि पुण आगलउ ॥ ८ ॥
अन्धु बाहु ! तुम्हि आजु—इ आजु । करउ आण कय छंडउ राजु ॥
भरहिं दूय पठावियउ ॥ ९ ॥
तो बंधव गय तापह पासि । सव्वे केवलि हुय गुण रासि ॥
राहू वलि मंडिउ थियउ ॥ १० ॥
पहु भर हेसर ओव, वाहु बलिहि कहा वियउ ।
जइ वहु मन्नहि सेव, तो अवणउ सग्रामि थिउ ॥ ११ ॥
गरूया अेकइ नाव, दूवोलिहिं गंजण वडिय ।
सो बाहुबलि ताव, दूअउ गलइ लियावियउ ॥ १२ ॥
सो बाहुबलि वाणि, संभलेवि अवझह गयउ ।
भरह तणइ अत्थाणि, पणमेविणु दूअउ भणइ ॥ १३ ॥

मइ लाध तहि गामि, मउडि महेसरू ज करइ ।
प्रगम्भट सामलि सामि, नाहु बलिहिं कढाव्रियउ ॥ १४ ॥
रतनह गागह तीरि, न्डउ जेन उच्छा लियउ ।
धाउ म होउ सरीरि, पडत उदय करिभालियउ ॥ १५ ॥
त बीसरिय श्राझु, मगहेसरू मय भिमलउ ।
अइ नरि लावउ गङ्घु, तनि थम्ह सेन मना त्रिस्थइ ॥ १६ ॥
गग मिंतु दइ गड, श्रन जड नादल मादिया ।
थे ठीगइ श्रड गाड, जीनउ मानइ माभान्उ ॥ १७ ॥
थेगिम नयखु मणोवि, मिलि-मिलि हुनिज गोहडिय ।
श्रगूढड टरेनि, नाहुनलि नाग—वनिहिं ॥ १८ ॥
थेथ तनि नह गामि, श्रार गिणु नाग उमणइ ।
तनि महियनि श्रन्मागि, नउ थी नाहुनलि सनउ ॥ १९ ॥
रोगानल पजलिउ नाव, मग्हेसरू जपइ ।
रे रे । ढियहु पियाण नाक, निमु महियनु कपई ॥ २० ॥
गनु गुलत चालिया श्थि, न गिनग जगम ।
हिंसा-गनि अहि रिय दियत हस्लिग तुरगय ॥ २१ ॥
रग डोलइ सलमनड, मेन गिणियग छाइन्नइ ।
मग हेमरू चालियउ, नटनि नम उपम दीनइ ॥ २२ ॥
त निसुणे त्रिणु नाहु-नलिण सीनह गय गडिया ।
गिग गहमि हिन उरग टलिहि, बेद पाणा जुडिया ॥ २३ ॥
श्रनि चालिउ पान्न होद, श्रनि ताणिउ नूगइ ।
श्रनि मनिग होइ काल-कूट, श्रनि मगि फुगइ ॥ २४ ॥
मडिगिउ नाटवलि मगणर, मन मग्ह श्रगूटइ ।
नो भुग-दटह पण्इ पानि, मो गिमन न छुग्इ ॥ २५ ॥
देन सूगि पणमेवि मयलु,-तिय-लोय-वन्दीनउ ।
नगम्मण-मूरि भगण श्रेहु, गण नगनु बीनउ ॥ २६ ॥
ना पन्लिन गिण-नगि गनलु, नेगु तहि भभियउ ।
पडिगउ मगो-मगि, श्रागि बागि मग्गह तगह ॥ २७ ॥

काइ लुंया कूच, काइं माथा मुंडिया ।
केवि किया खर लूंच, विज्जा हरि विज्जा बलिहिं ॥ २८ ॥
इय परिजउ भडवाउ, मउड बधा ऊतारियउ ।
तउ भरथेसरु राउ, आपणि ऊट वणिय करइ ॥ २९ ॥
तावइ विज्जु पवइ, अनलवेगु नह-यलि गयउ ।
मोडिवि तिणु धय-दंड, भरहेसरु विलखउ कियउ ॥ ३० ॥
चक्किहि छिंदइ सीसु, भरहेसरु विज्जा हरइ ।
इण रणि रंगि जु वीतु, देवा हड नइवीसरइं ॥ ३१ ॥
तो बहु जीव संहारु, देखेविणु बाहु बलिण ।
भणिय पर-बल सारु, मुज्झुवि तुज्झुवि लागटइ ॥ ३२ ॥
जइ बूझसि तउ बूझि, काइं माडलिए मारिये ।
पहरण पाखइ झूझु, अंगो अंगिहि कीजिनइ ॥ ३३ ॥
तउ थुरि जोवंताहं, आखिहिं पाणिउं आइयउ ।
आडहि बोलंताह, भरथहि पडिऊतरू नवि ॥ ३४ ॥
झूझु वि भुय-दडेहि, मल्ल-झूझुनहिं निम्मियं ।
मुठिहि अरु दंडहि, भरहु जीतु बाहु बलिहिं ॥ ३५ ॥
तो चिंतइस-विसाउ, जो दाइयहं दूबलउ ।
तहि कप्पियउ राउ, चक्क रयणु तह सुमरियं ॥ ३६ ॥
करियेलि चक्कु धरेवि, जाल-फुलिंगा मेल्हतउं ।
मुकउ बलि अनेवि, प्रवहइ नाहइं गोत्तियह ॥ ३७ ॥
तावहं भणइ हजेवि, बाहुबलि भरहेसरह ।
ऐन्ह छ्‌ मर देवि, चक्क-रयणि सउं निद्दलउं ॥ ३८ ॥
पुण तं भद्दु पयतु, तउ मइं मुकउ जीवतउ ।
मइ पुणु किउ सामंतु, पचह मुठिहि लोचु किउ ॥ ३९ ॥
तो पाये लागेवि, भरहेसरि मन्नावियउ ।
अंबत । मुज्झु खमेहि, तइं जीतउ मइं हारियउ ॥ ४० ॥
ऊतरु ताव न देइ, बाहुबलि भरहेसरह ।
गयो सरिसउ ताव, भरहेसरू थरि आइयउ ॥ ४१ ॥

पइ भरहेसरि गइ, मिलइ निरुपम पुहवियउं ।
इ बाहुबलि भाइ, माभिय काइ हरावियउ ॥ ४१ ॥
तउ महुबस्वर जाणि (श्रे), मिलइ नाहु पहु य नमइ ।
तारणु चरण म आणि (श्रे), पुन्न-सिय परि परिणामइ ॥ ४२ ॥
पनपूत अम्हि स्वामि (श्रे), चयरमेण निबकरइ ।
गहु हरि नि तहि पामि (श्रे) तपु सिरि श्रमि निम्मलउ ॥ ४३ ॥
मइ तहि निवयग्तु (श्रे) तउ पुणु बाधउ भोग-फलु ।
मुणिहि मनोमितु गानु (श्रे), बाहुबलिहि ॥ ४४ ॥
नमी म दहि अवि (श्रे), माया हरि हुई जुवई ।
भविणु इह जाणवि (श्रे), माया दूरि परिहरउ ॥ ४६ ॥
बाहुबलि इ नाणु (श्रे), मागि पयडिइ तउ हुयउ ।
भरहेसर कमि माणु (श्रे), नरसमण सरि बन्नगइ ॥ ४५ ॥
भारण तिन भावउ, निव भावी भरहेसरिहि ।
तउ भरत पाविहु (गे), राज्ञ करना नगु जिय ॥ ४८ ॥

इति भरतेश्वर-बाहुबलि घोर समाप्त

समीक्षा

पूर्व आधुनिक राजस्थान—

(लेखक—महाराज कुमार डॉ० रघुबीरसिंह एम० ए०, एल्० एल्० बी०, डी० लिट् ।)

प्रकाशक—साहित्य-संस्थान, राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर। पृष्ठ संख्या-४०० डेमीसाइज, मूल्य ७) पक्की जिल्द, ६) कच्ची जिल्द,

श्रीयुत डॉ० रघुबीरसिंहजी डी० लिट् अपनी इतिहास सेवा के लिए मालवा, राजस्थान तथा अन्य भारतीय प्रदेशों में सुप्रसिद्ध विद्वान हैं जिन्होंने 'मालवा में युगान्तर' तथा 'पूर्व मध्यकालीन भारत' आदि ठोस ग्रन्थों की रचना द्वारा अमर ख्याति को उपार्जित किया है। ऐसे प्रकाण्ड विद्वान् की रचना पर यदि मैं अपनी आलोचनात्मक दृष्टि डालने का प्रयत्न करता हूँ तो मैं यह अनुभव करता हूँ कि मेरा एक दुःसाहस एवं अनधिकार चेष्टा है। तथापि राजस्थान के इतिहास के विद्यार्थी के नाते इस दुःसाहस को संकोच के साथ कर रहा हूँ। आशा है, पाठक मेरे दृष्टिकोण को (पुस्तक के प्रति) इसी विचार से देखेंगे।

राजस्थान के इतिहास को लिखने और पढने की परम्परा यही चली आई है कि राजस्थान के अन्तर्गत पनपने वाली रियासतों का अलग २ अध्ययन या वर्णन किया जाय और प्रत्येक भाग के इतिहास को दूसरे भाग के इतिहास से श्रेष्ठ बतलाने का प्रयत्न किया जाय। जब तक यह विचारधारा पाठकों और लेखकों की बनी रही, राजस्थान का सच्चा इतिहास उपस्थित न होसका। परन्तु जब समूचे राजस्थान का राजनैतिक एवं शासकीय एकीकरण हुआ, इस बात की अत्यन्त आवश्यकता महसूस होने लगी कि हम राजस्थानी अपने प्रान्त का एक विश्वस्त ऐकीकृत इतिहास पढें। डाक्टर साहब ने इस अपेक्षा की

इति आपने 'पूर्व आधुनिक राजस्थान' नामक ग्रंथ की रचना कर डाली। जिस देश का शासन सदा एक सा हो तो क्यों उस प्रांत के इतिहास में छिन्न भिन्नता रहे? संभवतः यह इतिहास की रूपरेखा जनता के सामने इसी विचार से रखी गई है कि जनता अपने इतिहास की एकता के महत्व को इस ग्रंथ द्वारा समझे, अपने प्रांत के घटना क्रम को हृदयङ्गम कर तथा अपने जीवन में परम्परागत एकता भाव को सुदृढ़ करे। इस नई सूझ से यह इतिहास लिखने का श्रम सर्वथा स्तुत्य है।

उक्त ग्रंथ का तीन भाषणों में प्रकाशन होना और फिर 'ओझा' ग्रंथमाला में, यह महान आयास का फल सफल था। डाक्टर ओझा जिन्होंने अपनी संपूर्ण शक्ति का सदुपयोग राजस्थान के बिखरे हुए ऐतिहासिक साधनों को जुटाने में किया और जिनका अमर ग्रंथ अधिकांश राजस्थान प्रांत की ऐतिहासिक घटनाओं पर प्रकाश डालता है ऐसी महान विभूति की स्मृति में यहाँ भाषण संस्थापन का उद्घाटन किया। यह संपूर्ण रचनात्मक कार्य के द्वारा ही तो उसका मूल्य अधिक बढ़ जाता है। इस ग्रंथ की रचना और भाषणों ने भाषण के भाषणों के महत्व को बहुत बढ़ा दिया है और इसका और अधिक महत्व हो है।

गया है। राजस्थान के मध्ययुगीन शासकों की त्याग शीलता के अनुपम प्रमाण इस तरह उपस्थित किये गये हैं कि उनके प्रति पुनीत श्रद्धा का स्रोत हृदय पटल से बह निकलता है। इसके साथ २ जहां मध्यकालीन अनुचित व्यवहारों पर आलोचना की गई है वहां इस लेखक को स्पष्ट वक्ता कहे बिना नहीं रह सकते। पुस्तक में एक ओर युद्ध, विजय तथा साम्राज्य संस्थापन का विवेचन मिलता है तो दूसरी ओर जन-आन्दोलन, लोकोपयोगी कार्यों का भी चित्रण मिलता है। मेरी अनुमति में ऐसा ग्रन्थ राजस्थान की आधुनिक समस्याओं को सुलझाने में बहुत कुछ सहायक होगा। सबसे बड़ी बात जिससे मैं अधिक प्रभावित हुआ हूँ वह यह है कि इतिहास जैसे गंभीर तथा महत्वपूर्ण विषय को जन-साधारण के लिए उपयोगी बनाने का लेखक का अथक परिश्रम है। लेखन शैली इतनी उत्तम है कि जन साधारण तथा ऊँचे दर्जे के विद्यार्थी सभी इससे अपनी योग्यतानुकूल लाभ उठा सकते हैं।

जहाँ तक भाषा का प्रश्न है वह इतनी परिमार्जित है कि उसके लिए कोई भी पाठक प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता, अलबत्ता कहीं २ भाषा के प्रवाह की प्रधानता इतनी अधिक बन जाती है कि पाठक भ्रम में पड़ जाता है कि वह क्या साहित्य के आनंद का अनुभव कर रहा है या ऐतिहासिक घटनाओं का अध्ययन? कहीं २ तो भाषा के वेग में बहने के कारण ऐतिहासिक घटना चक्रों को ठीक तरह समझने में साधारण उपस्थिति का व्यक्ति कठिनता अनुभव करता है। इसी तरह जब कोई व्यक्ति ग्रन्थ को शोधपूर्ण दृष्टि से पढ़ना चाहता है तो उसे प्रमाणों की न्यूनता अनुभव होने लगती है। अच्छा तो यह होता कि डॉक्टर साहब के प्रभावपूर्ण विवेचन में प्रमाणों का भी उपयुक्त स्थान में समावेश होता तो इस सम्बन्ध में अधिक खोजपूर्ण काम करने वालों का सुगम मार्ग प्रदर्शन हो सकता था। तथापि हर दृष्टि से प्रस्तुत ग्रन्थ यथेष्ट आदर का पात्र है।

इस पर्यालोचना के साथ राजस्थान विद्यापीठ के पीठस्थविर तथा साहित्य-संस्थान के मुख्य कार्यकर्ता बधाई के पात्र हैं जिन्होंने अपनी अविरल लगन से इस प्रान्त में ऐतिहासिक प्रवृत्ति को अधिक प्रगतीशील बनाने का सफल प्रयत्न किया है। इन्हीं प्रवृत्तियों का अमूल्य व्यावहारिक स्वरूप इस पुस्तक का प्रकाशन है। यदि देश में ऐसी लगन और ऐसी संस्थाएं और लेखक बने रहें तो आशा है कि कई अज्ञात ग्रन्थ तथा वस्तुएं प्रकाश में आ सकेंगी और जनहित का सम्पादन ठीक प्रकार से हो सकेगा।

डॉ० गोपीनाथ शर्मा, एम० ए०, पी० एच० डी०,
इतिहास विभाग
महाराणा भूपाल कॉलेज
उदयपुर

मालवी कहावतें

सम्पादक — श्री रतनलाल मेहता, बी०ए०, एल्.एल्.बी०

प्रकाशक — साहित्य संस्थान, राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर

कुल पृष्ठ सं०— २०० $\frac{20 \times 30}{16}$

कुल कहावत — ६३५

श्री रतनलालजी मेहता बी०ए०, एल्.एल्.बी० ने उक्त पुस्तक का परिश्रम पूर्वक संग्रहीत कर सम्पादित किया है। लोक-साहित्य के विकास में इस प्रकार का प्रयत्न पूर्वक किया गया काम प्रशंसनीय है। प्रस्तुत पुस्तक में विभिन्न विषयों-सम्बन्धी कुल ६३८ कहावतें दी गई हैं। इनमें मुख्य—सामाजिक जीवन, मानव-प्रकृति, कृषि, स्वास्थ्य तथा आलोचना-सम्बन्धी लोकोक्तियाँ संग्रहीत हैं। लोकोक्तियाँ-मानव ज्ञान की गहन अनुभूतियों को व्यक्त करती हैं। इनके द्वारा व्यावहारिक-जीवन की विभिन्न समस्याओं पर भी प्रकाश पड़ता है। लोक साहित्य के विविध अंगों को प्रकाश में लाने के लिये यह आवश्यक है कि सर्व प्रथम हम व्यावहारिक जीवन से सम्बन्धित प्रचुर [illegible] साहित्य को एकत्रित करायें। एकत्रित करने का यह काम अत्यन्त परिश्रम साध्य है। साहित्य-संस्थान राजस्थान विश्व विद्यापीठ द्वारा ऐसे साहित्य को प्रकाश में लाने का प्रयत्न साहित्य की अभिवृद्धि में बड़ा सहायक होगा, इसमें संदेह नहीं।

लोकोक्तियों का प्रयोग प्राचीन काल से चला आ रहा है। सूत्र रूप में बात कहने की प्रथा पुरानी है। कम से कम शब्दों द्वारा अधिक से अधिक भावों और विचारों को व्यक्त करना एक बड़ी कला है। वर्तमान में आधुनिक साहित्य में इस कला का अधिक उपयोग नहीं किया जा रहा है। लोकोक्तियों का उपयोग भाषा की शक्ति को सजाने और शक्ति सम्पन्न बनाने में बड़ी सहायता देता है। प्रस्तुत पुस्तक में मालव-जनपद में प्रयुक्त होने वाली कहावतें हैं, इसका तात्पर्य यह नहीं कि अन्य जनपदीय बोलियों में इनका समावेश नहीं है। या तो किसी भी जनपद की लोकोक्तियाँ कहीं भी मिल सकती हैं।

प्रस्तुत पुस्तक लोकोक्तियों के संग्रह की दृष्टि से जहाँ उपयोगी और सुन्दर बन पड़ी है वहाँ छपाई-सफाई एवं प्रूफ की सरासर अशुद्धियाँ रह गई हैं। इनकी ओर अधिक ध्यान दिया जाता तो पुस्तक का मूल्य और अधिक बढ़ जाता।

इसी तरह पुस्तक का [illegible] भी [illegible] है। सारी पुस्तक में [illegible] का [illegible] प्रयुक्त हुआ है। इस पुस्तक के मूल्य की सूचना नहीं दी गई है।

कहावतों में प्रयुक्त जनपदीय शब्दों का अर्थ परिशिष्ट में देने के स्थान पर यदि 'कहावतों' के नीचे ही दे दिये जाते और उसके बाद उनके भावार्थ दिये जाते तो पाठकों को अधिक सुगमता होती।

प्रस्तुत पुस्तक की भूमिका श्री रामनरेश त्रिपाठी ने लिखी है, जो इस विषय के अधिकारी विद्वान् और अनुभवी हैं। पुस्तक की उपयोगिता इससे और अधिक बढ़ जाती है।

कुल मिला कर पुस्तक लोक-साहित्य के क्षेत्र में उपयोगी और महत्वपूर्ण है। इस परिश्रम पूर्वक किये गये काम के लिये लेखक और प्रकाशक दोनों ही बधाई के पात्र हैं।

सूरजलाल शर्मा
बी०ए०, बी०टी०, विशारद

सम्पादकीय

डॉ० सत्येन्द्र और लोक-साहित्य

डॉ० सत्येन्द्र का जन्म आगरा शहर से बिलकुल सटे एक गाँव भोगीपुरा में हुआ। आज तो यह गाँव शहर का अंग बन गया है पर डॉक्टर साहब की बाल्यावस्था में यहाँ लोक-जीवन पूरी उमंग पर था। कभी ढोला होता, कभी आल्हा, कभी निहालदे। रसिया, होली, कहानियाँ इन सभी का प्रभाव उन पर पड़ा। घर में होने वाले अवसर अवसर के अनुष्ठानों को भी वे ध्यान से देखते और सुनते थे। उनकी माताजी बड़ी श्रद्धा से प्रत्येक कार्य करती थीं। उस समय उनके समक्ष उन बातों के सम्बन्ध में बड़े प्रश्न पैदा होते थे। भैया दूज की कहानी तो उन्हें बहुत ही आकर्षित करती थी। उनका मन उन सबके यथार्थ रहस्य को जानने के लिए विकल रहता था।

इस प्रकार डॉ० सत्येन्द्र की मनोभूमि लोक-साहित्य के अनुकूल बनी। इन्हीं समस्त बातों के आसपास होने वाले स्वांग और भगतों में भी उन्हें सब कुछ सर्वथा त्याज्य और असाहित्यिक नहीं विदित हुआ। इनको देखने वालों की संख्या हजारों होती जिससे स्वभावतः ही लोक-शक्ति का परिचय मिलता। आगरा की नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से ख्यालों के सम्बन्ध में

काम कार्य हुआ। तभी से उनके मन में यह इच्छा घर कर गई कि लोक-साहित्य के संकलन का कार्य किया जाना चाहिए। जब वे बी०ए० में पढ़ते थे तब उन्होंने सी० महाजन का (जो आज कल आगरा विश्वविद्यालय के वाइस चान्सलर हैं) पवाड़ों (Ballads) पर एक व्याख्यान सुना जिससे उन्हें लोक-साहित्य के महत्व का परिचय मिला तथा वे इस ओर और भी आकृष्ट हुए।

आगरा छोड़ कर मथुरा आने पर उन्होंने इस सम्बन्ध में योजनापूर्वक कार्य करने का निश्चय किया। मथुरा साहित्य परिषद् की स्थापना करायी और उसी के द्वारा पहले विधिवत् लोक साहित्य संकलन का उद्योग कराया पर वह विशेष सफल नहीं हुआ। तब ब्रज साहित्य मंडल की स्थापना करायी और उसके द्वारा यह कार्य सम्पन्न कराया गया।

इसी बीच पं० रामनरेश त्रिपाठी का ग्रामगीत संग्रह प्रकाशित हुआ जिसमें ब्रज के गीतों का उपेक्षा की गई थी। डॉक्टर साहब को यह बात खटकी, ब्रज के लोक साहित्य के सम्बन्ध में संगठित रूप से कार्य करने की उनकी प्रेरणा और भी बलवती हो गई। ब्रज साहित्य मण्डल का समस्त कार्य आपकी ही योजना के अनुसार सम्पन्न हुआ। लोक साहित्य के सम्बन्ध में आपकी निम्नलिखित कृतियाँ प्रकाश में आ चुकी हैं—

१ ब्रज लोक साहित्य का विवरण (प्रकाशक—ब्रज साहित्य मण्डल)

२ ग्राम साहित्य संकलन ,, ,,

३ ब्रज की लोक-कहानियाँ

४ ब्रज की लोक-संस्कृति

५ ब्रज के लोक-साहित्य का अध्ययन (प्रकाशक—साहित्य रत्न भंडार, आगरा)

इसी अध्ययन पर आपको आगरा विश्वविद्यालय से पी० एच० डी० की उपाधि मिल चुकी है। इस कृति पर आगे किसी अंक में विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला जा सकेगा।

लोक-साहित्य के सम्बन्ध में आपके निम्नलिखित लेख भी प्रकाशित हो चुके हैं—

१ ब्रज-लोक-साहित्य—साहित्य संदेश

२ लोक-मानस के चमत्कार—जयाजी प्रताप

३ ब्रज के लोक गान—आल इण्डिया रेडियो, लखनऊ

४ ब्रज की लोक कथाएँ—आल इण्डिया रेडियो, दिल्ली

५ Indian Folk lore The Proverb (English) All India Radio Delhi

६ ढोला एक लोक महाकाव्य—हंस

७ ब्रज जनपद साहित्य—नई धारा

८ व्रज में लोक कहानी के भारोपीय रूप—व्रज भारती

९ राम होइ तौ ऐसौ होइ: एक अध्ययन—व्रज भारती

१० गावों की ओर—सैनिक

११ व्रज में सांस्कृतिक शोध—नवयुग

१२ दिवाली की लोकवार्ता—प्रसाद

१३ हिन्दी निर्माण में लोक साहित्य का योग—नवयुग

१४ व्रज का लोक साहित्य (पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ)

डॉ० सत्येन्द्र ने लोक-साहित्य के क्षेत्र में जो महत्वपूर्ण कार्य किया है, उससे राजस्थान के लोक-साहित्य-सेवियों को भी प्रेरणा ग्रहण करनी चाहिये। राजस्थान का लोक-साहित्य बहुत ही समृद्ध है। उसके अध्ययन के संबन्ध में कुछ छुटपुट प्रयत्न हुए हैं, किन्तु कहीं प्रान्त व्यापी संगठित योजना के अनुसार भी बहुत बड़ा कार्य नहीं हो पाया है। व्रज-साहित्य-मण्डल की तरह राजस्थान साहित्य सम्मेलन जैसी संस्था इस ओर अग्रसर हो तो इस दिशा में वांछनीय कार्य किया जा-सकता है।—

कन्हैयालाल सहल

सम्पादकीयः—

भारतीय इतिहास के पुनर्निर्माण की समस्या आज हमारे मध्य अधिक महत्व रखती है. राष्ट्र के उन संघर्ष पूर्ण क्षणों मे परिस्थितियों के कारण कदाचित हमने अपने प्राचीन इतिहास की ओर ध्यान न भी दिया हो, पर आज जब कि हम सर्वतन्त्र स्वतंत्र राष्ट्र के मध्य विचरना चाहते हैं तो निश्चित ही हमें अपना सही इतिहास बनाना होगा. राष्ट्र का चरित्र, इतिहास में ही प्रकट होता है और वही राष्ट्र के चरित्र को बनाता है। भारतवर्ष के एक इतिहास को बनाने के पूर्व भारतीय प्रान्तों के इतिहास पर हमें अधिक ध्यान देना पड़ेगा। प्रान्तों के इतिहास निर्माण के अभाव में हम भारतीय इतिहास की रचना कर नहीं सकते। भारतवर्ष में राजस्थान ही एक ऐसा प्रान्त है। जिसका इतिहास भारतीय जीवन में अत्यधिक महत्व रखता है ,यद्यपि राजस्थान का जो कुछ इतिहास लिखा गया है वह केवल एक प्रकार का राजनैतिक घटना प्रधान है—या क्षत्रिय जाति के जीवन पर प्रकाश डालता है, अथवा यों कहें कि—राजा महाराजाओं के जीवन का एक लेखा जोखा मात्र है। राजस्थान के इतिहास क्षेत्र में सब से प्रमुख स्व० डॉ० ओझा की देन है। उन्होंने भिन्न २ राज्यों के घटनात्मक या परिचयात्मक इतिहास बनाकर इतिहास के क्षेत्र को एक व्यापकता देने की सफल चेष्टा की

थी पर आज इस युगान्तरकारी पट परिवर्तन में राष्ट्रीय चेतनाशील इतिहास की जरूरत है। राजस्थान का नागरिक राज महलों में रहने वाले या अपने स्वार्थपूर्ण धर्म को पालने वाले व्यक्ति की अपेक्षा [illegible] पहाड़ियों, घाटियों और झोंपड़ियों में रहने वाले जीवन का इतिहास देखना चाहता है। इसके लिए न केवल भूतपूर्व इतिहासों के आधार ही काफी होंगे, पर यथा सम्भव सभी तरह के प्रयत्न करने पड़ेंगे। उन प्राचीन स्थानों को जो आज भूमिसात् हो चुके हैं—उन्हें खोद कर बाहर निकालना होगा। बीकानेर के पास प्राचीन स्थानों की खुदाई इसका प्रमाण है। इसी तरह उदयपुर के पास अभी कुछ दिन हुए आयड़ ग्राम के समीप स्थित ताम्रावती नगरी की पहाड़ियों की खुदाई से स्पष्ट है। कहते हैं—किसी प्राचीन काल में यहाँ एक सम्पन्न राजधानी थी, और काल प्रवाह में वह भूमिसात् होगई। यह भी बतलाया जाता है कि प्रसिद्ध आक्रमणकारी सिकन्दर ने इसे ध्वस्त किया था, कुछ भी हो यह एक इतिहास के अज्ञात पृष्ठ को खोलने वाली वस्तु अवश्य है। उदयपुर के आर्कियोलोजिकल विभाग के अध्यक्ष पं० अक्षयकीर्ति व्यास ने श्रम कर इसकी किंचित् खुदाई का कार्य प्रारम्भ किया है। उसे प्रारंभ में ही सफलता मिली है। कुछ मिट्टी के चित्रित बर्तन मिले हैं—जिनपर रोम संस्कृति का प्रभाव दिखाई पड़ता है। कुछ ताम्र के सिक्के और कौड़ी भी मिले हैं—एक धातु का सिक्का भी प्राप्त हुआ है। उस पर दो घोड़ों का चिह्न है, ३० फीट गहरी खुदाई में कोट के आकार भी मिले हैं—सम्भवतः वह उस समय नगर की कोट थी।

इस थोड़े से प्रयत्न में जो कुछ मिला है। वो वास्तव में अधिक महत्व रखता है। सरकार इसकी पूर्ण व्यवस्थित खुदाई करवा सके तो निस्सन्देह इतिहास के क्षेत्र में उसकी यह देन होगी।

इसके अतिरिक्त राजस्थान में कई प्राचीन स्थान हैं—जो आज देख भाल के अभाव में नष्ट भ्रष्ट हो रहे हैं। उन पर भी शीघ्र ही सरकार का ध्यान नहीं दिया गया तो वे भी हमें दुष्प्राप्य हो जायेंगे। तात्पर्य यह कि—इतिहास के पुनर्निर्माण के लिए उन सभी प्राचीन स्थानों और वस्तुओं का संरक्षण होना जरूरी है।

पुरातत्व के अतिरिक्त राजस्थान की लोक संस्कृति, सभ्यता और साहित्य का अध्ययन, मनन एवं आवश्यक सूचना संग्रह कार्य भी उतना ही अनिवार्य है, क्योंकि—हम व्यक्तिवादी इतिहास नहीं चाहते, न ऐसा इतिहास ही चाहते हैं—जो हमारे लोक मानस का प्रतिनिधित्व करने में असमर्थ हो। [illegible] पुराना राजस्थान केवल कुछ राजा महाराजाओं की शान में ही उलझा रहे और कभी जन जीवन का सच्चा मनोभाव प्रकट न कर सके।

इतिहास के इन पहलुओं में अनेकों विविध पर्याय, अनेकों क्रान्तिकारी परिवर्तन तथा महत्वपूर्ण अज्ञात घटनाएं प्रकट होंगी। उदयपुर एम० बी० कॉलेज के प्राध्यापक श्री डॉ० गोपीनाथ

पत्रिका—परिचय और नियम

१—यह साहित्य-संस्थान राजस्थान विश्व विद्यापीठ की त्रैमासिक पत्रिका है।

२—इसमें —

१-प्राचीन साहित्य मुख्यतः प्राचीन राजस्थानी साहित्य,

२-लोक साहित्य,

३-इतिहास,

४-पुरातत्व,

५-वनस्पति शास्त्र,

६-कला, भाषा शास्त्र आदि विविध विषयों के शोध-पूर्ण निबन्ध रहेंगे। साथ ही शोध-समाचार, साहित्य समालोचना आदि का भी समावेश होगा।

३—राजस्थान इसका प्रधान क्षेत्र रहेगा।

४—निबन्ध में प्रकट किये गए विचारों के लिये उनके लेखक ही उत्तरदायी होंगे।

५—लेखकों को प्रकाशित निबन्धों के २५ रीप्रिंट सम्बन्धित प्रति के अतिरिक्त भेंट किये जायेंगे।

६—समालोचनार्थ पुस्तकों की दो प्रतियाँ आनी आवश्यक होंगी। दो प्रति आने पर उसके लिए धन्यवाद के साथ प्राप्ति स्वीकार की जायगी।

७—पत्रिका का वार्षिक मूल्य १०) रु० तथा एक प्रति का २॥) रु० है।

८—किसी भी अंक से ग्राहक बनाए जा सकेंगे, किन्तु वर्ष से कम के लिए नहीं।

९—पत्रिका प्रति वर्ष—चैत्र, आषाढ़, आश्विन और पौष (मार्च, जून, सितम्बर तथा दिसम्बर) में प्रकाशित हो जाया करेगी।

इस अङ्क में:—



"सरस्वती देवयन्तो हवन्ते"

शोध-पत्रिका

[साहित्य संस्थान राजस्थान विश्व विद्यापीठ
की प्रमुख त्रैमासिक पत्रिका]

भाग २	उदयपुर, आषाढ वि० स० २००६	अङ्क ४

रणमल्ल छन्द पर कुछ शब्द

[ले० डॉ० दशरथ शर्मा]

१ हिन्दी साहित्य के इतिहास में वीरगाथा काल नाम से प्राय एक अध्याय अवश्य रहता है। किन्तु जिन वीरगाथाओं का परिचय हिन्दी के इतिहासकार देते हैं, वे प्राय उस समय की नहीं होती। वीसलरासो, खुम्माणरासो, परमालरासो आदि अनेक ग्रन्थ अत्यन्त परवर्ती कृतियां हैं, उनका समावेश उस काल में शायद केवल उसकी कलेवर पूर्ति के लिये जाता है। पृथ्वीराजरासो को भी इसकाल के परिचय में हम अपने प्राचीन रूप में नहीं पाते।

इतिहासकार प्राय उसके उन्हीं स्थलों से उद्धरण देते हैं जो अपेक्षाकृत अर्वाचीन है।

२ किन्तु हमारे साहित्य मे एक वीरगाथा काल था अवश्य। मुसलमानी आक्रमण का हिन्दुओं ने अनेक स्थानों पर जब मुँहतोड जवाब दिया, जब अपनी संस्कृति और स्वातन्त्र्य के लिये राजपूतों ने अपने प्राणों की बाजी लगा दी तो कवि स्वभावत उनकी प्रशसा किये विना न रह सके। उनके यशोगान का कवियों ने रामायण और महाभारत की तरह पवित्र समझा, और अपने चरित्र-नायकों को अनेक बार उन्हीं राम और कृष्ण का अवतार माना जिन्होंने असुरों का संहार कर धर्म की पुन स्थापना की।

३ हिन्दी की—या कहिये राजस्थानी के प्राचीन वीरगाथा काल की एक सुन्दर कृति, कान्हड़दे प्रबन्ध, के विषय में हम शोध पत्रिका मे कुछ लिख चुके हैं।

इससे भी अधिक प्राचीन और वीरगाथा काल का अनुपम नमूना श्रीधर कवि का रणमल्ल छन्द है। राजस्थानी साहित्य, भाषा और इतिहास इन सबके लिये यह समान रूप से उपयोगी है।

४. साहित्य की दृष्टि से रणमल्ल छन्द उज्वल रत्न है। जिस ओजस्विनी भाषा में इसने रणमल्ल के युद्ध का वर्णन किया वह शायद राजस्थान मात्र की उपज है। पृथ्वीराज रासो के युद्ध वर्णन से आकृष्ट और मुग्ध होने वाले साहित्यिक उसी कोटि का वर्णन रणमल्ल छन्द में देख सकते हैं। वही शब्दाडम्बर है, किन्तु साथ ही वह अर्थानुरूपता जो रासो के युद्ध वर्णनों में हमें उस अंश में नहीं मिलती। इस सत्तर पद्यों के काव्य में शिथिलता कहीं नाम मात्र को नहीं दिखाई पड़ती। इसके कथावतार में गङ्गावतार के प्रबल प्रकाल का वेग, गुञ्जन और साथ ही अद्भुत सौन्दर्य है।

५. भाषा की दृष्टि से छन्द में पर्याप्त अध्येय सामग्री है। अपभ्रंश और अवहट्ठकाल के समाप्त होने पर हमारी भाषा ने जो रूप धारण किया उसका यह प्रकृष्ट नमूना है। गुजराती और राजस्थानी उस समय तक परस्पर कुछ अधिक भिन्न न हुई थीं। हिन्दी अपनी शैशवावस्था में थी। किन्तु संज्ञाओं और क्रियाओं के प्राचीन प्रयोगों के अतिरिक्त छन्द में विशेष रूप से दर्शनीय बात है, अरबी और फारसी का हमारी भाषा पर प्रभाव। पृथ्वीराज रासो में मुसलमानी शब्दों की प्रचुरता से चकित होने वाले विद्वान सत्तर पद्यों के इस छोटे से पुराने काव्य में विदेशी शब्दों की भरमार से कुछ कम चकित न होंगे। सरसरी दृष्टि से सामने आने वाले कुछ ऐसे शब्द नीचे दिये जाते हैं :—

(१) पादशाह	(९) फुरमाण (फर्मान)
(२) बाजार	(१०) सुरताण (सुल्तान)
(३) अरदास (अर्जदाश्त)	(११) सुरताणी (सुल्तानी)
(४) हराम	(१२) नेज (नेजा)
(५) हलाल	(१३) जङ्ग
(६) माल	(१४) हल
(७) आलम	(१५) ऐयार
(८) बन्द (बन्दा)	(१६) खुद

(१७) खान	(२३) फौज
(१८) हेजब (हाजिब)	(२४) मलिक्क
(१९) लसकरि (लश्कर)	(२५) हल, हल
(२०) करिमा	(२६) विगरी, विगरी
(२१) थप्ति	(२७) सलाम
(२२) निमाज	(२८) सिल्लार (सालार)

६ काव्य की रचना सन १३९८ में या उसके बाद में हुई होगी, क्योंकि उसमें दिल्लीपति के परिभव के लिये दो व्यक्तियों को समर्थ माना गया है, एक शकशल्य रणमल्ल को और दूसरे 'यमतुल्य तिमिरलिङ्ग' यानि तिमूर को जिसने सन् १३९८ ई० में दिल्ली पर अधिकार कर हजारों निरपराध व्यक्तियों को मरवा डाला था। किन्तु काव्य में वर्णित संग्राम किस समय हुआ यह देखने के लिये आवश्यक है कि हम उसके कथानक का अच्छी तरह अध्ययन करें। काव्य के रचना समय से घटना के समय का हम पूर्ण निर्णय नहीं कर सकते, क्योंकि ऐतिहासिक घटनाएं किसी समय वर्णित हो सकती हैं, घटना के समय और उसके बाद भी।

७ संक्षेप में रणमल्ल छन्द की कथा इस प्रकार है –

सुल्तान के पास शिकायत पहुची कि रणमल्ल ने खजाना लूट लिया है। वह सुल्तान की आज्ञा और उसके फर्मान की कुछ परवाह नहीं करता। वह घोड़ी पर चढ कर चारों तरफ धावा करता है। सब थानों के मालिक उससे थरथर कापते हैं। रात्रि के समय रास्ता तो अंधेरे ही धोलका को और प्रात वह पाटन को लूटता है। मोडासा का मीर रहमान व्यर्थ ही सरकारी पैसे खर्च करता है। खिदमतखा हरामखोरी नहीं करता, किन्तु रणमल्ल से भिडने को किसी में शक्ति नहीं है।

८ सुल्तान यह सुन कर हैरान हुआ। उसने सेना तैयार की और खान को फर्मान लिख दिया। मीर मुजफ्फर ने अब मत्सर से मूछें मोडी। सब साज सामान और युद्ध की सामग्री समेत सेना चली, और शीघ्र ही ईडर की तलहटी में जा पहुची। मालिक ने मध्यरात्रि के समय मन्त्रणा की और एक दूत रणमल्ल के पास भेजा। वीर रणमल्ल कब पराधीनता स्वीकार कर सकता था। उसने मुसलमानी सन्देश को ठुकराते हुए कहा —

मेरा मस्तक यदि म्लेच्छ के पैरों में लगेगा तो गगनाङ्गण में सूर्य उदय न होगा। चाहे बड़वानल की ज्वाला शान्त हो जावे, मैं म्लेच्छ को कभी कर न दूंगा। छतीस कुलों के राजपूतों की सेना सजा कर, मैं हम्मीर के मार्ग का अनुसरण करूँगा। दल-दारुण जयी जफरखान मेरे तलवार की चोट के मारने भाग निकला। मेरे सामने अङ्गो-अङ्ग, भिड़कर शम्सुद्दीन भी परास्त हुआ। अपने स्वामी से कहना कि जब वह ईडर पहाड़ की तलहटी में पहुंचेगा तो उसे रणमल्ल के बल का पता लगेगा।

९. रणमल्ल का उत्तर सुनते ही मलिक ने चमक दमक कर ईडर पर धावा बोल दिया। प्रजा त्रस्त हो कर चिल्लाने लगी। "हे दीन अभयकर, अरिजन दारुण रणमल्ल, म्लेच्छ लोग ब्राह्मणों और बालकों को बन्दी कर रहे हैं उन्होंने हमारे गांव और घर नष्ट कर दिये हैं। अनेक स्त्रियो को उन्होंने पति विहीन किया है' हे राठोर-वीर, दौड़ कर हमारी रक्षा करो।"

१०. ईडरपति रणमल्ल शस्त्रास्त्र से सुसज्जित होकर युद्ध में पहुंचा। उधर खवास खान अपनी सेना सहित ईडर की तलहटी में आया। दसों दिशाओं में मुसलमान ही मुसलमान दिखाई देने लगे।। उनके रौद्र शब्द से उत्साहित होकर (सेनानायक) मुकर्रह ने जोरदार हमला किया। मुगल, बंगाली, बड़े बड़े मलिक सब युद्ध मे पहुंचे।

११. मुसलमानी घुडसवारों के आक्रमण का रणरसिक रणमल्ल ने करारा उत्तर दिया। उसने मुसुलमानी सेना का मथन कर डाला। उसने चारों तर्फ गढ़, गढ़ी, और गिरिगह्वरो पर दृष्टिपात किया, और अपने घोड़े पर सवार होकर शीघ्र ही बादशाही सेना मे जा पहुंचा। राव रणमल्ल बाज और मुसलमान चिड़ियाँ थे। महायोद्धा रणमल्ल के भुजदण्ड की झपट से भड़क कर हडहड करते वे युद्ध से भाग निकले।

१२. सोनगिरे सांभर-पति कान्हड़ ने गजनी पति से युद्ध कर सोमनाथ को उसके हाथ से छीन लिया और आदर पूर्वक उसकी पुनः स्थापना की। इसी प्रकार रणमल्ल ने भी सुल्तान का सामना किया। उसने अपना मान न छोड़ा। जिन्हे अपनी वीरता, अपने ऐश्वर्य, और अपने अधिकार का गर्व था, ऐसे हजारो मुसलमान योद्धाओ ने रणमल्ल के सामने मुँह में घास लेकर अपनी रक्षा की।"

१३ इस वर्णन से स्पष्ट है कि छन्द में वर्णित संग्राम, रणमल्ल ने मलिक मुफर्रह् से किया था, मुफर्रह् ने मुस्लिम सैन्य के रवाना होते ही मूछों पर वल डाला। इसी ने रणमल्ल का अभिमान-युक्त, उत्तर सुनते ही मत्र सेना सहित ईडर के दुर्ग पर धावा किया। यह रास्तीखान के नाम से भी प्रसिद्ध था और गुजरात का सूबेदार नियुक्त करते समय फिरोज तुगलक़ ने इसे फरहतुलमुल्क की उपाधि प्रदान की थी। ईडरगढ की तलहटी को अधिकृत करने वाला खरासखान सम्भवत इसका सेनापति था। मोढासे का अधिकारी मीर रहमान उसका ताबेदार रहा होगा[४]।

१४ मलिक मुफर्रह ने गुजरात पर सन् १३७७ से सन् १३६१ तक शासन किया। इस बीच में रणमल्ल और मुफर्रह् का किसी समय युद्ध हो सकता था। अनेक विद्वानों का अनुमान है कि यह संग्राम मुफर्रह् के शासन के अन्तिम दिनों में हुआ होगा[५]। उस समय वह दिल्ली की सल्तनत से झगड चुका था, गुजरात मे भी उसके अनेक विरोधी थे। विशाल सैन्य एकत्रित करने के लिये उसे रुपये की अत्यधिक आवश्यकता थी। करों के गुरुभार से लदे गुजरात में यह शक्ति न थी कि वह उसकी माँग को पूरा कर सके। इसलिये इधर उधर से धन बटोरने के लिये उसने ईडर जैसे हिन्दू राज्यों पर आक्रमण किया होगा। ये राज्य कभी कर देते और कभी न देते। उनको दबाने का साधन केवल बल था।

१५ ये युक्तियां असंगत प्रतीत नहीं होतीं किन्तु यह भी असम्भव नहीं है कि यह युद्ध वास्तव में मुफर्रह के शासन काल के आरम्भ में हुआ हो। रणमल्ल छन्द के अनुसार रणमल्ल इससे पूर्व गुजरात के दो शासकों को हरा चुका था। इनमें एक 'दल वरुण जयी दफरखान' और दूसरा 'शम्सुद्दीन था'। 'दफरखान' से तात्पर्य जफरखा रूम से है जो सन ११६० में अपने पिता की मृत्यु के बाद गुजरात का शासक बना। 'शम्सुदीन' नाम से जफरखान का उत्तराधिकारी ज़ियाउलमुल्क शम्सुद्दीन अबू रिजा या उसका उत्तराधिकारी शम्सुद्दीन दामगानी निर्दिष्ट है। छन्द से यह स्पष्ट नहीं है कि वास्तव में रणमल्ल ने किस शम्सुद्दीन को नियुद्ध में परास्त किया[६]। मलिक मुफर्रह जब दामगानी के स्थान पर नियुक्त हुआ तो उस समय उसके लिये यह सर्वथा स्वाभाविक बात थी कि वह अपने पूर्वाधिकारियों की पराजय का बदला ले और रणमल्ल को हराकर अपने आपको उनसे अधिक

सफल योद्धा और शासक सिद्ध करने का प्रयत्न करे। छन्द ने मुफर्रह की हार को दिल्लीपति की हार माना है[७]। यह भी तब संगत हो सकता है जो कोई शासक अपने आपको दिल्लीपति का उत्तराधिकारी मानता हो। अपने शासन के अन्तिम दिनों मलिक मुफर्रह स्वतन्त्र था। उसने दिल्लीपति द्वारा नियुक्त शासक सिकन्दरखां को परास्त कर गुजरात पर अपना शासन कायम रखा था[८]।

१६. यह भी ध्यान में रहे कि मुफर्रह के अन्तिम दिनों में युद्ध को रखने वाले विद्वान यह अनुमान करते हैं कि मुफर्रह ने कर वसूल करने के लिये ईडर पर आक्रमण किया। यही उनके मतानुसार रणमल्ल और मलिक मुफर्रह के युद्ध का कारण था। इसके विपरीत रणमल्ल छन्द से हमें ज्ञात है कि युद्ध रणमल्ल की छेड़ छाड़ से शुरू हुआ था। वह कभी गुजरात के एक प्रदेश को तो कभी दूसरे प्रदेश को लूटता। बादशाही खजाने तक को उसने लूट लिया। उसे पकड़ना आसान काम न था। वह सायंकाल के समय खम्भायत में तो दूसरे दिन की दोहपर तक पाटण में जा पहुंचता। मोडासे वाले बीच में तकते ही रह जाते। अनुमानतः रणमल्ल इस समय अपनी पूर्ण यौवनावस्था में रहा होगा। जफरखां रूम के शासन के अन्तिम भाग में और शम्सुद्दीन-द्वय के शासनकाल में रणमल्ल ने अपनी जो शक्ति वृद्धि की थी, वही सम्भवतः मुफर्रह के शासन के आरम्भ में चालू रही और मुफर्रह से रणमल्ल के युद्ध का कारण बनी।

१७. यह सोचना कि एक छोटे से राज्य के स्वामी ने गुजरात के सूबेदार का किस प्रकार सामना किया होगा, निष्कारण ही नहीं, व्यर्थ का ऊहापोह है[९]। हमें मुसलमानी इतिहासकारों से ज्ञात है कि मुफर्रह की मृत्यु के बाद रणमल्ल ने अनेक बार उसके उत्तराधिकारी, गुजरात के प्रथम सुल्तान मुजफ्फरशाह का सामना किया, और जब मुजफ्फरशाह मर गया तो उसके पुत्र फिरोजशाह ने रणमल्ल के बल पर ही गुजरात पर अधिकार करने का प्रयत्न किया[१०]। राठोड वीर रणमल्ल कोई सामान्य व्यक्ति न था। वह अपने समय के शूरों में अग्रणी और हम्मीर चौहान की तरह छत्तीस कुल के राजपूतों का नेता था[११]। आवश्यकता पड़ने पर ये सब मुसलमानों के विरुद्ध रणमल्ल का साथ देते। ईडर भी अत्यन्त प्रबल दुर्ग था। 'आज कल भी गुजरात में कोई मुश्किल काम पार पड़े तो "ईडरियोगढ़ जीत्यो" ऐसी कहावत चली आती है[१२]।

१८ ऐसे दुर्ग और ऐसे रण कुशल योद्धा के सामने मुफर्रह का हारना असम्भव बात न थी। हमें उसके लिये यह अनुमान करने की आवश्यकता नहीं कि 'मुसलमान सूबेदारों के बल और सेना को देखते या लश्कर में कोई भाग से हुआ हो, या सूबेदार ने छोटी बात समझ कर स्वय न आकर किसी दूसरे को भेजा हो, या लश्कर असतोष के कारण बराबर न लडा हो, ऐसे ही कारणों से (रणमल्ल की) विजय मिल होगी'[१३]। सन् १८०३ में भरतपुर के दुर्ग के सामने अंग्रेजो की यही दशा हुई थी। भरतपुर छोटा सा राज्य था, और अँग्रेज प्राय सब भारत के स्वामी बन चुके थे। इतना होते हुए भी अनेक हताहतों को खाइयो में पीछे छोड कर अँग्रेज सेनापति लेक को भरतपुर का घेरा उठाना पडा था।

१९ इसी प्रकार यह कथन भी ठीक नहीं कि जब रणमल्ल की सेना मुफर्रह से लड रही थी,'साभर के हाकिम' सातल की सेना अचानक दूसरी तर्फ से आ लगी, परिणाम यह हुआ कि दो दुश्मनों के बीच मे पड कर मलिक मुफर्रह की फौज हार गई[१४]। वास्तव मे रणमल्ल छन्द के ६७ वें पद्य में केवल सोनगिरे चौहान सातलदेव या कान्हडदेव से रणमल्ल को उपमित किया गया है। सोनगिरो ने मुसलमानी फौज को हरा कर सोमनाथ महादेव को उसके हाथ से छुडा लिया था, और रणमल्ल ने इसी प्रकार मुसलमानों से युद्ध कर उन्हे पराजित किया था। सातलदे या कान्हडदे कभी साभर के हाकिम न थे। अब भी चौहान 'साभर के धणी' और प्रतिहार 'मण्डोर के धणी' के नाम से सम्बोधित होते हैं, यद्यपि साभर और मण्डोर को उनके हाथों से निकले सैकडो वर्ष हो गये हैं। कान्हडदे प्रबन्ध में भी कान्हडदे के लिये 'सभरपति' शब्द अनेक बार प्रयुक्त हुआ है, यद्यपि वह स्वय जालोर का राजा था, और साभर उस समय मुसलमानों के अधिकार में था।

२० मलिक मुफर्रह की पराजय के कारण किसी अश में रणमल्ल छन्द में ही निर्दिष्ट हैं। वह रणशूर था और साथ ही रणचतुर भी। उसने पहले सत्तरास खान की सीमित सेना को नष्ट किया, उसके बाद आगे बढती हुई मुख्य सेना पर शायद गढ, मढी, गिरिगह्वर-सब तर्फ से अचानक हमला बोल दिया। श्रीधर ने रणमल्ल को बाज और मुसलमानों को चिडों से उपमित किया है, और वास्तव मे स्थिति भी यही थी। रणमल्ल न जाने कहा से, मानों आकाश से, मुसलमानो पर बाज की तरह टूट पडा। कुछ मुसलमान भागे, कुछ मरे, अनेक ने आत्म समर्पण किया[१५]।

२१. रणमल्ल के वीर कृत्यों में मुजफ्फर की पराजय सम्भवतः मुख्य थी। इसलिये कई साल के बाद भी श्रीधर ने इसकी कथा को कविता का रूप दिया। सन् १३६८ में मुजफ्फरशाह गुजराती ने ईडर पर आक्रमण किया। रणमल्ल ने साहस पूर्वक उसका सामना किया। किला कई दिन तक घिरा रहा। ऐसे अवसरों पर अपने मनोविनोद और शत्रुओं को चिढ़ाने के लिये घिरे सैनिक अनेक प्रहणक और रास किया करते[१६]। विशेष कर सिपाहियों को जोश दिलाने वाली कृतियां ऐसे समय अभिनीत होती होंगी। श्रीधर की कृति शायद इसी १३६८ के घेरे के समय निर्मित हुई हो। वह उस समय के उपयुक्त थी। इस वीरगाथा से मस्त होकर सैनिक सोचने लगे होंगे, "हमने वीर रणमल्ल के नेतृत्व में इससे पूर्व अनेक वारी मुलसमानों को ईडर के सामने से भगाया है। अब मुजफ्फर की बारी है। रणवावले (रणमत्त) रणमल्ल को युद्ध में कौन जीत सकता है।"

× × × ×

'रणमल्ल छन्द' का प्राचीन गूर्जर काव्य के रूपमे सम्पादन हो चुका है। मौलवी सैयदअबुजफर नदवी इसकी ऐतिहासिक समालोचना भी प्रकाशित कर चुके है। किन्तु अभी इसके पुनः सम्पादन की आवश्यकता है। इस प्राचीन राजस्थानी के रत्न की अभी पूरी परख न हो सकी है। इसके अनेक स्थल ऐसे है जिन्हें अब तक बहुत से समझ न पाये हैं। राजस्थानी और हिन्दी के सम्पूर्णाङ्ग अध्ययन के लिये यह आवश्यक है कि हम 'भरतेसर बाहुबलि घोर', भरत बाहुबलि रास', रणमल्ल छन्द'; 'कान्हडदे प्रबन्ध' आदि वीर काव्यों और प्राकृतपिङ्गल जैसे ग्रथो के उदाहरणो को अपने संमुख रखकर वीरगाथा काल के इतिहास को फिर लिखें। गड्डरिका प्रवाहेण खुम्माणरासो, परमालरासो, हम्मीररासो आदि अर्वाचीन कृतियो से वीरगाथा काल का कलेवर भरना साहित्य के सच्चे विद्यार्थियों को शोभा नहीं देता।

Foot notes

१. हिन्दी साहित्य के इतिहास के अनेक रचयिताओं को अब तक यह भी ज्ञात नहीं है कि 'पृथ्वीराज रासो' के अनेक रूपान्तर है। ऐसी दशा में वे रासो के अर्वाचीन भागों को उदाहरणार्थ चुने तो आश्चर्य ही क्या है?

२ देखें भाग ३, अङ्क ।

३ इस सत्य को हृदयङ्गम करने के लिये 'रणमल्ल छन्द' को सरसरी तौर से पढना काफी है।

४ मुफर्रह के जीवन की विशेष जानकारी के लिये मौलवी सैयद अबुजफर नदवी की 'रणमल्ल छन्द की समालोचना' पढें।

५ यह नदवी साहब का मत है। गुजरात के इतिहास के नवीन लेखक प्राय उनके मत का अनुसरण करते है।

६ इन गुजरात के शासकों की जीवनी के लिये शम्से सिराज अफीफ की 'तारीख फिरोजशाही' या नदवी साहब की उपर्युक्त पुस्तक देखें।

७ छन्द में संस्कृत श्लोक ५ देखें।

८ देखें 'तारीखे मुबारक शाही', पृष्ठ १६ [Elliot and Dowson s History of India as told by its own historians, vol IV]

६ नदवी साहब को गुजरात के शासको का रणमल्ल से हारना किसी अश में असगत प्रतीत हुआ है।

१० देखें 'तारीखे फिरिश्ता' जिल्द ४, पृष्ठ १५।

११ देखें 'रणमल्ल छन्द', पद्य ३१

१२ गुजरातनो सांस्कृतिक इतिहास, इस्लाम युग खंड १, भाग १–२, पृ० २६१

१३ यह श्री केशवराम शास्त्री का अनुमान है।

१४ यह नदवी साहब का कथन है।

१५ पद्य ५८–६१ देखें

१६ हम्मीरमहाकाव्य और कान्हडदे प्रबन्ध देखें।

महाराजा कुमारपाल रचित एक अज्ञात ग्रन्थ की उपलब्धि

(ले० श्री अगरचन्द नाहटा)

चालुक्यवंश मौक्तिक महाराजा कुमारपाल का युग गुजरात एवं जैन इतिहास का स्वर्णयुग था। उस समय के इतिहास सम्बन्धी अनेक समकालीन ग्रंथ व अभिलेखादि सामग्री प्रचुर परिमाण में मिलती है। महाराजा कुमारपाल देव के कई संस्कृत चरित जैन विद्वानों द्वारा रचित प्रकाशित हो चुके हैं जिनके आधार से आधुनिक गुजराती में बने हुए कई ग्रंथ प्रकाशित हैं। जैनाचार्य श्री हेमचंद्रसूरी का सिद्धराज जयसिंह पर भी अच्छा प्रभाव रहा, उस विद्या विलासी नरेश के नाम से संबद्ध आचार्य श्री ने सिद्ध-हैम शब्दानुशासन नामक विशाल और अद्वितीय ग्रन्थ की रचना की थी। राज्यप्राप्ति से पूर्व महाराजा कुमारपाल का तो आप ही ने संरक्षण किया था। अतः उस पर तो आपका असाधारण प्रभाव था। महाराजा ने आचार्य प्रवर से जैन धर्म स्वीकार कर अपने समस्त विशाल राज्य में जीवहिंसा व सप्त व्यसनो को निषिद्ध कर दिया था। आचार्य श्री ने महाराजा कुमारपाल का चरित्र द्व्याश्रय काव्य मे दिया है एवं योगशास्त्र की रचना भी उन्हीं के अनुरोध से की थी। आचार्य श्री के बनाए हुए वीतराग स्तोत्र का महाराजा नित्यपाठ किया करते थे। संक्षेप में महाराजा कुमारपाल बड़े धर्मिष्ठ और विद्यानुरागी थे, यह तो प्रसिद्ध ही है पर अभी तक आपके रचित एक स्तोत्र के अतिरिक्त अन्य कोई रचना ज्ञात नही थी। सौभाग्यवश जोधपुर के श्री केशरियाजी मन्दिर स्थित खरतर गच्छीय ज्ञान भण्डार का गत कार्त्तिकी-पूर्णिमा को अवलोकन करते हुए आपके रचित गणदर्पण नामक व्याकरण ग्रंथ की उपलब्धि हुई है। यह ग्रन्थ दण्ड वोसरि प्रतिहार भोजदेव के लिये बनाया गया है। इस की भाषा संस्कृत और पद्यो के साथ कही कही गद्य भी है। इस प्रति में

प्रारभ के २ पत्र नहीं है एव बीच बीच मे पाठ भी छूटा हुआ है, अत इसकी अन्य प्रति के अन्वेषण की ओर विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया जाता है।

गणदर्पण की यह प्रति ५०० वर्ष प्राचीन स० १५१८ (शाके १३८३) देव-गिरि में देवडा गोत्रीय ओसवाल धीनपाल ने लिखी या लिखवायी है। प्रति, जैन मुनि समयभक्त को दी गयी है। ये समयभक्त खरतर गच्छ के थे। इनके शिष्य पुण्यनन्दि द्वारा रचित सुप्रसिद्ध रूपकमाला की प्रशस्ति के अनुसार ये आचार्य सागरचंद्रसूरि के शिष्य रत्नकीर्ति के शिष्य थे।

इस प्रति मे कहीं कहीं पाठ छूटा हुआ है, अत जिस जीर्णादर्श से यह नकल की गई थी उसके कहीं कहीं खण्डित रूप में मिलने की सूचना मिलती है। और वह मूल प्रति अवश्य ही ताडपत्रीय और पर्याप्त प्राचीन रही होगी।

गणदर्पण नामक एक व्याकरण ग्रथ ,वगाल मे प्रकाशित होने की सूचना प० जितेन्द्र जेटली महोदय से मिली, जो इससे भिन्न व परवर्ती होना सभवित है। यहा इस अज्ञात ग्रथ का परिचय दिया जा रहा है।

जैसा की प्राय होता है सभव है गणदर्पण महाराज ने स्वय नहीं बनाया हो पर दिल्ली सभा पडित ने उनके नाम से रचा हो पर प्रमाण भाव से कुछ निश्चित कहा नहीं जा सकता। गणदर्पण के प्रारम्भिक दो पत्र नहीं हैं, तृतीय पत्र की प्रारम्भिक पक्तिया यहा उद्धृत की जाती है —

काष्ठा दारुण वेशा माता पुत्राद्भुत रच तय
भृश घोरा ना ज्ञाता युत परमार्थेति काष्ठानि ॥ ४ ॥
क्रिया विशेषणी भुत प्राज्ञो रेप समस्यते
काष्ठा मध्यापक इति स्यात्काष्ठाध्यापको यथा ॥ ५ ॥
अथ तिष्ठगुप्रह-यती गम काल भेगे स्यात्
नैरान्येन समासो लूनय नभूयमानय ॥ ६ ॥
गम-पुण्य समभायती ममसपि निष्पम भिष्ठमाचार्यै ॥ छ ॥

पत्राङ्क ५ व० अन्त-अष्टापदान्नकार द्वीपादि नपु शके च पु स्यपिच ॥ छ ॥
इति श्री राजपितामह श्रीगन्नानुस्य भूपाल कुमारपाल देवेन दण्ड योमरि

प्रति भोजदेवार्थं विरचिते गण दर्पणे प्रथमस्याध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥ छः ॥

तृपाद प्रारंभ व–चस्के वरकरो वृक्षे कारस्कर वनस्पती रथांगेपस्करो

वेणो मस्करो मस्करी व्रती । SSSSSSS पारस्कर इति देशेन दीरघ-
म्यागुहातु ।

पत्रांक ७ व० अन्त–

एनैकरोते योगेत्वर्थे वा गति संज्ञक

साक्षात्कृत्य महेशानां साक्षात्कृत्व जनार्दनं ।

इति श्री राज पितामह श्री मचौ (लु) क्य भूपाल कुमारपाल देवेन दण्ड वोसरि प्रति भोज देवार्थं विरचिते गण दर्पणे प्रथमम्याध्यायस्य तृतीय पादः

पत्राङ्क ८ अ०–तस्मिन् कृतवर्गाहि साधवः स्युनिपातनात् । छ ।

इति श्री राजपितामह श्री चौलुक्य भूपाल० गणदर्पण प्रथमोध्यायः समाप्तः ॥

द्वितीयाध्याय प्रारम्भ–

भीम श्रक् खलति भीष्मः श्चरु रांक शुक

भयानक समुद्रो वर चोभीयादयो यताः ।

पृ०९ व० अन्त–व्रश्चि सातिर सिस्हादिक मिनधादितघ्नः

प्रत्ययः कर्त्तरि प्रोक्ता स्यादिध्म व्रश्चनोयथा ॥ १९ ॥

इति श्री राजपितामह श्री मचौलुक्य भूपाल कुमारपाल देव दण्डः वोसरि प्रति भोजदेवास्यार्थे विरचिते गण दर्पणे द्वितीयस्याध्यायस्य प्रथमपादः कृत्प्रकरणं समाप्तम् ।

द्वि० द्वि० प्रारम्भ–गणेज्ञाकुण पंक्ति रथांतराणि

इन्द्रावसन जनपद विकर महा

प्राण हंस पथ वि नदाः ।

त्रिष्टु भसत्व दनुष्टु रुरुत्तर

वृहद्धर्म मानव महिमान्न

पत्रांक १३ अ० तेभ्यो लुग्नि धीयतोल्वलिः स्यात्पिता ह्यस्य तत्पुत्र स्तोल्वलायनः । २४ ।

इति श्री राजपितामह श्री मच्चौलुक्य भूपालदेवेन दण्ड वोसरि प्रति

भोजदेवार्थं विरचिते गणदर्पणे द्वितीयस्याध्यायस्य द्वितीयस्पाद ।

द्वि० तृ० भिक्षा करी कर्ष चर्मन् क्षेत्रमर्थ वत्सयहस पद्धतय युवति पदाति पत्राङ्क १५ अ० अत– करणादि गण सोय मतस्या च्चातुर्थिक

प्रययो लूक माप्नोति करणा नगर यथा ।। २६ ।।

इति भोजदेवार्थ विरचिते गणदर्पणे द्वितीयस्याध्यायस्य तृतीय पाद

चतुर्थ प्रारम्भ– कश्यभिष्कुडिन ग्राम कुभि पुष्कर पुष्कला

महिष्मति च नगर दम्ती मोदनस्तथा ।

पत्राङ्क १६ ब० अत– कुलालेन कृत कुभादिक कोलालक यथा ।। १३ ।।

इति श्री कुमारपाल देव भोजदेवार्थे विरचिते गणदर्पणे द्वितीयस्यध्यायस्य चतुर्थ । पाद । छ । इति द्वितीयाध्याय समाप्त । छ ।

तृतीयाध्याय प्रारम्भ—

विल्व व्रीहिम सूरेक्षु मुद्ग गोधूम पाटलि

कर्क धूरेणु कार्पासी कुटीरासीत्य यगण ।

पत्र १८ ब० अन्त— सतापाय प्रभवति तथाहि सातापिको विरह ।। ४१ ।।

इति श्री कुमारपाल देवेन भोजदेवार्थं विरचिते गण दर्पणे तृतीयस्याध्यायस्य प्रथम पाद समाप्त ।। छ ।।

तृ० द्वि० प्रारम्भ—

चतुरोर सलम मगत यड लवणा बुध कतत्रापिच तत्पूर्वात पुरुषोदन चतुरादि मपहाय भावे कर्मणि तत्वोभोज भवता चतुर्थादि ।

अन्त—रावादिरयन्तस्या द्वातोर्थं नोपजायते य थासानीति धीत आम्नासिपु रुद्राहृति ।। ३० ।।

इति तृतीयाध्यायस्य द्वितीय पाद

तृतीयअध्याय के तृतीय पाद का यहाँ उल्लेख नहीं है ।

चतुर्थपाद का प्रारम्भ—

स्थूलेषु पानं तिल काल पत्र मूलानी यर्णो कृष्णिक्षुराणा

एरण्ड वचन्मणि हस्त चद्र पुत्राणि सत्य मधु पल्लवे पुच ।

कुमारीश्च सुरे मन्य कुमारी पुत्र इत्यपि

महा प्रकार वत्यर्थे कान्तभ्य
अन्तः—संक्रमोदक शुद्धौ पुष्कर सत्यरि मण्डलः
प्रतिभ् राज पुरुषो सर्व वेद इति प्यरि वृद्धिः
पद द्वय स्यात्र यथा म्यादानुशानिकं ॥ २१ ॥

इति श्री राज पितामह श्री मच्चौलुक्य भूपाल कुमारपाल देवेन दण्ड केसरि प्रतिहार भोजदेवार्थ विरचिते गणदर्पणे द्वितीयस्याध्यायस्य चतुर्थः पाद समाप्तः शुभ भवतु ॥ ग्रंथाग्रं ॥ ६०० ।

लेखन पुष्पिका—

श्री शाके १३८३ वृष संवत्सरे पौषवदि १३ भोमे श्री देवगिरौ ऊकेश वंशे श्री देवड़ा गोत्रे सा० वीरा पुत्रेण वीनपाले सं० सोना सं० चांपसी पु.(? यु) क्तेन ग्रंथोयं समलेखि । छ । वा० समय भक्त गणीनां । छ ॥

पत्र ३ से २१, प्रति पृष्ठ पंक्ति १३ से १५, अक्षर ४६ से ५२ प्रति पंक्ति मध्य मे रिक्त स्थान

[केशरियानाथजी मंदिर ज्ञानभंडार डाबड़ा नं० १४ पोथी नं० ८४]

———

मीराँ के भक्तों के भजन

(लेo मनोहर शर्मा, एम० ए०, साहित्य रत्न, काव्यतीर्थ)

राजस्थान के इतिहास निर्माण मे नरसिंहों ने जो काम किया है, यहाँ की देवियों ने उससे कम जौहर नहीं दिखाए। देश, धर्म और जाति की रक्षा मे यहाँ के स्त्री और पुरुष दोनों के द्वारा किए हुए आत्म बलिदानों की उज्वल गाथाओ से राजस्थान का इतिहास देदिप्यमान है। राजस्थान के इतिहास की यह एक प्रमुख विशेषता है जिसने इस भूभाग को केवल भारत के लिए ही नहीं बल्कि ससार भर के वीर पुजारियों के लिए सम्मान की वस्तु बना दिया। राजस्थान की नारी ने माता, पत्नि, पुत्री एव बहिन के उज्वल आदर्शों की सृष्टि करके भारत एव आर्य जाति का मस्तक गौरव से ऊँचा किया है। यहाँ की रूयात एव वात इन देवियो के पुनीत चरित्रों का वर्णन करती हुई नहीं अघाती। इनमें कई देवियो ने अतुल शौर्य का प्रदर्शन किया है और अनेकों ने भक्ति की अमृतधारा प्रवाहित की है। इन पिछली श्रेणी की देवियो में मरु-मदाकिनी मीराँ का नाम बडे ही आदर एव गौरव के साथ लिया जाता है।

ससार की परम भक्त रबिया, टेरेसा आदि इनीगिनी देवियो में मीराँ का स्थान है। उसका जीवन और उसकी अमर वाणी दोनों ही उसके लिए इतना ऊँचा स्थान सुरक्षित करने में सहायक हुए हैं। राजस्थानी भाषा को तो मीराँ ने धन्य किया ही, साथ ही यहाँ की जनता को भी उसने पतित पावनी देव नदी का स्रोत प्रदान कर दिया जिसमें मज्जन करके सदैव के लिए राजस्थान का ही नहीं वरिक भारत के दूर दूर प्रदेशो का लोक हृदय भी 'सरस' एव पुनीत बना रहेगा। गुजरात से लेकर बगाल तक मीराँ की अमरवाणी गुजायमान है। जब मीराँ के गीत गाए जाते है तो श्रोतागण मत्रमुग्ध से हो जाते हैं। उनके भाव,

भाषा एवं संगीत इतने मधुर हैं मानों उनमें कोई जादू भर दिया हो। इन सब से ऊपर दिवानी मीराँ का महान व्यक्तित्व है जो भक्तों को चित्रवत कर देता है।

राजस्थानी लोक हृदय पर तो मानों मीराँ ने अधिपत्य ही जमा लिया हो। यहाँ की जनता मीराँ के आराध्यदेव के साथ साथ स्वयं मीराँ की भक्त बन गई। मीराँ का जीवन राजस्थानी जनसाधारण के लिए श्रद्धा एवं भक्ति का विषय बन गया है। उसके विषय में नाना प्रकार की कथाएँ लोक प्रचलित मिलेंगी। इन सब कथाओं में भक्त-हृदय की अटूट श्रद्धा पाई जाती है। इन सब के ऊपर मीराँ के भजन हैं जिनका राजस्थानी जनता में भारी प्रचार है। भजन गाने वाला अपने आपको मीराँ के जीवन में मिला हुआ समझ कर धन्य हो जाता है। यही मीराँ के काव्य की सफलता है जो बहुत ही थोड़े कवियों के सौभाग्य का विषय होती है।

पता नहीं मीरां ने कितने पद रचे हैं। मीरां के नाम से प्रकाशित पदावलियों में लगभग दो सौ या अढ़ाई सौ तक पद संख्या पाई जाती है। यदि मीरां के नाम से राजस्थान में प्रचलित पदों का संग्रह किया जाय तो वह संख्या काफी बड़ी हो सकती है। परन्तु इनकी प्रामाणिकता का कोई ठिकाना नहीं। भक्तों की महिमा बड़ी विचित्र होती है। राजस्थान में "कहत कबीर सुणो भाई साधो" "तुलसीदास भजो भगवाना" "चंद्रसखी भज बाल कृष्ण छबि," "मीरां के प्रभु गिरधर नागर" आदि योग लगाए हुए भजनों की अति महती मात्रा मौजूद है। इन भजनों की भाषा पर विचार किया जाय तो निश्चय ही ये उन प्रचलित नाम वाले कवियों के सिद्ध नहीं हो सकते। यह बात सब से अधिक मीरां के पदों पर लागू पड़ती है। मीरां के पदों में मीराँ के भक्तों की वाणी मिल कर राजस्थान मे गूंज रही है और उसका प्रचार भी राजस्थान में बहुत ज्यादा है। मीराँ के भक्तों की रचनाओं को अलग करके उसके पदो का संकलन करना जरा कठिन सा काम है जिसके लिए भारी अंतर्दृष्टि एवं परिश्रम की आवश्यकता है। इस लेख में मीराँ के भक्तो की रचनाओ या मीराँ के नाम से प्रचलित अन्य कवियों के पदों पर विचार किया जाता है जिससे मीराँ के पदो को संकलित करते समय कुछ ध्यान मे रखने योग्य बातें साहित्य प्रेमियों के सम्मुख आ सकें।

सब से पहिले उन पदों को लीजिये जो मीराँ के भक्तों ने उसके चरणों में विनयावनत होकर पत्रम् पुष्पम् के रूप में चढाए हैं। मीराँ की महिमा में निकले हुए भक्त हृदयों के ये उद्गार भी बडे ही सरस एवं मधुर हैं। ये पद गाए भी खूब जाते हैं।—

(१)

विस इमरत कर डारयो, ए मेडतणी।
साधा की सगत छोड दे मीराँ, आधो राज तिहारो ॥ ए मेडतणी० ॥
साधा की सगत ना तजू राणा, जल ज्याजो राज तिहारो ॥ ए मेडतणी० ॥
काठ की कठी छोड दे मीराँ, पहरो नी मोतीडा रो हारो ॥ ए मेडतणी० ॥
तुलसी की माला ना तजू राणा, जल ज्याजो हार तिहारो ॥ ए मेडतणी० ॥
सरप पिटारो राणा जी भेज्यो, बण गयो नोसर हारो ॥ ए मेडतणी ॥
जहर पियालो राणा जी भेज्यो, चरणाम्रित कर डारयो ॥ ए मेडतणी ॥

(२)

कुण गैल मीराँ निज घर नै चली।
पीहर ढूँढ, सासरो ढूँढ्यो, खोज न खबर मिली ॥
याँ बन देख्यो, वो बन देख्यो, देखी कुंज गली ॥
जाय दुवारका, घर घर ढूँढी, मन्दर सूँ न टली ॥
मीराँ तो बन की कोयलडी, काना कूक भली ॥

(३)

आज तो मेडतणी मीराँ कै राज, महला रँग छायो।
सहस्र किरण सूँ सूरज उगियो, मानो मन्दिर गिरिधर आयो ॥
सुर नर ज्यांका ध्यान धरत हैं, वेद पुराणा गायो ॥
कह बखतावर मीराँ बडभागण, घर बैठी स्याम मनायो ॥

मीराँ की जीवन लीला राजस्थान के लोगों का बड़ा प्रिय विषय है। उसके जीवन की कई घटनाओं पर तो काफी भजन मीराँ के भक्तों ने बना डाले हैं। इन घटनाओं में राणाजी द्वारा मीराँ को दिए गए कष्टों का वर्णन विशेष रूप से है। मीराँ की अटल निष्ठा और राणा का विरोध ही उनका प्रमुख विषय है। माता पिता स्वजनों की परवाह न करके अविनाशी ज्योति के मार्ग पर दृढ रहना ही भक्त

हृदय का ध्येय रहता है। यही मीराँ के जीवन का सार तत्व है। इस प्रकार मीराँ का जीवन अपने आप परम भक्ति का रूप बन गया है। उसका जीवन स्वयं एक कविता के रूप में जनसाधारण के सामने चित्रित हुआ है। इसके ऊपर मीराँ के पदों ने सोने में सुहागे का काम किया। उसका जीवन और उसके पद एक ही चीज है। उसकी एक निष्ठा के बहुत ज्यादा पद राजस्थान में गाए जाते है। इनको गाते समय उसके भक्त झूमने लगते हैं।—

(१)

ओ मेवाड़ा राणा, पुसकर न्हावण को म्हानै चाव छै।
पहलो लाजै कुल सीसोद्यो, दूजो कुल राठौड़।
तीजो लाजै मेड़तो स कोइ, चोथो गढ़ चित्तोड़ ॥ १ ॥
ओ मेवाड़ा राणा, पुसकर न्हावण को म्हानै चाव छै।
राणो मन में कोपियो स कोइ, मारूँ सेल्ह उठाय।
मार्‌याँ पिराछित लागसी स जी, द्यो पीहर पहुंचाय ॥ २ ॥
ओ मेवाड़ा राणा, पुसकर न्हावण को म्हानै चाव छै।
मीराँ गढ़ सै ऊतरी स कोइ, ऊँटां कसियो भार।
डावो छोड्यो मेड़तो स जी, पूगी पुसकर सार ॥ ३ ॥
ओ मेवाड़ा राणा, पुसकर न्हावण को म्हानै चाव छै।
त्यार्‌यो पीहर सासरो स कोइ, त्यार्‌यो गढ़ चित्तोड़।
सीसोद्यो समझ्यो नहीं स जी, धन मीराँ राठौड़ ॥ ४ ॥
ओ मेवाड़ा राणा, पुसकर न्हावण को म्हानै चाव छै।

(२)

कानूड़ा धारी कामणगारी जी।
विरज मे बाँसड़ली बाजी ॥ टेक ॥
मीराँ ऊबी गोखड़ै, छापा तिलक लगाय।
बतलाई बोलै नहीं, राणो गयो रिसाय ॥ १ ॥
रे मै गैली तो बिन साँवरा गिरधारी ॥ विरज० ॥
विस रो प्यालो भेजियो, द्यो मीराँ नै प्याय।
कर चरणाम्रित पी गई तुम जाणो रघुराय ॥ २ ॥

रे मैं गैली तो बिन साँवरा गिरधारी ॥ बिरज० ॥
सरप पिटारो भेजियो, शो मीराँ कै हाथ ।
मीराँ गल में पहरियो, तुम जाणो रघुनाथ ॥ ३ ॥
रे मैं गैली तो बिन साँवरा गिरधारी ॥ बिरज० ॥
पगा बजावै मीराँ घूघरू, हाथा मिरदग ताल ।
ऊँचे सुर में गावती, पद गावै रिछपाल ॥ ४ ॥
रे मैं गैली तो बिन साँवरा गिरधारी ॥ बिरज० ॥
राणो मन में कोपियो, मारूँ खेलड़ उठाय ।
मार्याँ पिराछित लागसी, पीहर शो पहुचाय ॥ ५ ॥
रे मैं गैली तो बिन साँवरा गिरधारी ॥ बिरज० ॥
मीराँ बन की कोयली, राणो बन को ऊँट ।
समझायो समझयो नहीं, लै ज्याति बैंपूट ॥ ६ ॥
रे मैं गैली तो बिन साँवरा गिरधारी ॥ बिरज० ॥

(३)

बापू जी बरजैं ए मीराँबाई आपणा
कोई हाथीं री कुंडी छोड़, हरि कै भजना में ॥ १ ॥
हाथीं री कुंडी ओ बापू म्हारा ना छूटै
कोई छोड्या मोटा गिलाम, हरि कै भजना में ॥ २ ॥
मायड़ बरजै ए मीराँबाई आपणा
कोई भगवाँ पल्लर छोड़, हरि कै भजनां में ॥ ३ ॥
भगवाँ पल्लर ए, मायड़ मोरी ना छूटै
कोई छोड्या दिखणी चीर, हरि कै भजनां में ॥ ४ ॥
बीरोजी बरजै ए मीराँबाई आपणा
कोई सुवणा री माळा छोड़, हरि कै भजनां में ॥ ५ ॥
सुवणाँ की माळा ओ बीरा म्हारा ना छूटै
कोई छोड्या नौसरहार, हरि कै भजनां में ॥ ६ ॥
भाभीजी बरजै ए मीराँबाई आपणा
कोई पाणी ढुळ्या छोड़, हरि कै भजनां में ॥ ७ ॥

बासी टुकड़ा ओ भाभी म्हारा ना छूटै
कोई छोड्या जिनवा रा भात, हरि कै भजनां मैं ॥ ८ ॥
सखियाँ बरजै ए मीराँबाई आपणा
कोई साधां की संगत छोड़, हरि कै भजनां मैं ॥ ६ ॥
साधां की संगत ए सहियों मोरी ना छूटै
कोई छोड्यो राणाजी रो देस, हरि कै भजनां मैं ॥ १० ॥
नदी किनारै ए मीराँबाई घर करयो
कोई जोहड़ पर असराल, हरि कै भजनां मैं ॥ ११ ॥

(४)

म्हारै सिर पर सालगराम, राणाजी म्हारो काँई करै ।
मीराँ नै राणो कही रे, सुण मीराँ म्हारी बात ।
साधां की संगत छोड़ दे मीराँ, सखियाँ सब सकुचात ॥ १ ॥ म्हारै०
मीराँ सुण कर यूँ कही रे, सुण राणा म्हारी बात ।
साधू तो भाई बाप हमारा, सखिया क्यू घबरात ॥ २ ॥ म्हारै०
सरप पिटारो भेजियो रे, द्यो मीराँ नै हाथ ।
मीरां गल विच पहरियो रे, बण गयो नोसरहार ॥ ३ ॥ म्हारै०
जहर पियालो भेजियो रे, द्यो मीरां कै हाथ ।
कर चरणाम्रित पी गई रे, तुम जाणो रघुनाथ ॥ ४ ॥ म्हारै०
आधै जोहड़ कीच है रे, आधै जोहड़ होज ।
आधै मीरां एकली रे, आधै राणाजी री फोज ॥ ५ ॥ म्हारै०
काम क्रोध नै छोड़ कर रे, लियो सील हथियार ।
जीती मीरां एकली रे, हारी राणाजी री धाड़ ॥ ६ ॥ म्हारै०
कांचगिरी का चूँतरा रे, बैठ्या साध पचास ।
जिण मैं मीरां दमक री रे, लख तारा मैं परकास ॥ ७ ॥ म्हारै०
टांडो जद वा लादियो रे, वेगो दीन्यो जाण ।
कुल की तारण इस्तरी रे, चाली है पुसकर न्हाण ॥ ८ ॥ म्हारै०

(५)

म्हारी लागी लगन मत तोड़ रे

राणा थारै पैंयाँ पड़ूँ ॥ टेक ॥
राणो बोल कह्यो मीराँ नैं, घर घर तूँ मत डोल ।
कुल कै दाग लगै छै मीराँ, मत इमरत में विस घोल ॥ १ ॥
रे राणा थारै पैंयाँ पड़ूँ ॥ म्हारी० ॥

बार बार म्हानै के समझावो, म्हारो एक जवाब ।
मन लाग्यो हरि नाम सैं, दिन दिन दूणो भाग ॥ २ ॥
रे राणा थारै पैंयाँ पड़ूँ ॥ म्हारी० ॥

राजा बरजै राणी बरजै, बरजै सब परवार ।
कँवर पाटवी थानै बरजै, धिक् धिक् कहे ससार ॥ ३ ॥
रे राणा थारै पैंयाँ पड़ूँ ॥ म्हारी० ॥

सुभ घडी सुभ दिन लागियो, कृष्ण नाम को तार ।
तार लग्यो मैं तो नहीं तोडूँ, चाहे धिक्कारो ससार ॥ ४ ॥
रे राणा थारै पैंया पड़ूँ ॥ म्हारी० ॥
काठ की माला छोड द्यो मीराँ, पहरो नी मोतीडाँ रो हार ।
राज सम्पदा भोग ल्यो ए मीराँ, सुख पावो अपरम्पार ॥ ५ ॥
रे राणा थारै पैंयाँ पड़ूँ ॥ म्हारी० ॥
तुलसी की माला मैं नहीं छोडूँ जल ज्यावो मोतीडा रो हार ।
राज सम्पदा थे थारी भोगो, ना म्हानै दरकार ॥ ६ ॥
रे राणा थारै पैंयाँ पड़ूँ ॥ म्हारी० ॥
जलम जलम का सासा मेट्या, म्हारो सिरजन हार ।
क्रिस्न पिया के चरण कँवल पर, मीराँबाई बलिहार ॥ ७ ॥
रे राणा थारै पैंयाँ पड़ूँ ॥ म्हारी० ॥

इन पदो मे साँप भेजने और विष पान करवाने का प्रसग प्राय सब में आया है। इसके अलावा इन पदों के कई चरण भी एक दूसरे में उलझे हुए मिलते हैं। लोक जीवन मे रमी हुई कविता के साथ प्राय सब जगह ऐसा ही होता है। उसमें पाठभेदों की भी भरमार रहती है। जिसे जैसा प्रयोग रुचिकर होता है, वह उसी तरह से उसे गाता है। इस प्रकार अनेकों रूप जनसाधारण में चल पडते हैं। इसे भी भक्तों के भजनों की एक विशेषता समझिए। यह भी उनकी महिमा ही है।

आधुनिक लोक गीतों की राग पर भी कई भजन मीरां के सम्बन्ध में बन गए हैं। यह भी एक परिपाटी सी है। लोक गीतों की संगीत माधुरी इस चीज की मूल प्रेरक रहती है। कई लोक गीत ऐसे होते हैं जिनकी स्वर लहरी जनसाधारण के हृदय पर अपना जादू किए रहती है। उन्हीं गीतों की राग पर भक्ति के पद भी बन जाते हैं। राजस्थान में यह चीज सब से ज्यादा हुई है। प्रायः सभी प्रमुख लोक गीतों की राग पर भक्ति के भजन गाए जाते हैं। मीरां के सम्बन्ध में भी ऐसा हुआ है। कई पदों में मीरां की जीवनधारा समाई हुई है, तो कई में मीरां के नाम का योग लगा हुआ है-मीरां के प्रभु गिरधर नागर। उदाहरण देखिए—

सूत्यो राणो सुखभर नींद
कोई सूते राणा जी नैं सुपनो आइयो जी
म्हारा राज।
उठो ओ ओठीड़ा ऊँटां करो पिलाण
रे ओठीड़ा कोई, मीरां मेड़तणी भगवां ले लिया जी
म्हारा राज।
सुपनो राणो जी भाल जंजाल
ओ राणो जी कोई, सुपनो तो पड़ियो झूठे मारगां जी
म्हारा राज।
चढियो राणो जी ढलती सी रात
ओ राणो जी कोई, सुरज उगायो मेड़तै देस में जी
म्हारा राज।
बूझयो राणोजी गायाँ रो गुवाल
हो राणो जी कोई, घर तो बतादे मेड़तणी रै बाप को जी
म्हारा राज।
सूरज स्यामीं मेड़तियाँ री पोल
हो राणोजी कोई, केल तो झवरकै ऊभी बारणैजी
म्हारा राज।
आई आई साधाँ री जमात
हो राणोजी कोई, बिच मैं तौ आवै मीराँबाई झूमतीजी
म्हारा राज।

गावै मीराँ बाई मदन गोपाल
हो राणोजी कोई, पगा तो बनावै मीराँबाई घूघरू जी
म्हारा राज ।
आई आई राणा जी नै रीस
हो राणो जी कोई, काढ कटारी मीराँ पर कोपियो जी
म्हारा राज ।
हो गई मीराँ एक की हजार
हो राणोजी कोई, कुण सी नै मारै कुणसी नै छोड दे जी
म्हारा राज ।
मीराँ थारो बिड़द बताय
हो मेड़तणी कोई, बिड़द बतायाँ थानै पूजस्याँ जी
म्हारा राज ।
मोडो लखियो असल गुँवार
हो राणो जी कोई, पहलाँ लखतो तो सुरगाँ चालतो जी
म्हारा राज ।
मीराँ गावै नैकु ठाँ बासो होय
हो राणो जी कोई, जलम मरण सू छूट ज्यासी जी
म्हारा राज ।

यह भजन "हरीजी की लीला" "धूजी की लीला" आदि गीतों के समान "मीरा की लीला" है। इसका नाम भी आमल, जेतल, मोमल आदि नारी नामात्मक लोक गीतों की तरह "मीरा" है। कलाली, किरत्या, पाबूजी आदि गीतो के अनुसार इसकी ढाल (राग) है। यह ढाल राजस्थान की एक विशेष प्रिय राग है । यह ऊँचे स्वर से गाई जाती है तो दूर दूर के वातावरण को अमृतमय बना देती है।

इसी तरह का दूसरा उदाहरण और देखिए । इसमें मीरा का जीवन नहीं है परन्तु किसी मीरा के भक्त ने लोक गीत को मीरा के रंग में रंगने की चेष्टा की है—

बोल बोल म्हारा नँदजी का लाल।
बोल्याँ थानै सरसी ओ

मोहन मुखड़ै बोल ॥
बोल बोल म्हारा जलम सुधारण
बोल्याँ थानै सरसी ओ
साँवरा मुखड़ै बोल ॥
मोर मुकट पीताम्बर प्रभुजी
मुख पर मुरली सोवै रे।
बजा बांसरी तीन लोक में
सब को मन मोवै रे ॥ १ ॥ साँवरा०
आप तो जाय दुवारका छाए
हम को जोग पठायो रे।
आप न आयो पतियाँ न भेजी
कुण बिलमायो रे ॥ २ ॥ साँवरा०
सोला सहस तो गोप्या त्यागी
कुब्जा सूँ नेह लगायो रे।
मीराँ कै प्रभु गिरधर नागर
हर नहीं आयो रे ॥ ३ ॥ साँवरा०

यह भजन भी पनजी लोकगीत के पीछे चलता है। उसके बोल इस प्रकार है–बोल बोल म्हारै हिवड़ै रा जिवड़ा, बोल्याँ थानै सरसी ओ, पनजी मुखड़ै बोल। इन दोनो की ढाल एवं गत समान है। श्रृंगार रस के बोल बदल कर भक्ति के बना दिए गए है।

मीराँ के नाम से प्रचलित निम्न गीत भी ध्यान देने लायक है। यह भी लोक गीत के पीछे पीछे चलता है।—

आज अनाड़ी ले गयो साड़ी,
बैठ कदम की डारी ए माय ॥
म्हारै गैल पड्यो गिरधारी, ए माय, आज अनाड़ी०
मैं जल जमना भरण गई थी, आ गयो क्रिस्न मुरारी, ए माय।
ले गयो साड़ी अनाड़ी हमारी, जल बिच खड़ी उघाड़ी, ए माय।
सखी सामनी मोरी हंसत है, हंस हंस दे दे तारी, ए माय।
सास बुरी म्हारी नणद हठीली, लड़ लड़ दे म्हानै गाली, ए माय।

मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कँवल पर वारी, ए माय।

इस भजन में मीराँ के नाम का योग लगा हुआ है परन्तु है यह भक्त हृदय की लूहर। राजस्थान मे लूहर का बडा प्रचार है। श्रृंगार की लूहर के पीछे भक्ति की लहर भी तैयार हो गई। शृँगार रस की लूहर की चाल और उसके बोल देखिए—

म्हारी लूहर है नखराली ए माय
लूहर रमवा म्हे जास्याँ॥
म्हानै राठोड़ा री बोली प्यारी लागै, ए माय
लूहर रमवा म्हे जास्याँ।
म्हानै राठोडाँ रै घर परणाज्यो, ए माय
लूहर रमवा म्हे जास्याँ।

लूहर का एक और उदाहरण देखिए—

यो बनडो तो बडो रसीलो
दोय दोय पेचा बाँधै, ए माय।
दोय दोय पेचा बाँधै
यो किलँगी अधक सुँवारै, ए माय।

मीराँ के नाम से प्रचलित भजनों में राजस्थानी कवि चन्द्रसखी के पद भी काफी बड़ी सख्या में घुलमिल गए हैं। दोनों के भाव, भाषा, एव विचार कई अशों में समान से हैं। दोनों के पदों में भक्तिरस का अमृत उमड़ा पड़ता है। दोनों ही राजस्थान में काफी लोकप्रिय है। परन्तु इनका पार्थक्य पहिचानना ज्यादा कठिन नहीं है। जनसाधारण में गाए जाते समय किसी भी भजन के किसी भी कवि के नाम का योग लगा दिया जावे परन्तु छानबीन की बुद्धि से उन पर विचार करने पर दोनों कवि अलग अलग हो जाते हैं। उनमे भाषा एव भाव दोनों का विभेद मालूम पड़ने लगता है। मीराँ की सत्ता अन्तर्लोक में ज्यादा है और बहिर्जगत में कम। इसके विपरीत स्थिति चन्द्रसखी की है। उसके भजन गाए भी ज्यादा जाते हैं। उसकी भाषा भी बोलचाल से एकाग सी मालूम होती है। परन्तु भक्तों की भावना बड़ी ऊँची होती है। उनको साहित्यिक छानबीन से कोई मतलब नहीं। उन्होंने चन्द्रसखी के भजनों को भी मीराँ के चरणों में चढ़ा दिया है। यहाँ कुछ उदाहरण दिए जाते हैं—

(१)

कोई कहियो रे प्रभु आवण की
आवण की मन भावन की ॥ कोई० ॥
आप न आवै पतियाँ न भेजें,
वाण पड़ी ललचावण की ॥ कोई० ॥
ये दोय नैण कह्यो नहीं मानै,
नदियाँ बहे जैसे साँवण की ॥ कोई० ॥
कहा करूँ कछु बस नहीं मोरो,
पाँख नहीं उड़ ज्यावण की ॥ कोई० ॥
मीराँ कहे प्रभु कब रे मिलोगे,
चेरी भइ हूँ तेरे दावण की ॥ कोई० ॥

(२)

आवत मोरी गलियन में गिरधारी
मैं तो छिप गई लाज की मारी ॥ टेक ॥
कसूमल पाग केसरिया जामो, ऊपर फूल हजारी ॥
मोर मुकट पर छत्र विराजै, कुंडल की छवि न्यारी ॥
केसरी चीर दरियाई लँहगो, ऊपर अँगिया भारी ॥
गल मोतियन की माल विराजै, चरण कमल बलिहारी ॥
आवत देखी किसन मुरारी, छिप गई राधा प्यारी ॥
ऊभी राधा अरज करत है, सुणज्यो क्रिस्न मुरारी ॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर,-चरण कमल पर वारी ॥

(३)

छाँडो लँगर मोरी बाँह गहो ना ॥ टेक ॥
मैं तो नार पराए घर की,
मोरे भरोसे गोपाल रहो ना ॥
जो तुम मोरी बहियाँ गहत हो,
नयन मिलाय मोरे प्राण हरो ना ॥
वृन्दावन की कुंज गलिन में,

रीत छोड अनरीत करो ना ॥
जाय पुकारूँ कसराय सों,
तुमरी वात मैं एक सहों ना ॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर,
चरण कमल चित टारे टरो ना ॥

ऊपर जो तीन पद दिए गए हैं, वे अधिकतर "चन्द्रसखी भज बालकृष्ण छवि" के साथ समाप्त किए जाते हैं। इनकी भाषा भी चन्द्रसखी के पदों की ही है। यही बात इनके भाव पर भी लागू पड़ती है। परन्तु फिर भी मीराँ के भक्त इनको मीराँ के नाम से गाया करते हैं।

इनके अतिरिक्त ऐसे पद भी राजस्थान में काफी प्रचलित हैं जिनको मीराँ के पदों के आधार पर बनाकर उसके भक्तों ने लोक प्रचलित कर दिया है। इन पदों के भी मीराँ के नाम का ही योग लगाया गया है। मीराँ का एक पद है— "तुम सुनो दयाल म्हारी अरजी।" इस पद के भाव में बह कर मीराँ के भक्तों ने पूरी अर्जी तैयार करली। देखिए—

राम म्हारी अरजी मानो जी
स्याम म्हारी अरजी मानो जी ॥
हा जी म्हारी सरण आयाँ की राखो लाज ॥ राम० ॥
सिद्ध सिरी पहिले लिखूँ, सिद्ध होण के काज
के सिध होय हरि भजन में स जी
सज कै सिध सत समाज ॥ राम म्हारी० ॥
सकल सुभ सिरी ऊपमा, लायक हो महाराज
अरजी लिखूँ उछाव सैं स जी
सो मालम होय आज ॥ राम म्हारी० ॥
अधम उधारण आप हो, सकल सुधारण काज
म्हारा औगण मत गहो स जी
वहो विड्द की लाज ॥ राम म्हारी० ॥
मैं दुरबल हूँ आतमा, ये सबला हो राम
जमधक्का लागै नहीं स जी

करयो ऐसा काम ॥ राम म्हारी० ॥
मैं गरजी अरजी दई, वड़ी गरज है मोय
अरजी पर दसकत करो स जी
जो कुछ मरजी होय ॥ राम म्हारी० ॥
आरत होय अरजी करूँ, दोऊ कर अत्र जोड़
मीरॉवाई की वीनती स जी
आप निभावो ओड़ ॥ राम म्हारी० ॥

इसी तरह मीरॉ का एक पद है– "चालां मन गंगा जमना तीर"। इसी पद को देख कर मीरॉ के भक्तों ने द्वारका के बारे में भी भजन जोड़ लिया है। वह भजन इस प्रकार है–

कब निरखूँ नजर भर द्वारका।
हियो म्हारो हुलसै, चित म्हारो तरसै,
जाण न दे परवार का ॥ कब निरखूँ० ॥
जद म्हारा पॉव पड़ै उण मारग,
पाप कटै संसार का ॥ कब निरखूँ० ॥
पुरी मे जा परकम्मा देस्यूँ,
दरसण कर रणछोड़ का ॥ कब निरखूँ ॥
मीरॉ के प्रभु गिरधर नागर,
जग सुख तो दिन च्यार का ॥ कब निरखूँ ॥

मीरॉ के कई पदो की छाया पर भी नए पद बन गए हैं। उनमे मीरॉ के पदों की शब्दावली काम मे ली गई है। भाव अथवा विषय से भी कुछ परिवर्तन हुआ है। तुक भी काम मे ली गई है। इस दिशा में भी मीराँ के भक्तों ने कम काम नहीं किया है। मीराँ का निम्न भजन बड़ा प्रसिद्ध है। इसमे व्रज भूमि के प्रति भक्त हृदय की लगन का बड़े ही मार्मिक ढंग से निदर्शन किया गया है। भक्त लोग इसे झूम झूम कर गाते है—

आली म्हाने लागै वृन्दावन नीको ॥ टेक ॥
घर घर तुलसी ठाकुर पूजा, दरसण गोविन्द जी को।
निरमल नीर वहत जमना में, भोजन दूध दही को।

रतन सिंघासण आप विराजै, मुकट धर्यो तुलसी को ।
कुंजन कुंजन फिरत राधिका, सबद सुणत मुरली को ।
मीरॉं के प्रभु गिरधर नागर, भजन बिना नर फीको ।

इसी भजन के सहारे बनाया हुआ मीरॉं के भक्तों का भजन देखिए। यह भजन भी बड़ा लोक प्रिय है। इन दोनों के शब्दों को भी मिलाइए। तुक पर विशेष ध्यान दिया गया है—

गिरधर लागै राज नीको,
हाँ जी यो तो कान्ह कँवर नँदजी को ॥
कड़वो तेल कान्ह नहीं खावे, कान्ह खवैयो घी को।
माल विराणो मीठो लागै, घर को लागै फीको।
मोर मुकट सिर छत्र विराजै; वीरो हलधरजी को।
जमना कै नीरा (तीरा) धेन चरावै, मागै डाण मही को।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, हरि बिन सब रस फीको।

इसी तरह मीरॉं का दूसरा भजन देखिए। इस पद के सहारे भी नया पद तैयार हो गया है। वही तुकें नए पद में प्रयुक्त की गई हैं। तुकों में अपनी निजी विशेषताएँ भी होती हैं। तुकों के प्रति आकर्षण भी कुछ ज्यादा रहता है। उन पर ध्यान भी ज्यादा जाता है। फलस्वरूप वे भक्त हृदय पर स्थायी छाप डाल देती है। मीरॉं का पद इस प्रकार है—

राणा जी म्हानै या बदनामी लागै मीठी ॥ टेक ॥
कोई निन्दो कोई बिन्दो मैं तो
चालूँगी चाल अनूठी ।
साकड़ी गली में सतगुरु मिलिया
क्यूँ कर फिरूँ अपूठी ।
सतगुरजी सूँ बात ज करताँ
दुरजन लोगाँ नै दीठी ।
मीरॉं के प्रभु गिरधर नागर
दुरजन जलो जा अँगीठी ।

इसी भजन के आधार पर बनाया हुआ मीरॉं के भक्तों का भजन देखिए—

म्हानै लागै ओ साँवरा, थारी वाताँ मीठी।
साँकड़ी गली में मोहन मिलिया
किस विध फिरूँ अपूठी।
थे तो साँवरिया म्हारै सिरका सायब
म्हे थारै हाथ की अँगूठी।
सास बुरी मेरी नणद हठीली
जल वल हो गई अँगीठी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर
चढ़ गयो रंग मजीठी।

राजस्थान, व्रज एवं गुजरात को मीराँ का जीवन क्षेत्र माना जाता है। फलस्वरूप इन प्रदेशों की भाषा में मीराँ के पदों का पाया जाना तो समीचीन है परन्तु जब मीराँ के काव्य का प्रेमी पंजाबी एवं पूरबी में उसके नाम का भजन देखता या सुनता है तो उसे आश्चर्य हुए बिना नहीं रहता। ऐसे पद भी मीराँ के भक्तों की रचनाएँ ही मालूम देते हैं। पंजाबी भजन का नमूना देखिए—

हो काँनाँ किन गूँथी जुल्फाँ कारियाँ।
सुघर कला प्रवीन हाथन सूँ
जसुमतिजू ने सँवारियाँ।
जो तुम आओ मेरी वाखरियाँ
जरि राखूँ चंदन किवारियाँ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर
इन जुल्फन पर वारियाँ।

इसके साथ ही दूसरा नमूना पूरबी का भी पेश किया जाता है। इस भजन के अंत में भी मीराँ के नाम का ही भोग लगाया गया है। उदाहरण—

मेरो मन वसिगो गिरधर लाल सों ॥ टेक ॥
मोर मुकुट पिताम्बर हो गल बैजंती माल।
गउवन के संग डोलत हो जसुमति को लाल ॥
कालिंदी के तीर हो कान्हा गउवाँ चराय।
सीतल कदम की छहियाँ हो मुरली वजाय ॥
जसुमति के द्ववरवा हो ग्वालिन सब जाय।

बरजहु आपन दुलरूवा हम सों अरुझाय ॥
वृन्दावन क्रीडा करै गोपीन के साथ ।
सुर नर मुनि मोहे हो ठाकुर जदुनाथ ॥
इन्द्र कोप वन वरखो मूसल जलधार ।
बूडत ब्रज को राखेऊ मोरे प्रान अधार ॥
मीराँ के प्रभु गिरधर हो सुनिए चित लाय ।
तुम्हरे दरस की भूखी हो मोहि कछु न सोहाय ॥

राजस्थान में ऐसे भी अनेक ज्ञात कवि हैं जिन्होंने कई पद मीराँ के पदों के आधार पर रचे हैं। ऐसे पदों की भाषा तक टकराती है। इन पदो की रचना भी मीरा की भक्ति के क्षणों मे ही हुई है। मीरा के पदो की स्वर लहरी ने उसके भक्तकवियों के हृदय मे भावधारा बहा दी। वे मीराँ के पद गाते गाते मन्त्र मुग्ध हो गए और उन्होंने नई रचना कर डाली। ऐसे भावावेश में उनको इस चीज का ध्यान कैसे रह सकता है कि वे मीरा के पद को ही नया रूप दे रहे हैं। ये भक्त कवि काफी लोकप्रिय हैं। इनमें चन्द्रसखी, रसिकविहारी, ब्रजनिधि, एव बख्तावर प्रमुख हैं। इन कवियो ने राजस्थान में भक्ति की धारा को काफी वेग दिया है। आगे तुलनात्मक उदाहरण दिए जाते हैं—

सावण दे रह्या जोरा रे
घर आया जी स्याम मोरा रे ॥ टेक ॥
उमड घुमड चहु दिस से आया
गरजत है घन घोरा रे।
दादुर मोर पपीया बोलै
कोयल कर रही सोरा रे।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर
जो वारूँ सो ही थोरा रे। मीराँ

रुत आई बोलै मोरे रे
म्हारा स्याम बिना जिया बोरा रे ॥ टेक ॥
उतर दिसा से आई बदरिया
चमकत है घनघोरा रे।
रिमझिम रिमझिम मेहला बरसै

आगण मच रया सोरा रे ।
दादुर मोर पपीहा बोलत
कोयल करत किलोला रे ।
राधाजी भीजै रंगमहल में
ख्याल की कोर किनोरा रे ।
चंद्रसखी भज बाल कृष्ण छवि
स्याम मिल्याँ जिया सोरा रे ।—चंद्रसखी

रमैया विन नींद न आवैं;
नींद न आवै विरह सतावैं, प्रेम की आँच ढुलावैं ॥
विन पिया जोत मँदिर अँधियारो दीपक दाय न आवैं ।
पिय विन मेरी सेज अलूणी, जागत रैण विहावैं ॥
पिया कव रे घर आवैं ॥ १ ॥

दादुर मोर पपीहा बोलैं, कोयल सवद सुणावै ।
घुमट घटा ऊलर होइ आई, दामिन दमक डरावै ॥
नैर भर लावै ॥ २ ॥

कहा करूँ कित जाऊँ मोरी सजनी, वेदन कूण वुलावैं ।
विरह नागण मोरी काया डसी है, लहर लहर जिय जावैं ॥
जड़ी घस लावै ॥ ३ ॥

को है सखी सहेली सजनी, पिया कूँ आन मिलावे ।
मीराँ कूँ प्रभु कव रे मिलोगे, मन मोहन मोहि भावे ॥
कवै हँस कर वतलावै ॥ ४ ॥ —मीराँ

उड़जा पपैया म्हारो जीव दुख पावै ।
जिनका पिया परदेस वसत है
वाँको प्यारी कछु ना सुहावै ।
दादुर मोर पपैया वोले
कोयल वैरण सवद सुणावै ।
पीऊ पीऊ वैरी करत पपैया
सूती सेजाँ मैं मोय आन जगावे ।
कह वख्तावर सुनो व्रजनन्द जी

ऐसा हो कोई स्याम मिलावै । —बख्तावर

स्याम मोरी बाँहड़ली जी गहो ॥ टेक ॥
या भवसागर मँझधार में, थे ही निभावण हो ।
म्हाँ में औगण घणा छे हो प्रभुजी, थे ही सहो तो सहो ।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, लाज विरद की वहो । —मीराँ

थाकी कानी थे जावो जी ।
औगण म्हारा मति हेरो ।
अधम उधारण बिड़द कहे छे
ज्योंने जीमें नौका पेरो ॥
अधमी छा म्हे नहीं जी ठिकाणू
था बिन कुण पर करां परेरो ।
ब्रजनिधि म्हाँने थाँ जा हे कहै
भीड़ करोनें या कुण लेसो । —ब्रजनिधि

माई री मैं तो लियो है गोविन्दो मोल ॥ टेक ॥
कोई कहे छाने कोई कहे चोड़े
लियो री बजता ढोल ।
कोई कहे मुँहगो कोई कहे सुँहगो
लियो री तराजू तोल ।
कोई कहे कालो कोई कहे गोरो
लियो री अमोलक मोल ।
या ही कूँ सब लोग जाणत है
लियो री आँख्याँ खोल ।
मीराँ कूँ प्रभु दरसण दज्यो
पूरब जनम को कोल । —मीराँ

मैं अपनो मन भावन लीनो
मन दे मोल लियो री सजनी
इन लोगन को कहा कीनो ।
रतन अमोलक नन्द दुलारो
नवल लाल रँग भीनो ।

कहा भयो सब के मुख मोरे
मैं पायो पीव प्रवीनो।
रसिक विहारी प्यारो प्रीतम
सिर विधना लिख दीनो।–रसिक विहारी

इस प्रकार हम देखते हैं कि मीराँ के पदों के अतिरिक्त उसके भक्तों के पद कितने ज्यादा रचे गए हैं। मीराँ के पदों के समान ही मीराँ के भक्तों के भजनों को लोक प्रियता भी काफी मिली। ये दोनों धाराएँ एक में मिलकर भक्तमण्डली के हृदय को अमृत से सींच रही हैं। यह सब मीराँ का ही प्रभाव है। यह लोक-प्रियता भी मीराँ की ही है। यह प्रवाह अभी समाप्त नहीं हो गया है। समय समय पर मीराँ के भक्तो के भजन तैयार होते ही रहते हैं। जिस तरह मीराँ के भक्त उसके नाम पर भजन तैयार करते हैं उसी तरह उनका प्रचार करने वालों की संख्या भी कम नहीं है। भक्त को इस बात से क्या मतलब कि यह पद मीरां का है या मीरां के भक्त का। उसे तो अपने भक्ति के क्षणों को पद गाकर सरस एवं मधुर बनाना है। यदि पद नया होगा तो और भी उत्तम रहेगा। ऐसी स्थिति में तुलसी-दासजी की निम्न उक्ति एक-दिवानी मीरां पर कितने सुन्दर रूप में चरितार्थ होती है—

तेरे विसाहे विसाहत औरनि
और विसाहि के बेचन हारे।

———

बाणभट्ट के 'चण्डी शतक' का टीकाकार–धनेश्वर

[श्री नाथूलाल व्यास, साहित्य-संस्थान, उदयपुर]

प्रसिद्ध महाकवि बाणभट्ट संस्कृत भाषा का उत्कृष्ट विद्वान् था। वह कन्नौज के वैसवंशी प्रतापी महाराज हर्ष का समकालीन और उसकी सभा का अमूल्य रत्न था। हर्ष स्वयं विद्वान् एवं विद्वानों का आश्रयदाता होने से बाणभट्ट ने उसकी कीर्ति चिरजीवित रखने के लिए 'हर्ष चरित' की रचना की थी, जिसका बडा महत्व है। महाराज हर्ष का राज्यकाल ई०स०६०७–४८ (वि०स०६६४–७०५) निश्चित है, अतएव बाणभट्ट का भी उपरोक्त समय मानने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती। ई०स०६०७ (वि०स०६६४) में हर्ष ने अपना एक सम्वत् भी चलाया था, जो 'हर्ष सम्वत्' कहलाता रहा। इस सम्वत् का लगभग तीन सौ वर्ष तक प्रचार रहा और फिर वह बन्द हो गया।

बाणभट्ट की रचनाओं में एक 'चण्डी शतक' भी है, जिसके लिए कहा जाता है कि वह (बाण) कुष्ट रोग से पीडित हो गया था। इसलिए उसने देवी को प्रसन्न करने के निमित्त उक्त शतक की रचना की, फलत उसका रोग मिट गया। समय समय पर सभव है कि विद्वानों द्वारा 'चण्डी शतक' पर टीकाएँ भी हुई हो, किन्तु उनमें धनेश्वर रचित टीका भी है। प्राचीनता की दृष्टि से वह उपयोगी है, अतएव आधुनिक विद्वानों ने धनेश्वर का समय स्थिर करने की सुरुचि दिखलाई है, परन्तु धनेश्वर कृत उपरोक्त 'चण्डी शतक' की टीका का ठीक-ठीक समय निश्चित नहीं हो सका है। इस कारण से इस लेख में यह विचार करना आवश्यक है कि यथार्थ में धनेश्वर कृत 'चण्डीशतक' की टीका कब हुई? वह किस जगह का निवासी था और उसका वंश विवरण कहाँ-कहाँ मिलता है?

श्रीमद्दशपु[पु]र ज्ञाति भट्ट सोमेश्वरात्मज
धनेश्वर कृतिवरष्टीका चण्डीशतेऽव्यधात् ॥ ३ ॥
शाके करेन्दुरामेन्दु मितेत्वानन्दवत्सरे ।
वैशाखशुक्लभूताया गुरौ चित्रा ह ऋक्षके ॥ ४ ॥
समाप्तिगमद्व्याख्याचण्डीशतविबोधिनी ।
पचशशतयुक्ता सप्तालपारलोक सख्यया ॥ ५ ॥

उपर्युक्त धनेश्वर रचित 'चण्डीशतक' की टीका के अवतरण से स्पष्ट होता है कि वह (धनेश्वर) 'दशपुर ज्ञाति' के 'द्विज' (ब्राह्मण) 'सोमनाथ' अथवा 'सोमेश्वर' का पुत्र था और उसने शक सम्वत १३१७ वैशाख शुक्ला १४ गुरुवार, चित्रा नक्षत्र एव 'आनन्द' नामक सवत्सर मे उक्त टीका को समाप्त किया।

गौडे महाशय ने 'दी पूना ओरियण्टलिस्ट (जर्नल) मे प्रकाशित अपने निबन्ध Date of Dhaneshvar's commentary on Bana's Chadisataka (चडी-शतक) A.D 1309 (Sake 1231) and Aufrechts mistaken idently of this author with his name Sake The Author of a commentary on the Anargh Raghva (ई० स० १६४१) [2] मे दिये हुए 'चण्डी शतक' की टीका की प्रशस्ति के श्लोक सख्या ४ का अर्थ शाके १३१७ (ई० स० १३६०) ही किया है, [3] परन्तु इस ही श्लोक के द्वितीयपाद में उल्लिखित वाक्य "मितेत्वानन्दवत्सरे' होने से उस वर्ष में 'आनन्द' नामक सम्वत्सर था, या नहीं, इस निर्णय के चक्कर में पड गए। उनका यह भ्रम किसी अश मे ठीक भी है, क्योंकि उत्तर भारतीय गणित की शैली से उस वर्ष 'आनन्द' नामक ४८ वा बार्हस्पत्य सम्वत्सर न होकर 'धातृ (धाता)' नामक १० वा सम्वत्सर था [4]।

इस जटिलता को सुलझाने के लिए उन्होने 'चण्डीशतक' की टीका को

---

१ वही, जि०६, पृ० १०६।

२ दी पूना ओरियण्टलिस्ट, जि०६, पृ०१०८–१४ (ई०स०१६४१)

३ वही, जि०६, पृ०११०।

४ वही, जि०६, पृ०११०। एल०डी० स्वामी कन्नु पिल्लाई, एन इण्डियन एफेमेरिज १ जि०४, पृ०३८३।

प्रशस्ति के चतुर्थ श्लोक के वाक्य 'शाके करेन्दुरामेन्दु' पाठ में से 'करेन्दुरामेन्दु' को दो शब्दों में विभक्त कर 'करेन्दु=१२' और 'रामेन्दु=३१' मान शाके १२३१ (ई० स० १३०६) में उक्त टीका का रचना काल स्थिर किया, कारण कि उस वर्ष उत्तर भारतीय गणना शैली से 'आनन्द' नामक ४८ वां बार्हस्पत्य सम्वत्सर था [१]।

श्री गौड़े का यह निर्णय कि 'अनर्घराघव' का टीकाकार धनेश्वर और 'चण्डीशतक' की टीका का कर्त्ता धनेश्वर भिन्न-भिन्न व्यक्ति हैं,[२] ठीक है; किन्तु उन्होंने चण्डीशतक' के टीकाकार धनेश्वर का समय ई० स० १३०६ (शाके १२३१) निर्धारित किया, जिससे कोई भी विद्वान सहमत नहीं होगा; क्योंकि संस्कृत भाषा के वर्णित ग्रंथों में अंक वाचक शब्दों का अर्थ 'अंकानांवामतोगतिः' के नियम से करने का विधान है, जो सर्वमान्य है। विपरीत इसके श्री गौड़े ने 'शाके करेन्दुरामेन्दु' का अर्थ करने में प्रथम तो 'करेन्दुरामेन्दु' को दो शब्दों में विभक्त किया और फिर 'करेन्दु' का अर्थ 'अंकानांवामतोगतिः' मर्यादा का पालन कर १२, तथा 'रामेन्दु' का सीधा अर्थ 'राम=३,' 'इन्दु=१,' दोनों को मिलाकर ३१ किया। यहाँ उपरोक्त नियम की स्पष्टतः अवहेलना की गई, जो किसी भी अवस्था में उचित नहीं कहा जा सकता। इस खींच-तान का कारण यह है कि 'शाके करेन्दुरामेन्दु मिते' के आगे 'त्वानन्दवत्सरे' वाक्य है, जिसकी सङ्गति बिठलाने के लिए इस क्रम को अपनाये बिना काम नहीं चल सकता था।

निर्णयात्मक वस्तु को यथार्थ सिद्ध करने के लिए विचारकों को उसके प्रत्येक पहलु पर ध्यान देना आवश्यक होता है; परन्तु गौड़े महाशय के उपरोक्त अंग्रेजी निबन्ध में इन बातों का अभाव है। उन्होंने केवल ई०स०१३०६ ता०१७ अथवा २४ अप्रेल, गुरुवार (शाके १२३१) को 'चण्डीशतक' पर 'धनेश्वर' कृत टीका का रचना काल मान कर अपने विषय को समाप्त कर दिया है[३]। उपर्युक्त 'चण्डी

---

१ दी पूना ओरियंटलिस्ट (जर्नल), जि०६, पृ०११० । पिलाई; एन इंडि०एफे; जि० ४ पृ०२२० ।

२ दी पूना ओरियंटलिस्ट (जर्नल), जि०६, पृ०१०८-१४ ।

३. दी पूना ओरियंटलिस्ट (जर्नल जि० ६, पृ० ११० ।

शतक' की टीका के अन्त में दी हुई प्रशस्ति में धनेश्वर स्पष्टत अपने पिता का नाम 'सोमनाथ' (श्लोक सख्या १), अथवा 'सोमेश्वर' (श्लोक स० ३), 'भट्ट' उपाधि और 'दशपुर ज्ञाति' (श्लोक स० ३) होना उतलाता है । इन पर गौडे महाशय का निबन्ध कुछ भी प्रकाश नहीं डालता है, जिससे प्रकट होता है कि तद्विषयक सामग्री उनको प्राप्त नहीं हुई। फलत उनका निर्णय अपूर्ण ही रहता है। अस्तु, सम्बन्धित विषय का स्पष्टीकरण करने के लिए यहाँ निम्नपक्तियों में कुछ विचार प्रकट किया जाता है।

१- चण्डीशतक की टीका का निर्माणकाल

धनेश्वर कृत चण्डीशतक की टीका का समय निर्धारित करने में निम्न बिन्दु विचारणीय हैं—

शक सम्वत्, बार्हस्पत्यसम्वत्सर, मास पक्ष, तिथि, वार और नक्षत्र।

शाके — शक या किसी अन्य ज्ञाति के राजा, अथवा दक्षिण के प्रतिष्ठानपुर (पैठण) के आन्ध्रभृत्य वंशी राजा शालिवाहन (सातवाहन, हाल) द्वारा चलाया हुआ यह एक सम्वत् है, जिसका वि० स० के १३५ वर्ष और ई० स० के ७८-७६ वर्ष के पीछे प्रचलन आरम्भ हुआ।

इसका विशेषत दक्षिण भारत में प्रचार रहा, परन्तु उत्तरी भारत के विद्वानों ने भी इसको अपनाया और मालव या विक्रम सम्वत् के साथ इसका प्रयोग करने लगे। यहाँ तक कि वर्षारंभ भी उन्होंने शक सम्वत् का ही स्वीकार कर चैत्र शु० १ से मानना आरम्भ कर दिया। यह उत्तरी भारत में वर्तमान समय में 'शाके शालिवाहन' नाम से प्रसिद्ध है[1]। चण्डीशतक की प्रशस्ति के उपर्युक्त श्लोक सख्या ४ के पूर्वार्द्ध के प्रथम पाद में उल्लिखित शाके 'करेन्दुरामेन्दु' वाक्य इस ही शक सम्वत् का बोधक है, जिसका अर्थ 'अकानावामनोगति' के अनुसार शाके १३१२ (ई० स० १३६० = वि० स० १४४७) ही होता है।

ज्योतिष शास्त्र में बार्हस्पत्य नामक सम्वत्सर का उल्लेख है और भारत में दीर्घकाल से उसका सम्वतों के साथ प्रयोग होता आया है। वर्तमान समय में भी

---

१ गौ० ही ओझा, भारतीय प्राचीन लिपिमाला (परिवर्द्धित सस्करण) पृ० १७०-७३

वार्हस्पत्य सम्वत्सर

पंचागो मे वार्हस्पत्य सम्वत्सर का उल्लेख करते हैं। इसका सम्बन्ध वृहस्पति की गति अथवा मध्यम मान से एक राशि पर रहने के काल से है। यह वार्हस्पत्य सम्वत्सर दो प्रकार के हैं-एक द्वादश वर्षीय चक्र और दूसरा साठ वर्षीय[1]। चण्डीशतक की उपर्युक्त टीका की प्रशस्ति के श्लोक ४ द्वितीय पाद 'मितेत्वानन्दवत्सरे' वाक्य का 'आनन्द' नामक शब्द, सामान्य रूप से साठ वर्षीय वार्हस्पत्य सम्वत्सर के ४८ वें 'आनन्द' सम्वत्सर का सूचक ही कहा जायगा। अवस्थाक्रम से इसके दूसरे अर्थ 'आनन्द' सम्वत् शुभदायक वर्ष, तथा 'अनन्द' या 'आनन्द' नामक सम्वत् भी किये जा सकते हैं। अतएव यहाँ इन तीनों तत्वों की विवेचना मे निम्न बाते विचारणीय होगी।

गणना क्रम की विभिन्न शैलियाँ

मध्यम मान से वृहस्पति के एक राशि पर रहने के काल को वार्हस्पत्य सम्वत्सर कहते है, जो ६० वर्ष का एक चक्र है। इसका गणना क्रम उत्तरीय और दक्षिणात्य शैली से भिन्न भिन्न प्रकार से होता है। उत्तरीय भारत मे भी इसके आरम्भ के विषय मे दो मत है। वराहमिहिर कलियुग सम्वत का पहिला वर्ष 'विजय' नामक २७ वें वार्हस्पत्य सम्वत्सर से और ज्योतिषतत्त्व का कर्त्ता 'प्रभव' नामक पहिले सम्वत्सर से प्रारम्भ होना मानता है। उत्तरीय भारत मे यह सम्वत्सर ३६१ दिन २ घड़ी और ५ पल का माना जाता है और सौर वर्ष ३६५ दिन १५ घड़ी ३१ पल और ३० विपल। इस क्रम से प्रतिवर्ष ४ दिन १३ घड़ी २६ पल वार्हस्पत्य सम्वत्सर छोटा होकर ८५ वर्ष में एक सम्वत्सर क्षय हो जाता है। दक्षिण भारत मे वार्हस्पत्य सम्वत्सर का वृहस्पति की गति से कोई सम्बन्ध नहीं है। वहाँ वाले इस वार्हस्पत्य सम्वत्सर को सौरवर्ष के बराबर मानते हैं, जिससे उनके यहाँ कभी सम्वत्सर क्षय नहीं होता। कलियुग का पहिला वर्ष 'प्रमाथी' नामक सम्वत्सर मान कर प्रति वर्ष चैत्र शु० १ से क्रमशः नवीन सम्वत्सर लिखते हैं[2]।

---

१. वही, पृ० १८७–१८९।

२. गौ० ही० ओझा; भा० प्रा० लिपिमाला (परि० सं०); पृ० १८७–१८९।

बार्हस्पत्य सम्वत्सर के निर्णय में उत्तर भारतीय गणनाक्रम

उपर्युक्त चण्डीशतक की टीका में दी हुई प्रशस्ति के श्लोक संख्या ४ में उल्लिखित 'आनन्द' नामक बार्हस्पत्य सम्वत्सर की गणना करने पर निम्नक्रम से बार्हस्पत्य सम्वत्सर के शाके १३१२ (ई० स० १३९०= वि० स० १४४७) में होने वाले बार्हस्पत्य सम्वत्सर का स्पष्टीकरण होता है, जो उत्तर भारतीय गणना विधि के अनुसार है–

शक सम्वत् १३१२, १३१२×११=१४४३२, १४४३२×४=५७७२८, ५७७२८ +८५८९=६६३१७, ६६३१७÷३७५०=१७ २५६७/३७५०, १३१२+१७=१३२९, १३२९÷ ६०=२२ ९/६०। इस गणित क्रम से अन्त में जो ९ वां सम्वत्सर शेष रहा, वह 'युवा' नामक गत सम्वत्सर है और शक सम्वत् १३१२ में 'धातृ (धाता)' नामक दूसरा सम्वत्सर हुआ[1]।

श्री गौड़े द्वारा निर्णीत शक स० १२३१ (ई० स० १३०९) को उपरोक्त उत्तरीय भारत की शैली से गणना करते हैं तो वास्तव में उस वर्ष 'आनन्द' नामक ४८ वां सम्वत्सर ही आता है[2]।

दक्षिणात्य शैली से बार्हस्पत्य सम्वत्सर की गणना विधि

यह स्पष्ट है कि 'शाके' दक्षिण भारत में प्रचलित सम्वत् है, जिसको 'चण्डीशतक' का टीकाकार अवश्य ही जानता हो। उसने उत्तर भारत का निवासी होने पर भी जान-बूझ कर शाके सम्वत् को ग्रहण किया हो तो उसके साथ यह भी आवश्यक होता है कि वह बार्हस्पत्य सम्वत्सर भी दक्षिणात्य शैली का ही ग्रहण करे। अतएव यहाँ पर दक्षिणात्य शैली से बार्हस्पत्य सम्वत्सर का क्रम निर्धारित किया जाता है, जिसकी विधि इस प्रकार है–

---

१ एल० डी० स्वामी कन्नू पिल्लै, इण्डियन एफेमेरिस, जि० १ पृ० १८७। नागरी प्रचारिणी पत्रिका में दिये हुए क्रम के अनुसार 'इण्डियन एफेमेरिज' के तथा श्री पिल्लै ने भी बार्हस्पत्य सम्वत्सर के नाम दिये हैं और डॉ० डी० सी० सरकार ने भी इस [illegible] के अनुसार [illegible] [illegible] पृ० १८८

२ पिल्लै, इण्डियन एफेमेरिज, जि० ४, पृ० ११०।

शक सम्वत् १३१२, १३१२+१२=१३२४÷६०=२२.४। इस विधि से शेषाङ्क ४ रहते हैं, जो 'प्रमोद' नामक चौथा बार्हस्पत्य सम्वत्सर है। अर्थात् दाक्षिणात्य गणना के अनुसार शक सम्वत् १३१२ (ई० स० १३९०=वि० सं०१४४७) में 'प्रमोद' नामक चतुर्थ सम्वत्सर था[1]। एवं श्री गौड़े द्वारा निर्णीत शाके १२३१ (ई० स० १३०९=वि० सं० १३६६) में 'सौम्य' नामक ४३ वां सम्वत्सर उपरोक्त क्रम से हुआ[2]।

इस विभिन्नता को देखते हुए हमारी तो यही धारणा होती है कि 'चण्डी-शतक' के टीकाकार धनेश्वर, ने दक्षिण भारतीय गणना विधिकारी बार्हस्पत्य नामक चतुर्थ सम्वत्सर, शाके १३१२ (ई० स० १३९०=वि० सं० १४४७) में ग्रहण किया। 'प्रमोद' का पर्यायवाची शब्द 'आनंद' है ही, अस्तु काव्य तथा प्रस्तुत वर्णन की सुन्दरता बढ़ाने लिए 'प्रमोद' के स्थान में 'आनन्द' शब्द का प्रयोग किया, जिससे उपरोक्त जटिलता उत्पन्न होगई।

इस विवेचन से श्री गौड़े महाशय द्वारा शक सम्वत और संवत्सर विषयक कल्पना का सहज ही में समाधान होकर 'शाके करेन्दुरामेन्दु मितेत्वानन्दवत्सरे' की जटिलता दूर हो जाती है, तथा अन्य कोई बाधाएं शेष नहीं रहती हैं।

सम्वत् की विशिष्टता हेतु मंगलवाची शब्दों का प्रयोग

सम्वत् तथा वर्ष को मंगलकारी बतलाने के लिए बहुधा विद्वान 'शुभसम्वत्सरे,' 'शुभसम्वत्' आदि शब्दों का प्रयोग करते हैं। यदि मितेत्वानन्दवत्सरे वाक्य के 'आनन्द' शब्द का अर्थ 'आनन्द दायक वर्ष', 'हर्षदायक वर्ष' मानलें तो शास्त्रीय दृष्टि से इसमें कोई दोष नहीं आता और न अर्थ गौरव बिगड़ता है। बाण कवि जैसे महान् विद्वान की रचना पर व्याख्या करना धनेश्वर का महत्त्व प्रद काम होता है। अतएव वह व्याख्या (टीका) की समाप्ति पर प्रशस्ति में हर्ष प्रकट करे, यह स्वाभाविक ही है क्योंकि बिना किसी विघ्न-बाधा के

---

१. यह 'पैतामह सिद्धान्त के अनुसार है', जिसको दक्षिणी विद्वान मानते हैं। इस के लिए देखो भारतीय प्रा० लि०, पृ० १८९। एफेमेरिज के कर्त्ता ने भी दक्षिणीय बार्हस्पत्य सम्वत्सर की यही विधि अपनाई है।

२. पिलाई; एन इंडियन एफेमेरिज, जि० ४, पृ० २२०।

वह सम्पूर्ण हुआ। यदि 'शाके करेन्दु रामेन्दु मितेत्वानन्दवत्सरे' का इस प्रकार का अर्थ किया जाय तो न तो नियम भङ्ग होगा और न कोई समस्या रहेगी, एव चण्डीशतक की टीका का रचनाकाल शाके १३१२ (ई०स०१३६० वि०स०१४४७) रहेगा।

हिन्दी भाषा के आदि कवि 'चन्दबरदाई' कृत 'पृथ्वीराज रासौ' मे कई स्थलों पर सम्वतो के साथ अनद' शब्द का प्रयोग हुआ है, जिसको विद्वानों मे 'अनद' या 'आनद' नामक भिन्न सम्वत मान रासौ मे उल्लिखित घटनाओ को तुलनात्मक दृष्टि से वि०स०के साथ मिलाने की चेष्टा भी की है। इसके विपक्ष मे भी कुछ विद्वानों ने चर्चा की है, परन्तु अभी इसका ठीक-ठीक निर्णय नहीं हो पाया है। चण्डीशतक की इस टीका की प्रशस्ति मे 'शाके करेन्दुरामेन्दु मितेत्वानन्दवत्सरे' पद मे 'त्वानन्दवत्सरे' शब्द दिया है, जिससे शाके १३१२ को 'अनन्द' या 'आनन्द' सम्वत मान उसमे जो ९१ वर्ष का अन्तर है, उसको जोड लें तो वि० स० १४०३ (ई० स० १३४६) 'चण्डीशतक' की टीका का रचना काल होगा। परीक्षण के रूप मे धनेश्वर का यह समय निर्धारित करने में कुछ अड़चनों के अतिरिक्त कोई अन्य बाधाएँ नहीं है, परन्तु क्या, वि० स० १४०३ (ई० स० १३४६) मे वैशाख शु० १४ को तिथि, वार और नक्षत्र चण्डीशतक की टीका के अनुसार मिलता है, विचारणीय है। इसका निर्णय करने के लिए श्री एल० डी० स्वामी कन्नु पिलाई निर्मित 'एन इडियन एफेमेरिज' नामक अंग्रजी ग्रन्थ के जि० ४, पृ० ७६४ मे उल्लिखित तिथियों, वार आदि से मिलान किया तो वि० स० १४०३ (ई० स० १३४६) वैशाख शु० १४ को शुक्रवार आता है, किन्तु इस दिन चतुर्दशी केवल १४ घटी ही थी। इसलिए चतुर्दशी, वैशाख शुक्ला १३ को व्यापिनी मानना पडेगा और उस दिन गुरुवार था। फिर भी नक्षत्र की भ्रान्ति बनी ही रहेगी, क्योंकि वैशाख शु० १३ स्वाति नक्षत्र ४३ घडी था[१]।

'अनद या 'आनद' नामक रासौ मे वर्णित सम्वत् का समीकरण

---

१ उत्तरी भारत और दक्षिण भारत की गणना शैली विभिन्न हैं। इसके साथ ही देशान्तर भेद से कभी कभी तिथियों, वार और नक्षत्र का अन्तर आ जाता है, किन्तु यह बहुत अधिक नहीं रहता, जिससे थोडा सा व्यतिक्रम का सङ्गति बिठाना अनिवार्य हो जाता है।

'अनंद' या 'आनंद' नामक सम्वत् का प्रयोग शिलालेखों, पुस्तकों आदि से लिखे जाने के उदाहरण रासो के अतिरिक्त अन्यत्र देखने में नहीं आए। कुछ शिलालेखों में सम्वतों के साथ 'आनंद' शब्द अवश्यमेव व्यवहृत हुआ है, किन्तु इस दृष्टि कोण से उनकी अभी तक परीक्षा नहीं की जा सकी है। अतएव इसको ग्रहण करने मे विद्वानों को संभवतः आपत्ति भी हो। यदि अवसर हुआ तो आगामी किसी लेख में यह बतलाने की चेष्टा की जायगी कि रासो के अतिरिक्त 'अनंद' या आनन्द' सम्वत् के प्रचलन का और भी कोई सुदृढ़ आधार है।

चण्डीशतक की उपरोक्त टीका की प्रशस्ति के श्लोक संख्या ४ के उत्तरार्द्ध के प्रथम चरण में 'वैशाखशुक्लभूतायां' पाठ है, जिससे महीने का नाम और पक्ष स्पष्ट हो गया है। परन्तु तिथि के निर्णय करने में सामान्य

भूता तिथि

अड़चनें अवश्य है; क्योंकि 'भूतायां' तिथिवाचक शब्द का अर्थ करने में संस्कृत के कोपकारों ने उसको 'पञ्चमी' तथा 'कृष्णपक्ष की चतुर्दशी' माना है [1]। किन्तु 'भूतायां' शब्द के आगे 'गुरौ चित्राह्वऋक्षके' वाक्य है, जिससे यह अवश्य ध्यान में रखना पड़ेगा कि उस दिन 'गुरुवार' और 'चित्रानक्षत्र' भी होना चाहिए। ज्योतिष के नियमानुसार 'चित्रानक्षत्र' वैशाख शुक्ल पक्ष के अंतिम दिनों में आता है। इसलिए यहाँ 'भूतायां' तिथि वाचक शब्द को 'चतुर्दशी' तिथि ही मानना उचित होगा। क्योंकि चित्रानक्षत्र वैशाख शु० ५ को नहीं रहता है, एवं शाके १३१२ वैशाख शु० ५ को बुधवार, आर्द्रानक्षत्र घटी १६, परं पुनर्वसु (ता०२० अप्रेल, ई०स० १३६०, वि०सं०१४४७) था[2]।

शाके १३१२ वैशाख सुदि १४ (ई०स० १३६० ता०२८ अप्रेल, वि०सं०१४४७) गुरुवार था [3], जैसा कि धनेश्वर ने चण्डीशतक की टीका की प्रशस्ति में दिया है। परन्तु नक्षत्र इस दिन स्वाति था और वह लगभग ५२ घटी था। इससे चित्रा

---

१. आप्टे; संस्कृत डिक्शनिरी, पृ० ८२१, The fourteenth day of the dark half of a lunai month, also 'भूता'।

२. पिलाई; एन इंडियन एफेमेरिज, जि० ४ पृ० ३८२।

३. वही; जिल्द ४, पृ० ३८२।

वार और नक्षत्र

नक्षत्र वैशाख सु०१२ को रहता है[1]। वस्तुत यह खटकने वाली बात अवश्य है। देशान्तर भेद से सामान्यत इस प्रकार का अन्तर अवश्य ही रहता है, जो उपेक्षणीय है।

ऊपर के विस्तृत विवेचन और विचारधाराओं से बाणभट्ट कृत 'चण्डीशतक' पर 'धनेश्वर' रचित टीका का समयकाल शाके १३१२ वैशाख शुक्ला १४ (ई०स० १३६० ता० २८ अप्रेल, वि०स० १४४७) गुरुवार, चित्रानक्षत्र और 'प्रमोद (पर्यायवाची 'आनद')' सम्वत्सर स्थिर होता है।

२– धनेश्वर का निवास स्थान, ज्ञाति और वशक्रम

इस विषय का स्पष्टीकरण करने के लिए टीकाकार धनेश्वर का निवास स्थान, ज्ञाति और वशक्रम इन तीन बिन्दुओ पर विचार करना उचित है–

यह तो उल्लेख किया जा चुका है कि 'चण्डीशतक' की टीका का धनेश्वर द्वारा शाके १३१२ (ई०स० १३६०–वि०स० १४४७) में निर्माण हुआ। वह उपर्युक्त टीका की प्रशस्ति में अपने पिता का नाम 'सोमनाथ' अथवा 'सोमेश्वर' 'द्विज (ब्रह्म)', 'भट्ट (उपाधि)' एव दशपुर ज्ञाति का होना बतलाता है (श्लोक सख्या १ और ३)।

दशपुर

'वररुचि' कृत 'प्राकृतप्रकाश' (द्वितीय परिच्छेद), के नियमानुसार 'दशउर' और पाणिनि के नियमानुसार 'दशोर'[2] मालवा के वर्त्तमान मन्दसौर कस्बे का प्राचीन नाम है। इतिहास और पुरातत्त्व की दृष्टि से इस स्थान का बडा महत्त्व है, एव पर्याप्त मात्रा में यहाँ से ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध होती है। ई०स० की प्रथम शताब्दी के आसपास के नासिक के एक लेख में इस कस्बे का नाम 'दशपुर' लिखा मिलता[3] है। इसके बाद के लेखों में भी यह

---

१ पिलाई, एन इडियन एफेमेरिज, जिल्द ४, पृ० ३८२।

२ रा० गौ० ओझा, एम० ए०, इन्दौर म्युजियम का शिलालेख, वि० स० १५४१, ना० प्र० पत्रिका बनारस (न० स०) भाग १२, अक १, (ई० स० १९३१) पृ० ५३।

३ दी इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इडिया।

इस ही नाम से सम्बोधित होता रहा[१]। प्राचीन भारत में यह एक सुसंस्कृत और स्मृद्ध नगर था, तथा यहाँ अच्छे अच्छे विद्वानों का निवास था। कॉर्पस् ने इन्सक्रिप्शन्स इण्डिकेरम्' में इस स्थान के सम्बन्ध में टिप्पण किया है, वह मनन योग्य है।

दशपुर ज्ञाति

'दशपुर' पर भी कई बार विजेताओं के आक्रमण हुए और उसका विनाश हुआ। प्रकृति के कोप से भी इस प्राचीन नगर की जो दस पुरों (मोहलों) में विभक्त था, बड़ी हानि हुई। ऐसे अवसरों पर वहाँ के निवासियों को आपत्तियों से त्राण पाने के लिए अन्यत्र चला जाना पड़ता था, जहाँ वे दशपुर ज्ञाति या दशपुर निवासी कहलाते थे। कालान्तर में अन्य लोगों ने 'दशपुर ज्ञाति' का प्रयोग करना छोड़ दिया; परन्तु वहाँ के 'प्रश्नोरा नागर' ब्राह्मणों ने (जो मूल में गुजरात के निवासी थे) दशपुर से आने के कारण अपने समूह का नाम दशपुर ज्ञाति ही रखा। इन्दौर स्टेट गजेटियर में लिखा है-वे (दशोरा ब्राह्मण) एक बार मन्दसौर मे साऊ नदी मे स्नान कर रहे थे कि उन पर डाकुओं का आक्रमण हुआ, जिसमें कई ब्राह्मण मारे गये। ये (दशोरा ब्राह्मण) अब भी उस नदी का पानी नहीं पीते है[२]। इसका परिणाम यह हुआ कि वे लोग मंदसोर का परित्याग कर दूसरे स्थानों में जा बसे। उक्त घटना का ठीक-ठीक समय आंका नहीं जा सकता। आनुमानिक रूप से यही सम्भव है कि दिल्ली की तुगलक सल्तनत के पिछले दिनों में वहाँ निर्बलता उत्पन्न होगई थी, जिसके फलस्वरूप मालवा में अराजकता का ताण्डव नृत्य होने लगा, तब आततायियों द्वारा मन्दसौर पर भी आक्रमण हुआ, उसमें वहाँ के शान्त और विद्वान् ब्राह्मण मारे गये। बचे-खुचे अपने परिवार को लेकर

---

१. 'परम माहेश्वरो महाराज श्री महेन्द्रपाल देव. श्री दशपुर पश्चिम पथ के तलवर्गिक हरिपउ भुज्यमान खर्परपद्रक ग्रामे ....। घोटार्सी (प्रतापगढ) का शिलालेख, ए० इ० जि० १४ पृ० १८३। यह शिलालेख अजमेर के राजपूताना म्युजिअम में सुरक्षित है।

२. लुअर्ड, इन्दौर स्टेट गजेटियर, पृ० ५०। ऐसा भी कहा जाता है कि दशपुर ज्ञातीय ब्राह्मण मंदसौर की साऊ नदी मे 'श्रावणी' कर्म कर रहे थे, कि उन पर आततायियों का आक्रमण हुआ और वे मारे गये।

सुरक्षित स्थान में गये, जिसमे मेवाड़ भी है। स्थूल रूप से इस घटना को वि० स० पन्द्रहवीं शताब्दी के आरम्भ में मानना पडेगा।

मन्दसौर से मेवाड और वहाँ की प्राचीन राजधानी प्रसिद्ध चित्तौडगढ अधिक दूर नही है [1]। इस काल में वहाँ पर पुन सीसोदिया नरेशों की रक्तवर्णीय ध्वजा फहराने लग गई थी। वह हिन्दू राज्य था, अतएव दशपुर ज्ञातिय ब्राह्मणों का समूह मेवाड में आने पर तत्कालीन राणाओ ने उनको आश्रय दिया। वे 'दशपुर ज्ञातीय' नाम से अपने को उच्चारित करते थे, जिसका वर्तमान रूप 'दशोरा' है।

दशपुर ज्ञातीय ब्राह्मणों द्वारा रचित शिलाङ्कित प्रशस्तियाँ

'चण्डीशतक' की टीका के अतिरिक्त धनेश्वर तथा उसके वशधरों, एव अन्य दशपुर निवासी ब्राह्मणो द्वारा रचित कोई ग्रन्थ अब तक उपलब्ध नहीं हुआ है और न इस प्रकार की प्रशस्तियाँ तथा अन्य साधन प्राप्त हैं, जिसमे धनेश्वर के सम्बन्ध में विस्तार से प्रकाश डाला जा सके। मेवाड तथा मालवा मे वि० सं० १४८५-१५९२ (ई० स० १४२९--१५३५) तक की कई शिलाङ्कित प्रशस्तियाँ प्राप्त हुई है, जिनसे प्रकट है कि पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी के युग में मेवाड में 'दशपुर ज्ञातीय' ब्राह्मणो द्वारा रचनाओं की बाहुल्यता रही और उनके द्वारा सरक्षित वाङ्मय की वहा पर्याप्त रूप से उन्नति हुई। मेवाड के सीसोदिया नरेशो के दरबार मे अपने पाण्डित्य से समुचित सम्मान पाकर उन्होने प्रतिष्ठा तथा कई गाव प्राप्त किये। अस्तु, प्रस्तर लेखों के आधार पर यहा धनेश्वर के सम्बन्ध में कुछ प्रकाश डालने का प्रयत्न किया जाता है।

दशपुर-ज्ञाति के ब्राह्मणों की रचना में सब से पहली रचना चित्तौडगढ के

---

१ मन्दसोर से मेवाड का धरियावद इलाका समीप है और चित्तौडगढ लगभग ७० मील दूर है।

२ श्रीमद्दशपुरज्ञातिर्मंद वि[illegible]ोत्सृष्टव ।
नाम्नैकनाथनामाय मखिमा[illegible] ॥ १ ॥ (अतिम भाग)
गढ प्रशस्ति ए०इ०, जि०२, पृ०४१०-२१ एव भावनगर इन्स्क्रिपशन्स पृ०९९ १०० म छप चुकी है।

समिद्धेश्वर शिवालय (मोकलजी का मन्दिर) की वि० सं० १४८५ माघ (ई०-सं० १४२६ जनवरी) की प्रशस्ति है, जिसको 'दशपुर ज्ञातीय,' भट्ट विष्णु के पुत्र 'एकनाथ' ने निर्मित की थी[1]। इस समय मेवाड़ में महाराणा मोकल (वि० सं० १४७८-१४९०-ई० स० १४२१-३३) राज्य करता था, जिसने ब्राह्मणों में पुनः वेद विद्या का पठन-पाठन प्रारम्भ करवाया[2]। इस प्रशस्ति से यह स्पष्ट हो जाता है कि दशपुर-ज्ञातीय ब्राह्मण वि० सं० १४८५ (ई० सं० १४२६) से पूर्व मेवाड़ में आ गये थे।

मेवाड़ के प्रतापी महाराणा कुम्भा (कुम्भकर्ण, मोकल का पुत्र, वि० सं० १४९१-१५२५=ई० सं० १४३४-६८) द्वारा बनवाये हुए 'कीर्तिस्तम्भ' या विजय-स्तम्भ (Tower of Victory)' की वि० सं० १५१७ मार्गशीर्ष वदि ५ (ई० सं० १४६० ता० ३ नवम्बर) सोमवार की प्रशस्तियों का रचनाकार 'अत्रि' और उसका पुत्र 'महेश', 'दशपुर (दशोरा)' ज्ञाति का ब्राह्मण था। उस ही महेश द्वारा कुंभलगढ़ के मामादेव आदि की वि० सं० १५१७ मार्गशीर्ष वदि ५ (ई० सं० १४६० ता० ३ नवम्बर) सोमवार की सुविशाल प्रशस्तियाँ, मालवा के खड़ावदा गांव की वि० सं० १५४१ कार्तिक सुदि २ (ई० सं० १४८४ ता० २१ अक्टोबर) गुरुवार, एकलिंङ्गजी के दक्षिण द्वार की वि० सं० १५४५ (चैत्रादि १५४६) चैत्रसुदि १० (ई०-सं० १४८६ ता० १२ मार्च) गुरुवार, जावर के रामस्वामी के मन्दिर की वि० सं० १५५४ चैत्र (ई० सं० १४९७) और घोसूंडी की बावड़ी की वि० सं० १५६१वैशाख सुदि ३ (ई० सं० १५०४ ता० १७ अप्रेल) बुधवार की प्रशस्तियों की रचना हुई, जो संस्कृत भाषा में होकर इतिहास के लिए महत्व की वस्तु है।

---

१ श्री मद्दशपुरज्ञातिर्भट्ट विष्णोस्तनुद्भवः
नाम्नेकनामाय मलिखत्कृतिमुज्वलान् ॥ १ ॥ (अंतिम भाग)
यह प्रशस्ति ए०इ०जि०२, (पृष्ठ ४१०-२१) एवं भावनगर इंस्क्रिप्शन्स पृ०९९-१०० में छप चुकी है।

२ योविप्रानमिता (न) हलिकलयतः कार्श्यं नवृत्तेरलं।
वेदसांगमपाठयत् कलिगला ग्रस्ते धरित्रीतले ॥ २१७ ॥
(कुम्भलगढ़ के मामादेव की प्रशस्ति, चतुर्थ पट्टिका)
ए०इ०, जि० २१।

इस ही प्रकार एकलिङ्गजी के मन्दिर के पुजारी-महन्तों के रहने के मठ नामक स्थान की एक छोटी प्रशस्ति, जो वि०स०१५६२ माघ सुदि ६ (ई०स०१५३६-ता०२८ जनवरी) शुक्रवार रेवती नक्षत्र की है, दशपुर ज्ञाति के पुरुषोत्तम द्वारा निर्मित हुई,[१] दशपुर ज्ञातीय ब्राह्मणों का मेवाड़ में विशिष्ट स्थान होना बतलाती है।

एकलिङ्गजी के मन्दिर की दक्षिण द्वार की वि० स० १५४५ (चैत्रादि १५४६) चैत्र सुदि १० (ई० स० १४८६ ता० १२ मार्च) गुरुवार की प्रशस्ति में मेवाड के महाराणा लाखा (लक्षसिंह) के प्रसङ्ग में उपर्युक्त महेश कवि ने उक्त महाराणा की दानशीलता का वर्णन करते हुए उल्लेख किया है-

महाराणा लक्षसिंह का धनेश्वर भट्ट को पच-देवालय ग्राम दान करना

लक्ष क्षोणीपति द्विजायविदुषेक्षोटिंगनाम्नेददौ
ग्राम पिप्पलिकामुदार - विजिताराहुपरुद्धे रवौ ॥
तद्वद्भट्टधनेश्वरायरुचिर स पचदेवालय,
प्रादाद्धर्ममतिर्जलेश्वरदिशि श्रीचित्रकूटाचलात् ॥ ३६ ॥

उपर्युक्त श्लोक से प्रकट है कि महाराणा लक्षसिंह (वि० स० १४३६-७८ =ई० स० १३८२-१४२१) ने धनेश्वर भट्ट को सूर्य-ग्रहण के अवसर पर पचदेवालय (पचदेवला) गाँव दान स्वरूप दिया। धनेश्वर कृत चण्डीशतक की टीका में उल्लिखित शाके १३१२ (वि० स० १४४७=ई० स० १३६०) मेवाड के महाराणा लक्षसिंह के राज्यकाल मे मिलता है। यद्यपि एकलिंगजी के दक्षिण द्वार की प्रशस्ति के उपर्युक्त श्लोक में धनेश्वर का ज्ञाति विषयक कोई उल्लेख नहीं है, परन्तु वहाँ उसकी 'भट्ट' उपाधि दी है। पचदेवालय (पच देवला) गाँव के

१ सवत् १५६२ वर्ष शाके १४५७ प्रवर्तमाने माघशुक्ल षष्ट्यां भार्गवे रेवत्यां श्री एकलिङ्ग विष्णवामादीपधाम्नि श्रीहारीतराशि तप पूते त्रिकूटेकूटे मठगिरौ। आकाशवासिपाशुपताचार्य श्रीविश्वनाथपदाधीश्वर पाशुपताय श्रीनरहरियाकारितोय मठोभिरभ्यार । दशपुरज्ञातीयपडित पुरुषोत्तमकृतेय प्रशस्ति ॥ (मूल लेख से)

भोक्ता दशपुर ज्ञातीय (दशोरा) ब्राह्मण हैं। अस्तु, धनेश्वर का दशपुर ज्ञातीय ब्राह्मण होना स्पष्ट है; एवं यह वही धनेश्वर है, जिसको चण्डीशतक की टीका की प्रशस्ति मे 'सोमनाथ' या 'सोमेश्वर' का पुत्र होना बतलाया है।

धनेश्वर के पिता सोमनाथ का प्रशस्तियों में स्थान

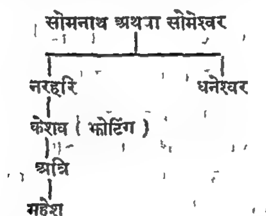
दशपुर ज्ञातीय महेश कवि रचित उपर्युक्त प्रशस्तियों में से विजय स्तम्भ (चित्तौड़गढ़) और मामादेव (कुम्भगलढ़) की प्रशस्तियों में उस (महेश) का परिचय होना चाहिए; किन्तु इन प्रशस्तियों की सम्पूर्ण पट्टिकाएँ प्राप्त नहीं है। खड़ावदे (मालवा) एकलिंगजी के दक्षिण द्वार और घोसूंड़ी की प्रशस्तियों में महेश का वंश विवरण सोमनाथ से आरम्भ किया गया है, जो इस प्रकार है—

वंशेभृगोर्भगवतोभुवन- प्रकाशे-चंद्रावतंसचरणांबुजचंचरीकः ।
आसीत्पवित्रचरितानुवसतयाजी श्री सोमनाथ धरणी विबुधो
धरण्यां (धरण्याम्) ॥५७॥
तस्यात्मजोनरहरिर्हरिरेव साक्षा दान्वीक्षिकी कुमुदकानन शीतभानुः ।
आसीदिलातलविरंचिरितिस्फुटार्थं योवेदवेदवसति बिरुदं बभार ॥५८॥
तस्मादंबुजिनीयतेरिवमनुश्चंडद्युतिः कश्यपा-
दंभोजासनतोभृगुर्जलनिधेर्यद्वत्सुधा दीधितिः ।
संजातोनृहरेरहीन महिमा श्री केशवः कीर्तिमान्
यो झोटिंग इति प्रथामुदवह दुर्वादि पंचाननः ॥५९॥
अत्रिस्तत्तनयो नयैकनिलयोवेदांत दांत द्युति
मींमांसारस मांसुला तुलमतिः साहित्य सौहित्यवान् ॥
मान्यः श्रीगु (गु) हिलान्वयांबुजवनी विद्योतनस्या भवत्
श्रीमत्कुंभमहीपतेर्दशपुर ज्ञातिद्विजाग्रेसरः ॥६०॥
अत्रेसुनुर्दर्शनांभोजभानुर्वादिश्रेणी वाक्यवल्लीकृशानुः ।
किंचित्कालं मालवे राजतोयत्काव्योल्लासैः श्रीमहेशः कवींद्र ॥६१॥
(खड़ावदा गाँव की प्रशस्ति)

यह स्पष्ट हो गया है कि खड़ावदे की प्रशस्ति के रचयिता महेश का दादा 'केशव' उपनाम 'झोटिंग' और 'धनेश्वर' समकालीन थे और दोनों को महाराणा लक्षसिंह ने एक साथ ही पृथक् पृथक् गांव दिये। हमारे अनुमान से केशव

(झोटिंग) का दादा 'सोमनाथ' और 'चण्डीशतक' के टीकाकार धनेश्वर का पिता 'सोमनाथ' एक ही व्यक्ति होना चाहिए। फिर भी इसमे शोध की पूरी गु जाइश है।

महेश विरचित प्रशस्तियों से उसका वंशानुक्रम निम्नलिखित स्थिर होता है और धनेश्वर का स्थान भी क्रमानुबद्ध इस प्रकार होगा—



अब रहा 'द्विज' और 'भट्ट' उपाधि इसके लिए अधिक विवेचन की आवश्यकता नहीं है। सामान्यत यह दोनो शब्द ब्राह्मणों के लिए ही उपयोग में आते हैं।

हेमरतन कृत पदमिनी चउपई

(ले० उदयसिंह भटनागर एम० ए० अध्यक्ष हिन्दी-विभाग म० स० विश्व विद्यालय, बड़ौदा)

शोध-पत्रिका के पिछले अङ्क में उक्त रचना और उसके लेखक के विषय मे लिखते हुए श्री अगरचन्द नाहटा ने मेरा ध्यान आकर्षित किया। मैं स्वयं इस विषय पर अपने थीसिस से सम्बन्धित एक लेखमाला प्रकाशित करना चाहता था। यह लेख उसी का प्रथमांश है।

उक्त चउपई की कई हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर तथा उसके विविध संस्करणों की प्रतियो की तुलना कर मैंने इस ग्रन्थ का एक 'एक्जास्टिव क्रिटिकल संस्करण' तैयार कर दिया है जो राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपुर द्वारा प्रकाशित हो रहा है।

अपने अध्ययन के आधार पर मेरी धारणा है कि जायसी के पश्चात् इस कथा पर प्रबन्ध रचना करने वाला प्रथम कवि हेमरतन ही है और उसी के आधार को लेकर जटमल (जगमल, जग्गा, जगहा,) ने संवत् १६८० (१६८५ या १६८६) में गोरा बादल की कथा (या बात) की रचना की; लब्धोदय (लालचन्द) ने संवत् १७०७ मे 'पद्मिनी-चरित्र' की रचना की; और, संवत १७६० के लगभग संग्राम सूरि (भाग विजय * नहीं) ने हेमरतन की रचना का परिवर्तित तथा परिवर्द्धित संस्करण तैयार किया।

पूनिमगछ्छ के हेमरतन सूरि ने सादड़ी मेवाड़ में संवत् १६४५ श्रावण सुदि पंचमी को 'गोरा बादल पदमिनी चउपई' शीर्षक से इस ग्रन्थ की रचना की।

---

* जैसा कि श्री नाहटा मानते हैं।

इसकी मौलिक प्रतियो से पता चलता है कि इस काव्य की पद्य सख्या ६१६ थी- 'षट सित षोडस गाथा (अके) वधि), ६×१००+१६=६१६। धीरे धीरे क्षेपक जुड जाने से यह सख्या ६०० से ऊपर पहुच गई। इसकी भाषा मेवाडी है, जिस पर उस काल की ब्रज भाषा का प्रभाव स्पष्ठ देख पडता है। यहाँ तक की कई लिपिकारों ने उसके राजस्थानी रूप को ब्रज भाषा का रूप दे दिया है, जैसे-कर' इ (करेगा) आव ' इ (आवेगा), कर ' उ (करू गा) आदि भविष्यत्काल की क्रियाओं को ब्रज भाषा की वर्तमान काल की क्रिया मान कर करइ (करै=करता है), आवइ (आवै=आता है), करउ (करूं=करता हू) रूप दे दिया हैं। ये रूप इस प्रकार मिल गये हैं कि भाषा की प्रवृत्ति के आधार पर ही इन्हें अलग अलग किया जा- सकता है। भाषा और साहित्य दोनों दृष्टियो से रचना महत्वपूर्ण है।

पद्मिनी की कथा को ले कर रचे गये ग्रथ कई नामों से-पद्मिनी प्रबन्ध, गोरा बादल रतनसेन चउपई, पदमिनी गोरा बादल चोपई, गोरा बादल री कथा पद्मिनी-चरित्र-मिलते हैं। इनके लेखक क्रमश हेमरतन, (१६४५), जटमल (१६८०-१६८६), लब्धोदय (१७०७), सग्रामसूरि (१७६०) और गिरधारीलाल (१८३२) हैं। प्रत्येक कवि की कई प्रतिया खोज मे प्राप्त हो चुकी हैं उनमे से महत्वपूर्ण प्रतियों का उल्लेख यहाँ किया जाता है।

(१) हेमरतन। रचना काल सवत् १६४५, श्रावण सुदि पचमी। पद्य-सख्या ६१६।

प्रति १ लिपिकाल सवत् १६४६, मगशिर सुदि १५। पद्य ६१७। श्री रविशकर देरासी की फोटो प्रति से।

प्रति २ लिपिकाल सवत् १६४७ चैत्र वदि १४ गुरुवार। यह प्रति प्रवर्तक श्री कान्तिविजयजी, बडौदा के सग्रह में है। इसकी सूचना जैन गुर्जर कवियों भाग १ में है।

प्रति ३ लिपिकाल सवत् । १६६१ । पत्र-सख्या ७-३ । श्री मुनि जिनविजयजी से प्राप्त।

प्रति ४ लिपिकाल सवत् १७११ चैत्र सुदि १० सोमवार। लिपिकार प० सुखाणनद गणि महिमानन्द गणि, चरण सेवक मनुचद गणि। सूचना-जैन गुर्जर कवियो भाग ३ (१)। ६८०।

प्रति ५: लिपिकाल संवत् १७२६ श्रावण वदि २ बुधवार अञ्जीमपुरे अंचल गच्छे भ० अमर सागर सूरि राज्ये पं० यतिकीर्ति शिष्य मुनि चिमन्लकीर्ति तत् भ्रातृ मुनि ललितकीर्ति मुनि जयतकीर्ति सहितेन लि० । इसी संवत् की एक प्रति मुझे श्री मुनि द्वाराप्राप्त हुई थी। सूचना जै० गु० क० भाग ३ (१) ६८० ।

❀ प्रति ६: लिपिकाल संवत् १७३१ माग वदि १ रविवार । कनकनिधान शिष्य हरिवर्द्धन लि० । सूचना-जै० गु० क० भा० ३ (१) । ६८० ।

❀ प्रति ७: लिपिकाल संवत् १७६७, पौष वदि १० बहरामपुर में लिपिकृत। सूचना जै० गु० क० भाग ३ (१) ६८० ।

प्रति ८: लिपिकाल संवत् १७८५ । वर्द्धमान ज्ञान मन्दिर, उदयपुर ।

❀ प्रति ९: लिपिकाल संवत् १७९६ शाके १६६१ पौष शु० ६ शुक्रवार। सूचना-जै० गु० क० ।

(२) जटमल । रचना काल १६८०-८६ । गोरा वादल री कथा ।

इस रचना के लिये वहुत समय तक यह विवाद चलता रहा कि कथा गद्य मे है अथवा पद्य में। यद्यपि श्री नरोत्तमदास स्वामी ने यह सूचना देखकर इस विवाद को वन्द कर दिया कि कथा पद्य ही में है गद्य में नहीं। परन्तु वास्तव में समस्या का संतोप पूर्ण हल नहीं निकलता। मेरे गुरु स्व० डॉ० श्यामसुन्दरदास ने हस्तलिखित ग्रंथों की खोज रिपोर्ट १९०१ के पृ० ४५ पर नोट संख्या ४८ में इस कथा को गद्य-पद्य दोनो में लिखित वतलाया। मिश्र वन्धुओं ने गद्य में ही मान लिया। श्री स्वामी ने अपनी प्राप्त प्रतियो के आधार पर उसे पद्य में ही माना। उनके कथन के अनुसार उक्त गद्य-पद्य वाली प्रति उन्हें बंगाल की रॉयल एशियाटिक सोसाइटी में नहीं मिली। परन्तु रिपोर्ट में दिये गये भाषा के उन उदाहरणों को ध्यान में रखकर हम देखे तो स्व० डॉ० श्यामसुन्दरदास के कथन में कुछ तथ्य दिखाई पड़ता है। उक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि कथा में गद्य-पद्य दोनो है। संभवतः कथा पद्य में और उसके साथ गद्य में उसका अर्थ

❀ ये प्रतियाँ मैंने देखी नहीं हैं अतः यह नहीं कहा जा सकता कि ये मूल-ग्रन्थ की प्रतिलिपियाँ हैं अथवा संग्राम सूरि की रचना की। जै० गु० क० के लेखक ने, दोनो को एक कर दिया है।

भी दिया गया हो। उक्त उदाहरण में एक महत्त्वपूर्ण बात और यह है कि उसमें उसके रचयिता के जगमल, जगहा कवेसर ये दो नाम हैं। जगहा जगमल ही का विकृत रूप है। परन्तु अन्त में जटमल का नाम भी है और रचनाकाल सवत् १६८० दिया गया है, जब कि अधिकतर रचनाओं में सवत् १६८५ और ८६ मिलते हैं। परन्तु रचना के पदों और ग्रन्थ तथा कवि परिचय आदि मिलान करने से हमें इसी निर्णय पर पहुचना होगा कि उक्त रचना १६८० में गद्य-पद्य में लिखी गई और १६८५-८६ में इसका पद्य मय खड विशेष प्रचलित हो गया। जटमल, जगमल, जगहा एक ही नाम है। अपने प्रमाण की पुष्टि के लिये हम यहाँ उन उदाहरणों के अशुद्ध तथा शुद्ध पाठों को प्रस्तुत करते हैं-

आदि-

"श्रीरामजी प्रसन्न होये। श्री गनेसाये नम । लछमीकात। हे बात कीसा (कीला) चितौडगड के गोरा बादल हुआ है जिनकी वारता की कीताब हींदवी मे बनाकर तयार करी है।

सुक सपत दायेक सकल, सींद-बुद (बुध) सहेत गनेस।
बीगण बीजरला (विडारय) बीनसो, बेलो (मेलो)
तुज (तुम्र) परणमेस (प्रणमेस) ॥ १ ॥
जगमल वाणीसर मरस, कहता सरस (सु रस) वर वद।
चहुवाण कुन अवधारो, हुराजु वाचा वद ॥ २ ॥

अन्त—

'गोरे की आवरत (औरत) आने सा (आ वेमा) बचन सुनकर आपने खावद की पगडी हाथ में लेकर वाहा (वहाँ) सती हुई सो सीवपुर मे जाके दोनो मेले (भेजे) हुवे ॥ १४४ ॥"

"गोरा बादल की कथा गुरु के बस सरस्वती के महरबानगी से पुरन भई तीस वास्ते गुरू कू व सरस्वती कू नमस्कार करता हु ॥ १४५ ॥"

"ये कथा मोल से आसी के साल मे फागुण सुदी के रोज बनाई। ये कथा मे दो रसेह (रस है) बीरा रस व सीनगार रस है सो कथा ॥ १४६ ॥"

"मोरछडो नाव गाव का रहने वाला कवेसर जगहा। उस गाव के लोग भोहोत (=बहुत) सुखी है घर घर मे आनद होता है कोई घर मे फकीर दीसता नही ॥ १४७ ॥"

"उस जग (जगह) अलीखान वाश्रा राज करता है मसीह (नासिर) वाका पुत्र हे सो सब पठानों मे सरदार हे जयेसे (जैसे) नारो में चंद्रमा हे आवेसा वो हे ॥ १४८ ॥

"धरम सी नाव का वेत लीन का वेटा (धरमसी नाव कावे=कहावे-तीन का वेटा) जटमल नाम कवेसर ने ये कथा सवल गांव मे पुरी करी ॥ १४६ ॥"

इसमे रेखाङ्कित वातों को ध्यान मे रखकर निम्नलिखित वातों पर विचार करना होगा–

१ पुस्तक 'हिंदवी' मे लिखित है।

२ इसका रचयिता 'जगमल' जगहा (जग्गा) 'कवेसर' है जो 'मोरछड़ो' गाँव का रहने वाला था। परन्तु इसके अन्त में 'जटमल कवेसर' नाम भी दिया गया है। जटमल धरमसी का पुत्र था।

३ ये रचना संवत् १६८० में रची गई।

४ ये कथा सवल गांव में पूर्ण की गई।

१ इस रचना को हिन्दवी में लिखने के सत्य को व्यक्त करने का कारण स्पष्ट है। उस समय हिन्दवी का प्रचार था। साहित्य में व्रजभाषा अधिक प्रचलित थी। जटमल की अन्य रचनाएँ भी मिलती हैं जिनमें उसने व्रजभाषा का भी प्रयोग किया है। अब तक जटमल की निम्नलिखित रचनाएँ प्राप्त हो चुकी हैं:–

१ प्रेम विलास-प्रेमलता चोपई। रचनाकाल संवत् १६६३ भादवा शुक्ल ४-५ रवि। यह रचना भी 'हिन्दवी' में है, परन्तु उसमें भी 'गोराबादल की कथा' की भांति राजस्थानीपन है।

२ बावनी। इसकी भाषा व्रजमिश्रित राजस्थानी है।

३ लाहोर गजल। इसकी भाषा हिन्दवी है।

४ स्त्री गुण सवैया। व्रजभाषा में है।

५ स्त्री गजल। खड़ी बोली में है।

२ इसमें 'जगमल' 'जगहा' और 'जटमल' ये तीन नाम मिलते हैं। परन्तु जिसमें 'जगहा' 'जगमल' का विकृत रूप है। जगमल और जटमल राशि की दृष्टि से एक ही हैं। और ये दोनों नाम इसमें मिलते हैं, अतः दोनों नाम एक ही व्यक्ति के हो सकते हैं। इनको एक मानने का एक दूसरा कारण भी है।

'गोरा बादल' की अन्य जितनी प्रतियाँ मिलती हैं उनमें सब में नाम तो जटमल ही मिलता है परन्तु उसका निवास-स्थान, रचना-स्थान, वंश-परिचय, राज्य-परिचय आदि सब इसी प्रति के अनुकूल हैं। अतः 'जटमल' और 'जगमल' में कोई अन्तर नहीं है। संवत् १६८६ की प्रति का अन्तिम भाग देखिये—

संवत् सोलह सय छयासी, भला भाद्रव मास।
एकादशी तिथिवार के, दिन करि धरी उल्लास॥
अब बसइ सोझ अडोल, अविचल सुखी रइयत लोक।
आणंद घरि घरि होत मंगल, देखियत नहीं शोक॥
राजा तिहाँ अलीखान न्याजीखान नासिर नंद।
सिरदार सकल पठान भीतर जिउ नक्षत्र महि चंद॥
तिहा धरमसी का नंद नाहर जाति जटमल नाउ।
तिण करी कथा बनाय के बिधि सु बला के गाउ॥

यह रचना प्रकाशित हो चुकी है परन्तु उसके सम्पादक* महोदय ने संवत् १७६२ की प्रति के आधार पर 'नाहर जाति' के स्थान पर 'नाहर खान' पाठ पढ लिया और जटमल को मुसलमान बना दिया। जटमल की जिन कृतियों का उल्लेख है, उनमें जहाँ जहाँ उसका वंश परिचय दिया गया है वहाँ उसके मुसलमान हो जाने का कोई उल्लेख नहीं है। वह नाहर जाति का श्रावक था। उसकी रचना 'प्रेम विलास' का अन्तिम भाग देखिये—

(१) बसै अडोल जलालपुर, राजा विरू सहियाज।
रइयत सकल बसै सुखी, जब लगि थिर दू राज (धूराज)॥
तहा बसै जटमल लाहोरी, करनै कथा सुमति लघु थोरी।
नाहर धर्म न कछु सो जानै, जो सरसती कहै सो थानै॥

(२) इति प्रेमविलास की सब रसलता नाम कथा नाहर गोत्र श्रावक जटमल कृता समाप्ता सं० १६९३ जयेठ ब० ७ ⊕

* पं० अयोध्यानाथ शर्मा द्वारा सम्पादित।

⊕ जै० गु० क० भाग ३ (१) १६२०-२१ से उद्धृत।

३. यह रचना पहले संवत १६८० में हिन्दवी भाषा में तथा गद्य-पद्य में लिखी गई। कथा को गद्य और पद्य में लिखने की प्रथा राजस्थानी में प्रचलित थी ही। ढोलामारू जैसे काव्य का ज्यों ज्यों प्रचार होता गया उसकी कथा गद्य और पद्य दोनों में ढल गई। इसी प्रकार राजस्थानी की कई वारताएँ गद्य-पद्य मिश्रित मिलती हैं। यह एक आश्चर्य की बात है उक्त प्रति अब बंगाल एशियाटिक सोसाइटी में नहीं है और न अब तक कोई अन्य प्रति गद्य में मिलती है। सम्भवतः जटमल ने हेमरतन की रचना के आधार पर पहले उक्त रचना तैयार करली हो और फिर अलग से उसे केवल पद्य में बना लिया हो। क्योंकि यह तो निश्चित है कि जटमल ने हेमरतन की रचना का ही अनुकरण किया, जायसी के पद्मावत का नहीं? ॐ केवल अन्तर यह है कि जटमल ने रतनसेन को चौहान मान लिया है और कथा को चित्तौर ध्वंस तक प्रसारित कर दिया है। हेमरतन की रचना गोरावादल द्वारा रतनसेन को अलाउद्दीन से मुक्त कराने पर ही समाप्त हो जाती है। इस प्रकार हेमरतन के ६१६ पद्यों को जटमल ने १५० पद्यों में समा लिया है, जिसका उल्लेख प्रस्तुत लेख के द्वितीय खंड में किया जायगा। यहाँ तुलना के लिये निम्नलिखित अंश उद्धृत किये जाते हैं—

हेमरतन	जटमल
सुख संपत्ति दायक सकल,	सुक संपत दायेक सकल
सिधि बुधि सहित गणेस।	सिद बुद सहेत गनेस।
विघन विडारण विनय सु	वीगण वीजरला वीन सो
पहिली तुझ प्रणमेस ॥ १ ॥	वेलो तुज परमाभेस ॥
	(गद्य-पद्य रचना से उद्धृत)
वीरा रस सिणगार रस	ये कथा में दो रस हे,
हासा रस हित हेज। ५।	वीरा रस सींणगार रस (गद्य)।

ॐ स्वर्गीय ओझाजी ने नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १३, अंक ४ में जायसी के पद्मावत से उसकी कथा का आधार माना है।

गोरा रावत अति गुणी वादिल अति वलवत । ७ । गोरा वादिल वे गुणी सत्तवत सविवेक ॥ ८ ॥	गोरा वादल बल वलैं रण-रसिया रण-ढाल । ७ । (प्रकाशित पद्य रचना से)

जुद्ध करी जिम जस लीउ, वसुहा हुआ विख्यात । चित्रकोट चाग्रउ कीउ, ते निस राउ सहू वात ॥ ६ ॥	लड भिड नै जग जस लियो वसुधा हुइ विख्यात । चीत्तौड वचायो कियो तेह गुणी अवदात ॥ ८ ॥ (प्रकाशित पद्य रचना से)

जटमल की अन्य हस्तलिखित प्रतियों का उल्लेख प्रकाशित रचना की भूमिका तथा जैन गुर्जर कविओ भाग ३ (१) । १०१०–१२ पर देखिये ।

(३) लब्धोदय (लालचन्द) । रचना पद्मिनी चरित्र । रचना काल संवत् १७०७ चैत्री १५ शनिवार ।

प्रति १ लिपिकाल संवत् १७४५ पोष शुक्ल २ मंगलवार । ईडर । सूचना–जैन गुर्जर कविओ भाग ३ (२) । ११८५ ।

प्रति २ लिपिकाल संवत् १७५३, आसोज सुदि १५ सागवाडा में लिखित । पद्य संख्या ४६७ । सरस्वती भवन उदयपुर में सुरक्षित ।

प्रति ३ लिपिकाल संवत् १७५८ । आमेट में लिखित । बड़ौदा ऑरियन्टल इन्स्टीच्यूट में सुरक्षित ।

प्रति ४ लिपिकाल संवत् १७६१ आसोज वदि १० मंगलवार । दूरीधा में लिखित । सूचना–जै० गु० क० भा० २ । १३८ ।

प्रति ५ लिपिकाल संवत् १७७१ आसोज सुदि ७ गुरुवार । सूचना-जै० गु० क० भा० २ । १३८ ।

प्रति ६ लिपिकाल संवत् १७७३ वैशाख सुदी ७ । आदसोड़ा में लिखित । सूचना-जै० गु० क० भाग० २ । १३८ ।

प्रति ७ लिपिकाल संवत् १७६० । सूचना जै० गु० क० भा० ३ (२) ११८५

प्रति ८: लिपिकाल संवत् १७९८ । जेष्ठ शुक्ल २ । सूचना-जे० गु० क० ३ (२) । ११८५

प्रति ९: लिपिकाल संवत् १८२१ फागुण वदि ६ सोमवार, जेसिंघपुरा में लिखित । सूचना-जे०गु० क० भा० ३ (२) । ११८५ ।

प्रति १०: लिपिकाल संवत् १८२३ मग सिर वदि ६ बुधवार । पद्य-संख्या ८०३ । सरस्वती भवन, उदयपुर में सुरक्षित ।

प्रति ११: लिपिकाल संवत् १८२७ जेष्ट वदि ७ सोमवार, नागेन्द्रपुर में लिखित । जे० गु० क० भा० ३ (२) । ११८५

प्रति १२: लिपिकाल संवन् १८२६ फागुण सुदि ६ । सूचना-जे० गु० क० भा० ३ (२) । ११८५

प्रति १३: लिपिकाल संवत् १८३७ श्रावण वदि १४ रवि, धुंधकडा गाँव में लिखित । सूचना-जे० गु० क० भा० २ । १३६

यह रचना गाने की ढाल और दोहो मे है परन्तु भापा और व्यवस्थित वाक्य हेमरतन की रचना से ज्यो के त्यों ले लिये गये हैं । कथा भी रतनसेन की मुक्ति पर समाप्त हो जाती है । इसका आदि और अन्तिम भाग श्री मेनारिया ने राजस्थान में हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज भाग १ में संवत् १८२३ की एक अशुद्ध पाठवाली प्रति से उद्धृत किया है । हमने उक्त रिपोर्ट के तीसरे भाग में इस रचना पर कुछ विस्तार के साथ लिख दिया है । और उसका शुद्ध पाठ भी दे दिया है । अतः यहाँ उसकी आवश्यकता नहीं रहती । हेमरतन और इसकी रचना की समानता प्रकट करने वाले सभी वाक्य हमने एकत्रित कर लिये हैं, जिनको विस्तार के साथ अगले खंड मे देंगे । यहाँ निम्नलिखित उदाहरण दिये जाते हैं—

हेमरतन	लब्धोदय
गोरा बादिल वे गुणी,	गोरा वादल अति गुणी,
सत्तवंत सविवेक ॥ ८ ॥	सूरवीर सुरताज ।
चित्रकोट चावउ कीउ ॥ ६ ॥	चित्रकूट कीधो चरित
	.... ॥ ५ ॥
वोलिसु बात विहुंतणी ॥ ७ ॥	कहीस्यु कवित किल्लोल सु ॥ ६ ॥

धूलकोट में खोदी गई दो खाइयों पर प्रकाश

(लेः—डॉ० गोपीनाथ शर्मा एम०ए०, पी०एच०डी०, महाराणा भूपाल कॉलेज, उदयपुर)

'मॉडर्न रिव्यू' मई सन् १६४६ के अंक में 'Forgation Capitals of Mewar' के शीर्षक का एक लेख मेरा छपा था। इस लेख द्वारा मैंने पाठकों का ध्यान इस ओर आकर्षित करने का प्रयत्न किया था कि उदयपुर नगर के उत्तर-पूर्वीय कोण में, उदयपुर स्टेशन के ठीक पास कुछ मिट्टी के ढह पड़े हुए हैं, जिनको बोलचाल में 'धूल कोट' कहा करते है। इस स्थान के संबंध में यह भी कहा जाता है कि इन ढहों के गर्भ मे तांबावती (ताम्रवती) नगरी के खण्डहर हैं। आज भी धूल को यत्रतत्र खोदा जाता है तो कई वर्तनों के टुकड़े, ईंटें, या मूर्तियों के टूटे हुए अंश प्राप्त होते हैं। इसी स्थान से मुझे कुछ एक चीजें आज से छः वर्ष पूर्व प्राप्त हुई थीं और इन्हीं के आधार पर उपरोक्त लेख में यहाँ की प्राचीन संस्कृति की संभावना पर मैंने अपने विचार प्रकट किए थे।

भाग्यवश राजस्थान सरकार के पुरातत्व विभाग के तत्त्वावधान में तथा पं० अक्षय कीर्ति एम०ए० के सुयोग्य निरीक्षण मे हाल ही में दो गहरी खाइयां महा सती के पूर्वीय भाग वाले धूल कोट में खोदी गई हैं। जिनकी लंबाई, चौड़ाई तथा गहराई क्रमशः १२ फीट × १०फी० × ३२ फी० तथा १२ × १० × १२ फी० है। इस थोड़ी खुदाई से कई वस्तुएँ प्राप्त हुई है जो एक विशिष्ट संस्कृति के अस्तित्व को प्रमाणितकरती है। संग्रह की गई ये प्राचीनवस्तुएँ जयपुर के संग्रहालय में सुरक्षित कर दी गई हैं।

प्रथम खाई से प्राप्त वस्तुओं में कई आकार प्रकार के मूंगे, खिलौने, मिट्टी के वर्तन, लोहे के औजार, मकानों का कबाड़ा, जानवरो की हड्डियाँ, रसायन

पीसने की शिलाएँ तौल के पत्थर आदि हैं। दूसरी खाई से भी कई मिट्टी के वर्तन, धातु के डले तथा तीन वृहदाकार भाण्ड मिले हैं।

वैसे तो इन चीजों से इस स्थान की सभ्यता का पूरा चित्र हमारे सामने स्पष्ट रूप में नहीं आता, परन्तु यदि इन्हीं वस्तुओं का वैज्ञानिक ढग से अनुशीलन तथा अध्ययन किया जाय तो इस अज्ञात सभ्यता के सम्बन्ध मे कई अनुमान लगाए जा सकते हैं। धूल की कई परतों को देखने से यह सिद्ध है कि इस नगरी का विध्वस इसके पास बहने वाली आहड नदी ने अपनी प्रलयकारी बाढ द्वारा किया हो और ऐसी वाढे अनुमानत दो वार आई हों और दो वार नगर का वनना व विगडना होता रहा हो।

इसी तरह यह ठीक वतला देना कि धूलकोट मे छिपे हुए ध्वसावशेष किन युगों के हैं, विश्वसनीय दान पत्र या अभिलेखों के अभाव के कारण कठिन है। परन्तु इन वस्तुओ द्वारा अभिव्यक्त संस्कृति की समानता कुछ ज्ञात प्राचीन संस्कृति से की जा सकती है और इसी आधार से युग निर्धारण भी हो सकता है। उदाहरणार्थ पहली खाई मे स्थित वडी दीवार का भाग तथा खिलौने और मिट्टी के वर्तनों के टुकडों का मेल चित्तौड के पास वाली नगरी के (मध्यमिका) ध्वसावशेपों से होता है। वह प्राय एक सा है और ये दोनों स्थान भी अहाड नदी की घाटी के एक मेखला में है। इस अनुरूपता से यह प्रमाणित होता है कि ताम्रवती नगरी मे रहने वाले लोगों की प्रथम सभ्यता भारतीय मौर्य-युग के आसपास की हो। इसी प्रकार कुछ भाण्डों की कला कृतियों के आधार पर जो खाई के मध्य भाग के स्थर से प्राप्त है कहा जा सकता है कि यहाँ के लोगों की सभ्यता जो दुवारा यहाँ रही वह हूणकाल के निकट की हो। तीसरा वस्ती का स्थर जो ऊपरी भागों की खुदाई से प्राप्त है और जिसके चिन्ह सतह पर दिखाई देते हैं यह प्रमाणित करता है कि यहाँ दूसरी वाढ के वाद अस्थाई रूप मे भी लोग छोटी मोटी झोपडियाँ वना कर रहते रहे हों और धीरे २ अहाड ग्राम में अधिक सुविधा होने पर लगभग ११ वीं या १२ वीं शताब्दी के वाद लोगों ने इस स्थान को विलकुल छोड़ दिया हो। परन्तु इस प्रकार के युग-निर्धारण का जो प्रयत्न ऊपर किया गया है वह निरा प्रयोगात्मक है क्योंकि मौलिक प्रमाण से वचित हैं।

जिस सुदृढ़ दीवार का उल्लेख ऊपर किया गया है वह नीचे के स्तर पर चट्टान पर बनी है और ३२ वें फीट की सतह पर है। इसके आकार तथा चौड़ाई से प्रतीत होता है कि यह शायद किसी सार्वजनिक स्थान का भाग हो। यदि इसी दीवार को जो सब से नीचे के स्तर की है, आगे खोदा जाय तो इस धारणा के सत्यासत्य का निर्णय हो सकता है। ठीक इसी दीवार के ऊपर उत्तर दक्षिण को एक पतली दीवार भी बनी हुई है जो किसी साधारण रहने के मकान का भाग हो सकता है। दोनों दीवारों की बनावट या तो सिद्ध करती है कि तांबावती नगरी की तुलना किसी प्राचीन नगर निर्माण-योजना से की जा सकती है। यदि पहली भित्ति के अवशेष को सार्वजनिक इमारत का भाग समझा जाय तो यह दीख पड़ता है कि शायद यहाँ एक तरह का अवश्य ही सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन रहा हो।

कुछ एक खिलौने जो इसी स्तर से प्राप्त हैं, प्रमाणित करते हैं कि यहाँ के लोग चीता या बाघ से परिचित थे। विविध प्रकार की हड्डियों तथा औजारों के टुकड़ों से स्पष्ट है कि यहाँ के निवासी जानवर पालने तथा खेती करने से परिचित थे। मिट्टी के बर्तनो से यह भी साफ है कि उनका उपयोग विविध प्रकार की वस्तुएँ तथा अन्न रखने के काम में किया जाता हो। छोटे २ मिट्टी के बर्तनों का भी उपयोग भोजन बनाने या भोजन करने के लिए हो। मूंगों का मिलना प्रमाणित करता है कि ये लोग इनका उपयोग आभूषणों में करते हों। यहाँ के लोग अपने बाल बच्चो के मनोरंजन तथा क्रीड़ा के महत्व को किस प्रकार समझते थे, इसका प्रमाण विविध प्रकार के खिलौने गुड़िया, गाड़ियाँ पहिये, छोटे २ बर्तन है। परन्तु पहले स्तर से कोई मुद्रा अथवा धातु के पात्र उपलब्ध नहीं हुए हैं जिस से यह पता चलता है कि यहाँ के लोग अधिक समृद्ध और वैभवशाली नहीं थे।

परन्तु दूसरे स्तर से प्राप्त वस्तुओं में अधिक सुन्दरता तथा चिकनापन है जो यहाँ की समृद्धता पर काफी प्रकाश डालती है। मिट्टी के बने हुए एक चित्रित भाण्ड से स्पष्ट है कि यहाँ के लोग सुन्दर कला तथा चित्रकला से प्रेम रखते थे। इसी स्तर मे अहाड़ के आस पास बने हुए कई मंदिर इनकी वैभवशीलता प्रकट करते हैं। इसी स्तर के अहाड़ के मंदिर इस सभ्यता के धर्म पर काफी प्रकाश डालते हैं। गंगोद्भव का कुण्ड जो इस स्तर की सीध में है अनेक मूर्तियों से

सुसज्जित है-जिनमें शिव तथा शक्ति की बडी २ मूर्तिया है जो इस ओर सकेत करती है, कि यहाँ के लोग शिव शक्ति के मुख्य रूप से उपासक थे। विविध अलकारों से विभूषित मूर्तिया इन की कला चातुरी की दुहाई देती है। इसी सभ्यता के काल की अनेक मूर्तिया खेतों में गडी मिली हैं जो इसी स्तर के सीध से प्राप्त हुई हैं। जो इनकी धार्मिकता की प्रतीक हैं। कुछ एक मृण्मय साचे जो यहा से मिले हैं तथा रसायनिक पदार्थों से मिश्रित धातु की डलिया जो तीनो बडे भाण्डो मे मिलते हैं और पत्थर के पीसने की शिलाएँ प्राप्त हुई हैं। यह बतलाती हैं कि इस युग के लोग विविध प्रकार की दस्तकारी और उद्योग कार्यों में निपुण थे। पत्थर के गोल २ तौल जो यहाँ की सामग्रियों मे से है इस ओर सकेत करते हैं कि इनका आदान-प्रदान बडे पैमाने में होता था और संभवत अन्न का उत्पादन स्थानीय आवश्यकता से अधिक था, जिसे आप पास के स्थानों में बेचा जाता हो।

द्वितीय खाई से जिसका स्तर दूसरी आबादी का है तीन महत्त्वपूर्ण गोल भाण्ड मिले हैं जिनकी योजना इस प्रकार है कि गोलाकार भाण्ड के सम आकार के भाग एक दूसरे के ऊपर ऐसे रक्खे हुए हैं कि जिनको हटाया जा सकता है और एक दूसरे के ऊपर रखा जा सकता है, कच्ची मिट्टी से इन भाण्ड खडों को जोडा गया है। इनकी औसत ऊँचाई १०-११ फीट है और गोलाई भी काफी है, जो एक आदमी के दोनो हाथों की परिधि में नहीं आ सकती। इन भाण्डो में छोटे मोटे रिक्त मिट्ट के भाण्ड रखे हुए हैं जिनके साथ रसायन से प्लुत कई धातु के छोटे डले हैं। ठीक तरह यह बतला देना कि इन बडे भाण्डों का क्या उपयोग था बडा कठिन है। इनके आकार और प्रकार से यह भी समझा जा सकता है कि शायद ये किसी कारखाने की चिमनियाँ-हों। परन्तु जब इनको ठीक तरह टटोला गया तो कहीं धुए का लवलेश भी नहीं दिखाई देता। अतएव इनको चिमनी अनुमान करना निराधार है, यदि इनको अन्न सग्रह के कोठे बताया जाय तो भी उपयुक्त नहीं, क्योंकि इनमें रिक्तभाण्ड तथा धातु और रसायन के अवशेष मिले हैं। सभव हो सकता है कि ये रसायन के सयोग से विविध धातुओं के साफ करने के साधन हो इस कल्पना की पुष्टि युक्ति से जमाए गए रिक्त भाण्ड तथा उनसे प्राप्त धातु के डले तथा रसायन के अवशेष हैं। यह भी साफ जाहिर होता है कि इस प्रयोग द्वारा विशेष व्यवसाय भी किया जाता हो। इन भाण्डों के

गोलाकार चक्कर ऐसे सुदृढ़ हैं कि जिनकी मजबूती की तुलना आधुनिक "टाइल्स" भी नहीं कर सकतीं। इनकी बनावट केवल मिट्टी से नहीं है, वरन दानेदार मोटी रेत का मिश्रण इसमें किया गया है। इनको इतना अच्छा पकाया गया है कि आज लम्बे काल के बाद भी ये सुदृढ़ अवस्था मे मौजूद हैं। ये भाण्ड अभी दूसरी खाई में यथा स्थान मौजूद हैं। परन्तु खेद है कि कोई निरीक्षण का विशेष प्रबन्ध न होने से दर्शक इन गोलाकार भाण्डों के चक्करों को उतारते हैं और तोड़ते हैं। जितने गोलाकार भाण्ड मैंने अपनी प्रथम यात्रा में देखे थे उतने उत्तरोत्तर की गई यात्राओं में नहीं देखे गये। आशा है विभागाध्यक्ष इस ओर ध्यान देने की अनुकम्पा करेंगे, जिससे ये अपनी अक्षुण्ण अवस्था मे सुरक्षित रह कर विद्वानों के अनुमान का पात्र बने रहे और जिससे किसी समय इनके उपयोग का रहस्य मालूम होने की आशा की जा सकें।

तीसरा स्तर उस समाज का है जो ऊपरीय भाग में बिखरी हुई बस्ती के रूप में अस्थाई ढंग की झोपडियों और कुछ एक घुमक्कड़ जातियों के डेरे के रूप में रहा हो। दूसरे विध्वंस के बाद यहाँ अव्यवस्थिति रूप से ये लोग रहे हों और धीरे २ अहाड़ की आबादी बढ़ने पर यहां लोगों ने रहना बन्द कर दिया हो।

धूलकोट की आधुनिक खुदाई की यह रूप रेखा तांबावती नगरी का पूरा खाका यदि हमारे सामने रखने समर्थ में नहीं है तो भी इसके द्वारा कई रोचक अनुमानो का जन्म होता है और नवीन खोज सम्बन्धी -कई तर्क वितर्क को प्रोत्साहन मिलता है। इस अर्थ में यह खुदाई अपना स्वतन्त्र महत्व रखती है। कई प्रश्न जो इसके सम्बन्ध में पैदा होते है उनका उत्तर यथेष्ट रूप में तभी दिया जा सकता है जब कि पुरातत्व विषयक वैज्ञानिक ढंग से इसकी खुदाई बड़े पैमाने पर की जाय। इस स्थान की विविध युग की बस्तियों की संस्कृति कैसी २ थी और उनका विकास कैसे हुआ इसका स्पष्टीकरण व्यस्थित अन्वेषण द्वारा ही दिया जा सकता है। यहाँ के नगर का वास्तविक नाम क्या रहा हो, या ये भाग आहड़ का ही भाग था आदि कई अनिश्चित पहेलियां है। अलग २ समय नगर निर्माण की क्या योजना थी। यह भी विस्तृत खुदाई के आश्रित है। यहां मुख्य रूप से कैसी जाति के और किस सभ्यता के लोग रहते थे। इसका भी स्पष्टीकरण अपेक्षित है। इस तरह के कई सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक तथा धार्मिक पहलुओं पर

आधार भूत प्रमाणों से प्रकाश डालना वाञ्छनीय है। अगर राजस्थान सरकार अपनी आर्थिक सहायता द्वारा इस ओर प्रगति करे तो कई विवादास्पद विषय, जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है, स्पष्ट हो सकते हैं। लेकिन इस आर्थिक सहायता से भी अधिक उपयोगी साधन सार्वजनिक उत्साह और सहयोग का है। मुझे आशा है कि शिक्षित तथा धनी समाज इस सांस्कृतिक खोज का बीड़ा अपने ऊपर उठाले तो हमारी उदार सरकार अपने भरसक प्रयत्न द्वारा इस दिशा में अधिक प्रवृत्ति प्रदर्शित कर सकेगी।

———

शोध-चर्चा—

एक प्रश्न

(लेखक—एक जिज्ञासु)

शोध पत्रिका के तृतीय भाग, पृष्ठ १३१-५, में कुं० श्री देवीसिंह ने 'गुर्जर देश का प्रथम सम्राट्' नाम का एक लेख प्रकाशित कर गुहदत्त को यह सम्मान प्रदान करने का प्रयत्न किया है। किन्तु चारणों और भाटों की कल्पित कथाओं के अतिरिक्त क्या उनके पास कोई साधन है जो गुहदत्त को समस्त गूर्जर का सम्राट सिद्ध कर सके? आपने श्री मुंशी की 'ग्लोरी देट वाज़ गुर्जर देश' का व्यर्थ ही हवाला दिया है। श्री मुंशी ने कहीं भी यह नहीं लिखा है कि गुहदत्त ने निरीहुल्ला को मारा और नंदीपुर में अपने एक सामन्त को प्रतिष्ठित किया। श्री देवीसिंहजी के पास कोई शिलालेख या प्राचीन पुस्तक का प्रमाण हो तो उसे उद्धृत करें। अन्यथा असत्य इतिहास की सृष्टि न करें। गुहदत्त यशस्वी राजा रहा होगा, किन्तु वह गूर्जरत्रा का सम्राट् न था।

प्राचीन प्रमाणों से गुहदत्त के विषय में हमें केवल इतना ज्ञात है कि वह मेवाड़ का शासक था। मेवाड़, गूर्जरत्रा का एक भाग हो तो हम उसे गूर्जरत्रा के एक भाग का शासक स्वीकार कर सकते है। किन्तु कुंवर श्री देवीसिंह क्या एक भी शिलालेख या प्राचीन प्रमाण दे सकते है, जिसमे मेवाड़ को गूर्जरत्रा के अन्तर्गत माना गया हो? वास्तव में गुहदत्त का गुजर्त्रा से कुछ सम्बन्ध ही न था, उसके गूर्जरत्रा के सम्राट् होने का प्रश्न तो अलग ही रहा। जिस आधार पर वे उसे गुर्जर देश का प्रथम सम्राट् मानते है, हम उसी के जिज्ञासु हैं।

———

चेतावणी रा चूंगट्या

उदयपुर निवासी श्री पुरोहित देवनाथजी सनाढ्य, जो महाराणा उदयपुर के वंशपरम्परा से प्रतिष्ठित कर्मचारी एवं दर्बार के व्यवस्थापक हैं, अपने दिनाक २६-५-५२ के पत्र में लिखते हैं कि 'चेतावणी रा चूंगट्या' शीर्षक दोहों की वास्तविकता पर विश्वास नहीं होता'। पुरोहितजी के पत्र का सारांश इस प्रकार है-

'शोध पत्रिका' भाग ३, अंक ३, चैत्र सम्वत् २००८-६' मार्च १६५२ में राजस्थान के ऐतिहासिक दोहे प्रकाशित हुए हैं, उनकी उस देश के निवासी ही परीक्षा कर सकते हैं, जिनका उस देश से सम्बन्ध हो। इनमें पृ० १२३ में दो दोहे महाराणा फतहसिंहजी के सम्बन्ध के हैं, जो उनके कर्जनी-दर्बार सन् १६०३ में दिल्ली जाकर सम्मिलित नहीं होने के विषय में है, 'चेतावणी रा चूंगट्या' शीर्षक से बारहट केसरीसिंहजी द्वारा निर्मित होना प्रसिद्ध है-

कठिण जमानो कौल, बावे नर हिम्मत विना।
बीरा हूवा बोल, पातल सांगे पेखियो॥
अब लग सारा आस, राण रीत कुल राखसी।
रहे साथ सुखरास, एकलिंग प्रभु आपरे॥

उपरोक्त 'चेतावणी रा चूंगट्या' शीर्षक दोहों की सत्यता के विषय में कोई प्रमाण नहीं मिलता कि श्री केसरीसिंहजी बारहट द्वारा महाराणा के पास प्रेषित किये गये हों। बारहट केसरीसिंहजी के पिता श्री कृष्णसिंहजी (किश-नजी) शाहपुरा के निवासी थे और उदयपुर के महाराणाओं के दर्बार में भी रहे थे। फिर वे यहाँ से चले गये और जोधपुर में जाकर रहे। मैंने इन रोचक और महत्वपूर्ण दोहों के सम्बन्ध में पूछ-ताछ की, परन्तु कहीं उनका पत्ता नहीं मिला। उक्त महाराणा प्रत्येक वस्तु को चाहे एक छोटा सा कागज पर लिखा हुआ टुकड़ा हो, सुरक्षित रखते थे, जो महाराणा के कॉन्फीडेंशियल दफ्तर में मंगवा लिये गये, वहाँ भी यह दोहे कहीं लिखे हुए नहीं मिलते हैं। इन दोहों को श्री केसरीसिंहजी बारहट द्वारा भेजने की बात पर वही व्यक्ति विश्वास कर सकता है, जो उक्त महाराणा की सेवामें नहीं रहा हो, परन्तु उन व्यक्तियों को जो प्रत्येक समय में महाराणा के पास रहते थे, उनको बारहटजी द्वारा भिजवाने की बात पर विश्वास नहीं होता है इत्यादि।

समालोचना:—

भारतीय काल गणना

ले० ज्योतिर्विद पं० श्रीदेवकीनन्दन खेड्वाल–फतहपुर (जयपुर)

मूल्य २–१४–०

ज्योतिर्विद पं० श्रीदेवकीनन्दन खेडवाल की लिखी हुई "भारतीय-काल गणना" नामक पुस्तक को पढ़ी इसमें तीन भाग हैं। प्रथम भाग में सृष्ट्युत्पत्ति, सौर मण्डल का निर्माण, प्रलय वर्णन, ग्रह उपग्रह, कल्पित ग्रह-राशि तथा नक्षत्रों की स्थिति का व आकाशादि का वर्णन है। द्वितीय भाग मे सृष्टि के आरम्भ से आज तक प्रयोग में आने वाली काल गणनाओं का सभी देशों के विद्वानों द्वारा स्वीकृत भिन्न २ प्रकार की काल गणनाओं का परिचय कराया है। साथ में सूर्योदय सारणी भी दी है। इन कार्यों के लिये तीन सारणियाँ दी हैं जिनके द्वारा सुगमता से मनुष्य इसका मोटे रूप में परिज्ञान प्राप्त कर सकता है।

तृतीय भाग मे ग्रहों के द्वापरान्त ध्रुव तथा मध्यमग्रह की सारणी दी है जिससे बार्हस्पत्य संवत् तथा प्रचलित संवत् के निर्णय में सहायता प्राप्त होती है। ब्राह्म संवत् से स्वराज्य संवत् पर्यन्त कुल ३६ संवत् भारतीय तथा चीनी संवत् से पारसीय संवत् तक कुल २२ संवत् विभिन्न देशीय संवतों का वर्णन करके संवत् चलाने वाले व्यक्ति के विशेष गुणो का भी प्रतिपादन करने की चेष्टा की है। इसके बाद उसमें महाभारत के काल का तथा विशेष घटनाओं की तिथियों के निर्णय करने का भी प्रयास नवीन प्रणाली के लोगो के विचारानुकूल सतर्क किया है; परन्तु इसमें ये कहाँ तक सफल हुए हैं यह पुस्तक पढ़ कर विद्वान् ही स्वयं निर्णय कर सकता है। कहीं २ भावुकता मे वहकर अत्यधिक भी लिख गये है जैसे दिव्य कलियुगादि की कल्पना वगेरह।

इसी प्रकार आकाशादि तत्वो का रंग आदि। परन्तु आद्योपान्त देखने से कई विषय ऐसे भी प्रदर्शन किये हैं, जिनका ज्ञान जन साधारण को होना आवश्यक है। वेदाङ्ग ज्योतिष के समय के पाँच संवत्सर, वैदिक व पौराणिक काल के मुहूर्तो के तत्कालीन प्रचलित नामादि। कल्पितग्रह। तिथियों के मिलान करने योग्य सारणी आदि विषयों से यह उपादेय अवश्य है तथा इतिहास प्रेमियों को

तथा शोधक बुद्धिवाले व्यक्तियों के लिये एक अच्छी सहायक पुस्तक है। प्राचीन काल निर्णय के लिये इसमें अनेक उपयोगी साहित्य प्रदर्शन किया है पुस्तक का मूल्य दो रुपया चौदह आना रक्खा है, जो मेरी समझ से कुछ अधिक है।

पं० बिहारीलाल व्या० शास्त्री(ज्योतिर्विद)
श्री महाराणा संस्कृत कॉलेज, उदयपुर

सम्पादकीय—

हिन्दी जनपदीय परिषद्

ब्रज साहित्य मण्डल के हाथरस अधिवेशन के अवसर पर (जिसका उद्घाटन डॉ० राजेन्द्रप्रसाद द्वारा किया गया था) जनपदीय कार्य में लगे हुए अनेक साहित्यिक विशेष रूप से आमंत्रित किये गये थे। आगत सज्जनों में पं० रामनरेश त्रिपाठी, श्रीकृष्णानन्द गुप्त, श्री श्याम परमार, श्री रामनारायण उपाध्याय श्रीदेवीलाल सामर, श्रीठाकुरप्रसादसिंह आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, श्रीबनारसीदास चतुर्वेदी, श्रीबालकृष्ण शर्मा 'नवीन', डॉ० उदयनारायण तिवारी आदि ने जनपदीय गोष्ठी में विशेष रूप से भाग लिया। विचार-विमर्श के अनन्तर निश्चित हुआ कि 'हिन्दी जनपदीय परिषद्' नामक एक संस्था की स्थापना की जाय जिसकी ओर से एक मासिक पत्र भी प्रकाशित होता रहे।

आचार्य नरेन्द्रदेव की अध्यक्षता में परिषद् की कार्यकारिणी का भी निर्माण हो चुका है। राजस्थान की ओर से श्रीदेवीलाल सामर कार्यकारिणी में लिये गये हैं।

लोक-साहित्य का महत्त्व आज सभी स्वीकार करने लगे हैं और इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि भारतवर्ष के प्रायः सभी जनपदों में लोक-साहित्य-संबंधी अमूल्य सामग्री बिखरी पड़ी है जिसका प्रकाशन और मूल्याङ्कन नितान्त वांछनीय है। आशा की जाती है कि हिन्दी जनपदीय परिषद् इस ओर अग्रसर होगी और उसके द्वारा एक बड़े अभाव की पूर्ति हो सकेगी।

भारतीय लोककथा विशेषज्ञ का देहान्त

श्री आर० ई० एन्थॉवेन, जिनकी मृत्यु हाल ही में लन्दन में ८१ वर्ष की अवस्था में हुई, आई० सी० एस० में एक लम्बे अर्से तक लगे रहने के कारण भारतीय लोक कथाओं के विशेषज्ञ बन गये थे। वह आई० सी० एस० में १८८७ में भरती हुए थे और उन्हें बम्बई प्रान्त में नियुक्त किया गया था। श्रीएन्थॉवेन १९२०,में अपनी निवृत्ति से पूर्व भारत में बम्बई के कस्टम, साल्ट और एक्साइज कमिश्नर थे। अपनी निवृत्ति के बाद वह इंग्लैण्ड में रहने लगे और लायड्स के के अन्डरराइटिंग ,सदस्य बन गये थे। उनके प्रकाशनों में 'कास्टस ट्राइब्स ऑफ दि बॉम्बे प्रेसिडेन्सी' 'फाकलोर नोट्स', ट्राइब्स एण्ड कास्ट्स ऑफ दि बॉम्बे' और 'फाकलोर ऑफ बॉम्बे' नामक पुस्तकें सम्मिलित हैं।

('लोकवाणी' के सौजन्य से)

कन्हैयालाल सहल

प्रतिभाओं का सम्मान

नव स्वीकृत संविधान के अन्तर्गत भारतवर्ष के चुनाव सम्पन्न हो गये, और शासन की बागडोर कांग्रेस के हाथों में आई। भारतवर्ष के प्रथम निर्वाचित राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद और प्रधान मन्त्री प० जवाहरलाल नेहरु के कुशल नेतृत्व में सरकारों का संगठन भी सम्पन्न हो चुका। राजतन्त्र में अब तक राजनीतिक व्यक्तियों का ही जमाव था, पर भारत सरकार ने अपने इस दृष्टिकोण में सुधार किया।

बुद्धिवादी वर्ग के लिए राजनीति में प्रवेश पाना कठिन था। साहित्यकारों के लिए अतिरिक्त की वे गुणगान करें, कोई और स्थान नहीं था। कलाकारों को सम्मान की सुविधा नहीं मिल पाती थी। आज समय के प्रवाह ने योग्य प्रतिभाओं को उचित स्थान देने के लिए सभी को प्रोत्साहित किया है। महान् दार्शनिक डॉ०

सर्वपल्ली राधाकृष्णन् उपराष्ट्रपति बने. बंगाल की राज्य परिषद् के सभापति प्रसिद्ध भाषाविद् डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी निर्वाचित किये गये। और भारतीय राज्य परिषद् में राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त आदि अनेकों प्रमुख विद्वद्वर्ग नियुक्त हुए। सरस्वती के भक्तों का सम्मान और मार्गदर्शन राष्ट्र की उन्नति के लिए शुभअपा का प्रतीक है।

भगवतीलाल भट्ट

पत्रिका-परिचय और नियम

१—यह साहित्य-संस्थान राजस्थान विश्व विद्यापीठ की त्रैमासिक पत्रिका है।

२—इसमें —

१-प्राचीन साहित्य मुख्यतः प्राचीन राजस्थानी साहित्य,

२-लोक साहित्य,

३-इतिहास,

४-पुरातत्व,

५-वनस्पति शास्त्र,

६-कला, भाषा शास्त्र आदि विविध विषयों के शोध-पूर्ण निबन्ध रहेंगे। साथ ही शोध-समाचार, साहित्य-समीक्षा आदि का भी समावेश होगा।

३—राजस्थान इसका प्रमुख क्षेत्र रहेगा।

४—निबन्ध में प्रकट किये गये विचारों के लिये उनके लेखक ही उत्तरदायी होंगे।

५—लेखकों को प्रकाशित निबन्धों के २५ रीप्रिंट सम्बन्धित प्रति के अतिरिक्त भेंट किये जाएंगे

६—समालोचनार्थ पुस्तकों की दो प्रतियाँ आनी आवश्यक होंगी। दो प्रति आने पर उसके लिये धन्यवाद देने के साथ प्राप्ति स्वीकार की जायगी।

७—पत्रिका का वार्षिक मूल्य १०) रु० तथा एक प्रति का २॥) रु० है।

८—किसी भी अंक से ग्राहक बनाये जा सकेंगे, किन्तु वर्ष से कम के लिये नहीं।

९—पत्रिका का प्रति वर्ष-चैत्र, आषाढ, आश्विन और पौष (मार्च, जून, सितम्बर तथा दिसम्बर) में प्रकाशित हो जाया करेंगी।

साहित्य-संस्थान, राजस्थान-विश्व-विद्यापीठ, उदयपुर

प्रकाशित साहित्य:—

१. राजस्थानी भाषा
श्रीयुत् डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, एम० ए०, डी० लिट्० मूल्य २॥)

२. राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज भाग–१
श्रीयुत् पं० मोतीलालजी मेनारिया, एम० ए० मूल्य ३)

३. राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज भाग–२
श्रीयुत् अगरचन्द नाहटा, मूल्य ४)

४. मेवाड़ की कहावतें भाग–१
श्रीयुत् पं० लक्ष्मीलाल जोशी, एम० ए०, एल-एल०, बी० मूल्य २)

५. नया चीन
श्रीयुत् हुकमराज मेहता बी०ए०, एल-एल०बी० मूल्य २॥)

६. मालवी कहावतें भाग–१
श्रीयुत् रतनलाल मेहता बी० ए०, एल-एल० बी०, मूल्य २)

७. पूर्व आधुनिक राजस्थान मूल्य अजिल्द ६), सजिल्द ७)
श्रीयुत् महाराज कुमार डॉ० रघुबीरसिंह एम० ए०, डी० लिट्० एल-एल० बी०

८. शोध–पत्रिका भाग–१ मूल्य ६) रू०, भाग–२, ८) रुपया

शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाली पुस्तकें-

१. राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज भाग–३
श्रीयुत् उदयसिंह भटनागर एम०ए०

२. राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज भाग ४.
श्रीयुत् अगरचंद नाहटा

३. आचार्य चाणक्य [नाटक]
श्रीयुत् जनार्दनराय नागर एम० ए०, साहित्यरत्न

४. तुलसीदास [काव्य]
श्रीयुत् कन्हैयालाल ओझा एम०ए०

५. राजस्थानी वार्ता भाग–१
श्रीयुत् नरोत्तमदास स्वामी एम० ए०

विद्यापीठ प्रेस, उदयपुर